गद्य-गरिमा

[हाईस्कूल के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी निबन्धों का संग्रह]

संकलनकर्त्ता और सम्पादक—

श्रीयुत व्यथितहृदय

प्रकाशक

रामनारायण लाल

पब्लिशर और बुकसेलर

इलाहाबाद

१९४५

तीयावृत्ति] मूल्य १)

पाठ-क्रम

—:o:—

प्रस्तावना

हिन्दी भाषा और उसका गद्य-साहित्य

भाषा सदैव एक सी नहीं रहती। जातियों और उनकी सभ्यता के संसर्ग से निरन्तर उसका स्वरूप परिवर्तित हुआ करता है। आज जो हिन्दी का स्वरूप दिखाई दे रहा है, वह कुछ दिनों के पूर्व न था, और न कुछ दिनों के पश्चात् रहेगा। मानव जगत की भाँति भाषा भी धीरे-धीरे विकास और उन्नति की ओर अग्रसर होती है। ज्यों ज्यों उसकी सभ्यता परिष्कृत और परिमार्जित होती है, त्यों त्यों उसकी भाषा में भी परिष्करण और परिमार्जन के भावों का संचार होता जाता है। भाषा के इन्हीं वैज्ञानिक नियमों के आधार पर हिन्दी भाषा ने भी धीरे-धीरे विकास का स्वरूप प्राप्त किया है। हिन्दी भाषा का प्रारंभिक स्वरूप अपभ्रंश भाषा के नाम से विख्यात है। वास्तव में अपभ्रंश भाषा का विकसित स्वरूप ही हिन्दी भाषा का वर्त्तमान रूप है।

आर्यों की वैदिक भाषा ही सब भाषाओं का मूल स्रोत है। चिर प्राचीन काल में आर्यगण वैदिक भाषा ही का उपयोग करते थे। वेद की रचना इसी वैदिक भाषा में की गई है। किन्तु जब आर्यों और अनार्यों का संसर्ग बढ़ा, और जब दोनों में सभ्यता का आदान-प्रदान होने लगा, तब आर्यों की वैदिक भाषा का स्वरूप भी धीरे-धीरे परिवर्तित होने लगा। साधारण जनता की बोलचाल की भाषा में स्वच्छन्द रूप से अनार्यों की भाषा के शब्द घुसने लगे। वैदिक विद्वानों के लिए यह बात असह्य-सी हो उठी और उन्होंने वैदिक भाषा की शुद्धता को बचाने के लिये व्याकरण के दुरूह नियमों की रचना की। उसी समय से वैदिक भाषा दो भागों में विभक्त हो उठी। एक व्याकरण के नियमों से परिष्कृत होने के कारण संस्कृत कहलाई और दूसरी, जो उसके विकृत रूप में साधारण जनता में बोली जाती थी, प्राकृत के नाम से विख्यात हुई।

वैदिक भाषा इन दो धाराओं में बँट कर भी एक-सी बनी रही। संस्कृत और प्राकृत, दोनों भाषाएँ बोल-चाल के काम में आती रहीं। अन्तर केवल इतना ही था, कि संस्कृत विद्वत्समाज की भाषा थी। प्राकृत बहुधा ग्रामीणों और अशिक्षितों के बोलचाल का भाषा थी। किन्तु, ज्यों-ज्यों साधारण जनता सभ्यता और उन्नति की ओर अग्रसर होने लगी, त्यों-त्यों प्राकृत भी धीरे-धीरे विकास का स्वरूप धारण करने लगी। कुछ दिनों के पश्चात् वैदिक प्राकृत के विकसित स्वरूप से पाली की उत्पत्ति हुई। पाली महात्मा बुद्ध की वाणियों से अत्यन्त पवित्र है। महात्मा बुद्ध ने पाली ही में अपने सम्पूर्ण उपदेश दिये हैं। सम्राट अशोक के शासन-काल में पाली भाषा ने खूब उन्नति की। सम्राट अशोक स्वयं भी बौद्धधर्मावलम्बी थे। अतएव उनके शासन काल में पाली को अभ्युत्थान प्राप्त करना ही चाहिए। अशोक के अधिकांश शिला-लेखों पर पाली भाषा ही की लिपियाँ पाई जाती हैं। किन्तु वैदिक प्राकृत एक पाली ही के रूप में उत्पन्न होकर न रही, उसने धीरे-धीरे महाराष्ट्री, शौरसेनी, और अर्द्ध मागधी इत्यादि प्रान्तीय भाषाओं के रूप धारण किये। इन प्रान्तीय भाषाओं की विशेषता यह हुई, कि ये साधारण जनता से दूर हट कर धीरे-धीरे साहित्यिक भाषाएँ बन गईं। इनमें व्याकरण के नियमों की रचना भी होने लगी। अब यहाँ प्राकृत ने दो स्वरूप धारण किये। एक साहित्यिकता की ओर गई, और दूसरी साधारण जनता की बोलचाल के काम में आने लगी। साधारण जनता के बोलचाल की इसी भाषा ने धीरे-धीरे अपभ्रंश का स्वरूप धारण किया। कुछ दिनों के पश्चात् अपभ्रंश भी साहित्यिक बन गई, और उसमें भी व्याकरण के नियमों की रचना होने लगी। इसी अपभ्रंश भाषा ने धीरे धीरे विकसित होकर हिन्दी, मराठी, गुजराती और बंगाली इत्यादि भाषाओं का स्वरूप धारण किया है।

अपभ्रंश भाषा ने विकसित होकर जितने स्वरूप धारण किये हैं, उनमें हिन्दी का क्षेत्र अधिक विस्तृत है। हिन्दी के इस विस्तृत क्षेत्र को चार मुख्य भागों में विभक्त किया जा सकता है। (१) राज

स्थानी, (२) ब्रजभाषा, (३) अवधी, (४) खड़ी बोली। राजस्थानी राजपूताने और मालवे के आस पास की भाषा मानी जाती है। इसमें अनेक सुप्रसिद्ध कवि हो चुके हैं। कुछ लेखकों ने राजस्थानी में गद्य-साहित्य की रचना भी की है। मीरा, चन्दबरदाई और पृथ्वीराज इत्यादि इसी भाषा के सुप्रसिद्ध कवि हो चुके हैं।

ब्रजभाषा हिन्दी-साहित्य का एक विशेष अंग है। यद्यपि ब्रजभाषा में गद्य-साहित्य का निर्माण न हुआ, किन्तु हिन्दी का अधिकांश पद्य-साहित्य ब्रजभाषा में ही है। किसी दिन ब्रजभाषा का हिन्दी भाषा पर एकाधिपत्य-सा था। ब्रजभाषा की उद्गम भूमि मथुरा है। किन्तु यह आगरे के आस-पास भी बोली जाती है। इसमें अनेक सुप्रसिद्ध कवियों ने अपनी ललित रचनाएँ की हैं। इन कवियों में सूरदास, नरोत्तमदास, गंग, केशव, बिहारी, मतिराम, भूषण, देव पद्माकर इत्यादि का नाम उल्लेखनीय है। सूरदास, देव और बिहारी इत्यादि कवियों की गणना तो महा कवियों में की जाती है। देव ने आचार्यत्व का स्थान भी प्राप्त किया है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी ब्रजभाषा में बहुत सी रचनाएँ की हैं। इस समय जब खड़ी बोली का चारों ओर साम्राज्य-सा है, ब्रजभाषा में रचना करने वाले श्रेष्ठ और सुन्दर कवि पाये जाते हैं। हरिश्चन्द्र, श्रीधरपाठक, सत्यनारायण, और जगन्नाथदास रत्नाकर ने अपनी ब्रजभाषा की रचनाओं से लोगों को आश्चर्य-चकित सा कर दिया। बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर का 'गंगावतरण' हिन्दी के कविता-साहित्य की स्थाई सम्पत्ति-सी है। पं० रामचन्द्र शुक्ल, वियोगीहरि और पण्डित दुलारेलाल भार्गव अपनी ब्रजभाषा की रचनाओं से इस समय भी हिन्दी-साहित्य के भण्डार को भर रहे हैं। पं० दुलारेलाल की 'दुलारे दोहावली' हिन्दी के ब्रज-साहित्य में अपना एक महत्व-पूर्ण स्थान रखती है।

अवधी अवध प्रान्त की भाषा है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने अवधी ही में रचना की है। मलिक मुहम्मद जायसी भी इसी भाषा के कवि हैं। अवधी अधिक दिनों तक अपने क्षेत्र को स्थिर न रख

सकी। ब्रजभाषा की व्यापकता ने उसे अपना स्वतंत्र स्थान न बनाने दिया। वह धीरे-धीरे नष्ट होकर ब्रजभाषा ही में मिल गई। खड़ी-बोली हिन्दी की प्रमुख शाखा है। आजकल खड़ी बोली ही का अत्यधिक प्रचार है। यही साहित्य और राष्ट्र की भाषा भी मानी जाती है। खड़ी बोली ही में हिन्दी के उत्कृष्ट साहित्य की रचना हो रही है। गद्य और पद्य, दोनों का भण्डार कलामय कृतियों से भरा जा रहा है। एक से एक अच्छे उपन्यास और नाटक लिखे जा रहे हैं। हृदय को आन्दोलित करने वाली कहानियाँ प्रति दिन आँखों के सामने आ रही हैं। खड़ी बोली ने अपनी व्यापकता से ब्रजभाषा के वेग को अधिक अंशों में रोक दिया है। जिनका ब्रजभाषा की ओर आकर्षण था, वे भी खड़ी बोली ही में अब अपने मनोभावों को व्यक्त करने लगे हैं।

वर्तमान खड़ी बोली तीन रूपों में व्यवहृत की जाती है। (१) शुद्ध हिन्दी, (२) उर्दू और (३) हिन्दुस्तानी। खड़ी बोली का सर्व प्रथम कवि अमीर खुसरो है। मुसलमानों के शासन-काल में उर्दू के रूप में खड़ी बोली का अधिक प्रचार हुआ। उसने साहित्यिकता का स्वरूप भी धारण कर लिया। हिन्दी खड़ी बोली का प्रवेश सर्व प्रथम गद्य-साहित्य से हुआ। हिन्दी खड़ी बोली में सब से पहले गद्य की रचना की गई। खड़ी बोली के प्रारम्भिक गद्य-लेखकों में मुंशी सदासुख, इंशा अल्ला खाँ, सदल मिश्र, और लल्लू जी लाल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। अंगरेज़ों के सहयोग को पाकर हिन्दी खड़ी बोली के गद्य ने अधिक उन्नति की। ईसाई पादरियों की पुस्तकों ने भी इस उन्नति में अधिक हाथ बँटाया। लोगों की चेष्टा और प्रयत्न से दिनों दिन हिन्दी का गद्य-साहित्य अधिक परिष्कृत होने लगा। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में राजा शिवप्रसाद ने हिन्दी गद्य-साहित्य के प्रसार में अच्छी सहायता प्रदान की। उन्होंने सरकारी पाठालयों में हिन्दी को स्थान दिलवाया; और पाठालयों के उपयुक्त पुस्तकें भी लिखीं। परिणाम यह हुआ, कि हिन्दी-गद्य धीरे-धीरे अधिक परिष्कृत होने लगा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी-

गद्य को परिष्कृत करने में सराहनीय उद्योग किया। हिन्दी-गद्य का आज जो वर्तमान रूप दिखाई दे रहा है, उसकी नींव भारतेन्दु बाबू ही ने डाली थी। उन्होंने अपनी रचनाओं से हिन्दी गद्य शैली को अधिक परिष्कृत किया। नाटकों और उपन्यासों के लिखने की प्रथा चलाई। दूसरी भाषाओं के ग्रन्थों के अनुवाद भी हिन्दी में प्रकाशित होने लगे। कहानियाँ और गल्पें भी लिखी जाने लगीं। किन्तु भाषा का स्वरूप निश्चित न था। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भाषा को अधिक परिष्कृत करके उसे एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया। व्याकरण के नियमों के अनुसार भाषा लिखी जाने लगी, और उसमें विरामों के उचित प्रयोग भी किये जाने लगे। पं० महावीरप्रसाद के समय से हिन्दी गद्य-साहित्य ने अधिक उन्नति करनी आरम्भ कर दी है। गद्य ही की भाँति पद्य में भी खड़ी बोली ने अभूतपूर्व उन्नति की है। यह पहले ही कहा जा चुका है, कि हिन्दी पद्य-साहित्य पर ब्रजभाषा का एकाधिपत्य था, किन्तु जब ब्रजभाषा में गद्य न लिखा जा सका, तब पद्य के लिये भी उसकी उपयुक्तता धीरे धीरे जाती रही। भारतेन्दु बाबू के समय तक उसका प्रभाव अक्षुण्ण रहा। किन्तु धीरे-धीरे उसका प्रभाव कम होने लगा। हिन्दी गद्य-साहित्य के प्रसार के साथ ही साथ खड़ी बोली के पद्य ने ब्रजभाषा के पद्य पर अपना आधिपत्य स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया। भारतेन्दु बाबू ने स्वयं खड़ी बोली में कविता की। उनके पश्चात् पं० श्रीधर पाठक और नाथूराम शंकर शर्मा इत्यादि कवियों ने खड़ी बोली में कविता करके एक युगान्तर सा उपस्थित कर दिया। बाबू मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं ने खड़ी बोली की कविता के प्रचार में अधिक सहायता प्रदान की। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने हिन्दी कविता-जगत में जो क्रान्ति उत्पन्न की, उससे हिन्दी-कविता-साहित्य को अधिक लाभ हुआ। कविता लेखकों में पं० अयोध्या-सिंह उपाध्याय, महादेवी वर्मा, भगवतीचरण वर्मा और बालकृष्ण 'नवीन' का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

हिन्दी-साहित्य के विकास का यही संक्षिप्त इतिहास है। साहित्य के इतिहासकारों ने इस विकास काल को चार भागों में विभक्त किया है। यहाँ हम उन चारों भागों को दिखा कर यह बताने की चेष्टा करेंगे, कि प्रत्येक भाग में हिन्दी-गद्य की कैसी स्थिति रही। (१) प्राचीन काल या वीर गाथा युग (सम्वत् ११०० से १४०० तक) (२) पूर्व मध्य काल या भक्ति युग (सम्वत् १४०० से १७०० तक), (३) उत्तर मध्य काल या रीति युग (सम्वत् १७०० से १९०० तक), और (४) आधुनिक काल या गद्य युग (सम्वत् १९०० से अब तक)।

प्राचीन काल वीर गाथा युग के नाम से प्रसिद्ध है। इस युग में चारणों और भाटों ने राजस्थानी में वीरता के गीत गाये। इस युग में गद्य लिखा गया किन्तु बहुत कम। दूसरे युग में भक्ति की विशेषता रही। साधकों और प्रेमी भक्तों ने ब्रजभाषा में अपने-अपने इष्टदेवों के गुण-संकीर्तन किये। इस युग में ब्रजभाषा और अवधी का आधिपत्य रहा। इसी युग में सब से पहले पहल हिन्दी गद्य की नींव पड़ी। इसके पहले राजस्थानी में कुछ लेखकों ने गद्य लिखे थे, किन्तु उनका गद्य-साहित्य अभी तक देखने में नहीं आया। भक्ति-युग में सर्व प्रथम बाबा गोरखनाथ और उनके शिष्यों ने हिन्दी गद्य की नींव डाली। उस समय जो गद्य लिखा गया, उस पर ब्रजभाषा का आधिपत्य था। इसके पश्चात् वल्लभाचार्य के पौत्र गोकुलनाथ ने गद्य में 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' की रचना की। ये दोनों ग्रन्थ बोलचाल की भाषा में लिखे गये हैं। इनमें कहीं-कहीं अरबी और फ़ारसी के शब्द भी पाये जाते हैं। इनकी क्रियाओं का रूप ब्रजभाषा और कन्नौजी ढंग का है। गंगा भाट ने 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' नामक पुस्तक खड़ी बोली के गद्य में लिखी। सम्वत् १६८० में मेवाड़-निवासी जटमल ने गोरा बादल की कथा लिखी।

रीति युग में गद्य का लोप सा हो गया। प्रायः दो सौ वर्ष तक गद्य के दर्शन तक न हुए। इस युग में राजस्थानी में गद्य की खूब उन्नति हुई। उसमें बहुत से गद्य-ग्रन्थ लिखे गये, तथा इतिहास

की कहानियों की रचना की गई। इस युग के अन्तिम काल में पुनः हिन्दी गद्य को प्रोत्साहन मिला। मुंशी सदासुख लाल, सदल मिश्र, इंशा अल्ला खाँ और लल्लू लाल ने गद्य में पुस्तकों की रचना की। मुन्शी सदासुख लाल ने सुखसागर के नाम से श्री मद्‍भागवत का अनुवाद किया, इंशा अल्ला खाँ ने रानी केतकी की कहानी लिखी, और लल्लूलाल ने प्रेम सागर के नाम से भागवत के दशम स्कन्ध का अनुवाद किया। इसी समय से हिन्दी गद्य की उन्नति प्रारंभ हुई। हिन्दी गद्य की उन्नति में इसाई पादरियों से भी अधिक सहायता प्राप्त हुई।

हिन्दी गद्य-साहित्य की वास्तविक-उन्नति आधुनिक काल में हुई। इसी से इस युग को गद्य-युग के नाम से पुकारते हैं। इस युग के सबसे पहले लेखक राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द हैं। राजा शिवप्रसाद के पहले सरकारी स्कूलों में उर्दू का प्राधान्य था। राजा साहब ने प्रयत्न करके हिन्दी को स्कूलों में स्थान दिलवाया और स्कूलों के लिये पुस्तकें भी लिखीं। राजा साहब की भाषा उर्दू मिश्रित है। राजा साहब के पश्चात् लक्ष्मणसिंह ने हिन्दी भाषा को परिष्कृत किया। लक्ष्मणसिंह ने संस्कृत की 'शाकुन्तला' का हिन्दी में अनुवाद किया। 'शकुन्तला' में उन्होंने यथाशक्ति विशुद्ध हिन्दी का प्रयोग किया है। इसी समय स्वामी दयानन्द जी से हिन्दी गद्य को अधिक प्रोत्साहन मिला। पंजाब में स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज ही के उद्योग से हिन्दी स्थान पा सकी है।

इस समय हिन्दी-गद्य अधिक परिष्कृत हो उठा था। उसमें पत्र और पत्रिकाएँ भी निकलने लगीं। लक्ष्मणसिंह के पश्चात् भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से हिन्दी-गद्य को अधिक बल प्राप्त हुआ। भारतेन्दु बाबू ने गद्य-पद्य में बहुत से ग्रन्थ लिखे। उन्होंने कई ग्रन्थों का अनुवाद भी किया। उपन्यासों और नाटकों की प्रथा का श्री गणेश भी उन्हीं के द्वारा हुआ। हिन्दी गद्य का इस समय जो वर्तमान रूप दिखाई दे रहा है, उसके निर्माता भारतेन्दु ही बाबू हैं। भारतेन्दु बाबू के समय में और उनके बाद अनेक गद्य लेखक उत्पन्न हुये।

उनमें बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनरायण मिश्र, जगमोहन सिंह, श्री निवास दास, बदरीनारायण चौधरी, राधाचरण गोस्वामी और बालमुकुन्द गुप्त का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

भारतेन्दु बाबू ने हिन्दी गद्य को जो नींव डाली थी, उसे पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अधिक सुदृढ़ और परिष्कृत बना दिया। द्विवेदी जी ने भाषा को एक स्थिर स्वरूप प्रदान किया। भाषा व्याकरण के नियमों के अनुसार लिखी जाने लगी। वाक्य-रचना में विरामों का प्रयोग होने लगा। नाटक, कहानियाँ और उपन्यास लिखे जाने लगे। अँगरेज़ी और बंगला के ग्रन्थों के अनुवाद भी प्रकाशित होने लगे। समाचार पत्र और मासिक पत्रिकायें भी निकलने लगीं। राधाकृष्णदास, श्यामसुन्दरदास, अयोध्यासिंह उपाध्याय, गोविन्दनारायण मिश्र, मिश्रबन्धु, और पं० पद्मसिंह शर्मा इत्यादि उद्भट लेखक अपनी कृतियों से हिन्दी-साहित्य के कोष को भरने लगे। वास्तव में यही हिन्दी के गद्य-साहित्य की उन्नति का प्रधान युग है। इस युग में जयशंकर प्रसाद नाटकों में अपनी एक विशेष विशेषता रखते हैं। पं० रामचन्द्र शुक्ल निबन्ध लेखन कला में अद्वितीय हैं। प्रेमचन्द जी उपन्यास-सम्राट कहे जाते हैं। गौरी शंकर हीराचन्द ओझा ऐतिहासिक अनुसंधानों के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। पं० पद्मसिंह शर्मा की समालोचनाएँ बड़ी तीव्र हैं। छोटी-छोटी काव्य मय कहानियाँ लिखने में रायकृष्णदास, जयशंकर प्रसाद और विनोदशंकर व्यास ने अधिक सुकीर्ति प्राप्त की है। कहानी लेखकों में सुदर्शन, विश्वम्भरनाथ कौशिक, जैनेन्द्रकुमार भगवतीप्रसाद बाजपेयी, और बेचन शर्मा उग्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार भी कहानियाँ अच्छी लिखते हैं। जी० पी० श्रीवास्तव और अन्नपूर्णानन्द हास्य रस के सुन्दर लेखक हैं। समालोचकों में पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का अच्छा स्थान है। शिकार-साहित्य के प्रणयन में श्रीराम शर्मा ने अच्छी सुख्याति प्राप्त की है।

गद्य-गरिमा

१—बाँकीदास

[लेखक—श्रीयुत् गौरीशंकर हीराचंद ओझा]

वंशः—गुजराती औदीच्य ब्राह्मण

जन्मस्थानः—राजपूताना का, सिरोही राज्यान्तर्गत, रोहीड़ा गाँव

जन्म संवत् :—१९२०

परिचय :—ओझा जी रोहीड़ा के साधारण गाँव में उत्पन्न हुये थे। कुछ बड़े होने पर गाँव ही में आपको संस्कृत की सर्व प्रथम शिक्षा दी गई। इसके पश्चात् शिक्षा प्राप्त करने के लिये आप बम्बई चले गये। उन दिनों रेलों का सर्वव्यापी प्रचार न होने के कारण मार्ग में आपको कठिन आपदाओं का सामना करना पड़ा था। बम्बई में आपने एफ० ए० की प्रथम वर्ष की परीक्षा पास की; तदनन्तर आपका स्वास्थ्य ख़राब हो गया, और आप अपनी जन्म-भूमि लौट आये।

कुछ दिनों के पश्चात् आप पुनः बम्बई गये। इस बार बम्बई में आप क़ानून का अध्ययन करना चाहते थे। किन्तु सहसा आपका ध्यान इतिहास की ओर आकर्षित हुआ और आप कानून के अध्ययन का मोह त्याग कर इतिहास का अध्ययन करने लगे। बड़ी लगन और बड़े परिश्रम से आपने इतिहास का अध्ययन किया। आपकी प्रतिभा बड़ी प्रखर और स्मरणशक्ति बड़ी तीव्र है। आप यद्यपि गुजराती ब्राह्मण हैं, किन्तु आपका हिन्दी-प्रेम अत्यधिक प्रशंसनीय है। आपने अपने ऐतिहासिक अनुसन्धानों से जिस भाँति हिन्दी-साहित्य का मस्तक ऊँचा किया है, उससे हिन्दी-साहित्य आपका चिर ऋणी रहेगा। आप बड़े ही सरल स्वभाव के निरभिमानी व्यक्ति हैं।

कार्य :—ओझा जी इतिहास के सुप्रसिद्ध विद्वान् हैं। आपकी इतिहास की विद्वत्ता को देख करके ही संवत् १९४४ में उदयपुर के महाराणा सज्जन सिंह ने आपको अपने इतिहास कार्यालय का मंत्री बनाया। संवत् १९६५

में अजमेर में गवर्नमेन्ट की ओर से अजमेर म्यूज़ियम का नवोद्‌घाटन हुआ। गवर्नमेन्ट ने उदयपुर से बुला कर आपको इस म्यूज़ियम का अध्यक्ष नियुक्त किया। काशी से प्रकाशित होने वाली नागरी-प्रचारिणी पत्रिका का आपने तेरह वर्षों तक योग्यता-पूर्वक सम्पादन भी किया। आपकी विद्वत्ता पर प्रसन्न होकर हिन्दी भाषी जनता ने संवत् १९८३ में आपको अखिल भारत वर्षीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का सभापति बनाया था। आपको आपकी प्राचीन लिपि माला नामक पुस्तक पर हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की ओर से इतिहास का सर्वप्रथम मंगलाप्रसाद पारितोषिक भी मिला है।

आपके जीवन की प्रमुख वस्तु इतिहास है। आपने राजपूत इतिहास के सम्बन्ध में बड़े-बड़े अनुसन्धान किये हैं। ऐतिहासिक अनुसन्धानों के लिये आपने बड़ी-बड़ी यात्राएँ कीं और अधिक कष्ट भी उठाये। आपने अपने ऐतिहासिक खोजों से राजपूताने के इतिहास का बिलकुल स्वरूप ही बदल दिया। आपका राजपूताना-प्रेम अधिक प्रशंसनीय है। अधिक वेतन मिलने पर भी आप राजपूताने को छोड़ कर अन्यत्र जाना पसन्द नहीं करते।

शैली :—ओझा जी की शैली इतिहास के लिये बड़ी ही उपयुक्त है। उसमें सरलता और सुबोधता का भली भाँति विकास पाया जाता है। आप उचित और आवश्यक स्थानों पर संस्कृत शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। स्पष्टता आपकी शैली की विशेषता है, किन्तु साधारण रूप से वह रोचक भी होती है।

रचनाएँ :—१ राजपूताने का इतिहास, भाग ४, २ प्राचीन लिपि माला, ३ सिरोही राज्य का इतिहास, ४ सोलंकियों का इतिहास, ५ मध्य कालीन भारतीय संस्कृति, ६ टाड राजस्थान, सम्पादित, ७ अशोक की धर्म लिपियाँ।

वीर-भूमि राजस्थान डिंगल-भाषा के कवियों की खान है। समय-समय पर वहाँ ऐसे कवि-रत्न उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने युद्धों के प्रसंगों पर ओजस्विनी रचनाओं द्वारा जादू का काम किया है। आज से लगभग १५० वर्ष पूर्व मारवाड़ में एक ऐसे ही व्यक्ति का जन्म हुआ था, जो सच्चा कवि, इतिहास का मर्मज्ञ, और साहित्य में उच्चकोटि का

विद्वान् था। अतएव इस लेख-द्वारा पाठकों को उक्त राज-स्थान के कवि-रत्न का यत्किंचित् परिचय कराया जाता है।

चारण और भाटों का राजपूतों में दीर्घ काल से बड़ा मान चला आ रहा है। सच पूछा जाय तो क्षत्रियों की वीरता को जीवित रखने वाले भी ये ही लोग रहे हैं। यही कारण है कि राजस्थान में इन लोगों को बड़ी-बड़ी जागीरें मिली हुई हैं। इस लेख के चरित्र-नायक कविराजा बाँकीदास का जन्म चारण-जाति के आसिया-कुल में. वि० सं० १८२८ (ई० सन् १७७१) में जोधपुर-राज्य के पचभद्रा-परगने के भाँडियावास गाँव में, हुआ था। अपने पिता से कविता का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर वि० सं० १८५४ (ई० सन् १७९७) के लगभग वह जोधपुर गए। वहाँ निरन्तर पाँच वर्ष तक भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से भाषा के काव्य-ग्रंथ, व्याकरण में सारस्वत, और चंद्रिका, साहित्य में कुवलयानंद तथा काव्यप्रकाश आदि ग्रंथों का अध्ययन कर हिंदी-भाषा के काव्य-ग्रंथों द्वारा विस्तृत ज्ञान-वृद्धि की।

उस समय मारवाड़-राज्य के सिंहासन को महाराज मानसिंह सुशोभित करते थे, जो विद्या-रसिक, काव्य-प्रेमी और कवियों के आश्रय-दाता थे। वि० सं० १८६० (ई० सन् १८०३) में बाँकीदास की पहुँच उक्त महाराजा के पास हुई। उनकी अद्भुत कवित्व-शक्ति, सत्यवादिता, और निर्भीकता आदि गुणों से मुग्ध होकर प्रथम अवसर पर ही उक्त गुण-ग्राही महाराजा ने उनको लाख-पसाव नामक पारितोषिक देकर अपने राजकवियों में स्थान दिया। महाराजा मानसिंह स्वयं कवि थे। उन्होंने अपनी ज्ञान-शक्ति का विकास करने के लिये बाँकीदास से साहित्य के ग्रंथों का पढ़ना आरंभ किया, और उसमें शीघ्र ही अच्छी गति प्राप्त कर ली। महाराजा ने इनको 'कविराजा' की उपाधि, ताज़ीम, पाँव में सोना और बाँहपसाव आदि से सम्मानित किया, तथा काग़ज़ों पर लगाने के लिये मोहर (मुद्रा) रखने का मान दिया, और उसमें उनको अपना शिक्षा-गुरु होने के वाक्य खुदवाने की आज्ञा दी, जो नीचे-लिखे अनुसार है—

"श्रीमान् मान धरणिपति बहु-गुन-रास,
जिन भाषा गुरु कीनौ बाँकीदास।"

शरीर स्थूल होने के कारण कविराजा बाँकीदास को चलने-फिरने में कठिनाई होती थी, और वृद्धावस्था में वह पैदल चलने में असमर्थ हो गए थे। वह जब जोधपुर के क़िले में जाते, तो जहाँ तक सवारी जाती है, वहाँ तक पालकी में बैठकर जाते, उसके आगे कहार तथा छोटे नौकर उनको लाठी के पाटे पर बिठाकर ले जाते थे। ज्योंही उनका पाटा महाराजा मानसिंह के सामने पहुँचता, त्यों ही महाराजा खड़े होकर उनको ताज़ीम देते, और वह पाटे पर बैठे हुए ही महाराजा को विरुद सुनाते थे।

वह डिंगल-भाषा एवं पिंगल-शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता तथा आशु कवि थे। उनकी धारणा-शक्ति इतनी प्रबल थी कि एक बार भी किसी के मुँह से कोई बात सुनते, तो उसको ज्यों-की-त्यों अपने मुँह से सुना देते थे। उनकी वीर-रस-पूर्ण कविता बड़ी चित्ताकर्षक होती थी। उनका इतिहास-ज्ञान भी बढ़ा-चढ़ा था। एक बार ईरान का कोई सरदार भारतवर्ष की सैर करता हुआ जोधपुर पहुँचा, और महाराजा से मुलाक़ात होने पर उसने किसी इतिहास-वेत्ता से बातचीत करने की इच्छा प्रकट की। इस पर महाराजा ने बाँकीदास को ही उपयुक्त समझ उस सरदार के पास भेजा। ईरानी सरदार उनसे मिलकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ। उसने उनके ऐतिहासिक ज्ञान की प्रशंसा लिखकर महाराजा के पास भेजी, जिससे महाराजा ने बड़ा गौरव समझा।

कविराजा बड़े स्वाभिमानी थे। एक समय महाराजा मानसिंह नेत्र-रोग से पीड़ित हुए, और वह पीड़ा छः मास तक बनी रही। विवश होकर महाराजा ने आँखों को दूषित वायु से बचाने के लिये पर्दे के भीतर रहना स्वीकार किया, और राज्य के कर्मचारियों को अपने सामने बुलाना छोड़ दिया। उन दिनों राजकर्मचारियों को महाराजा से कोई बात कहनी होती, तो वे पर्दे के बाहर बैठकर निवेदन करते थे। उस अवसर पर एक दिन महाराजा को कविराजा की आवश्यकता हुई। दो-तीन बार नौकर भेज उनको हाज़िर होने के लिये कहलाया, किन्तु

प्रत्येक बार उन्होंने बीमार होने का बहाना किया। तब उनके पुत्र ने उनको महाराजा के अप्रसन्न होने का डर दिखलाकर महलों में जाने का आग्रह किया। इस पर उन्होंने पर्दे के बाहर बैठकर महाराजा से बात करने में अपना अपमान होना प्रकट कर महाराजा के पास जाने से साफ इन्कार किया। यह बात उस सेवक ने ज्यों-की-त्यों महाराजा से कह सुनाई। इस पर महाराजा ने उस सेवक को फिर भेजकर कविराजा को कहला भेजा, कि यदि मेरी आँख की पीड़ा बढ़ जाय तो कोई चिंता नहीं, पर आपको बाहर बिठलाकर बात नहीं करूँगा। तब वह दरबार में गए। गुण-ग्राहक महाराजा ने नेत्र की पीड़ा होने पर भी कविराजा को अपने सम्मुख बुलाकर बात-चीत की।

महाराजा ने अपने राजकुमार छत्रसिंह की शिक्षा का भार भी कविराजा पर छोड़ा था; किंतु कविराजा ने कुँवर के लक्षण देखकर जान लिया कि वह अवगुणों का भंडार है, उस पर शिक्षा का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ेगा, इसलिये उन्होंने राजकुमार को शिक्षा देना छोड़ दिया। महाराजा मानसिंह को जब ज्ञात हुआ कि कविराजा राजकुमार को शिक्षा देने के लिये नहीं जाते, तब उन्होंने उनसे राजकुमार को न पढ़ाने का कारण पूछा। कविराजा ने कहा—"यह कुपूत है, इसको शिक्षा देकर मैं अपनी कीर्ति में बट्टा लगाना नहीं चाहता।" आगे जाकर उनका कथन अक्षरशः ठीक निकला, और महाराजा मानसिंह को छत्रसिंह के कारण बड़ी-बड़ी आपत्तियाँ उठानी पड़ीं।

कविराजा की अद्भुत काव्य-कला की प्रशंसा सुन मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह ने, जो काव्य के ज्ञाता थे, उन्हें उदयपुर बुलाकर विशेष रूप से उनका सम्मान करना चाहा, परंतु उन्होंने जोधपुर-नरेश के अतिरिक्त अन्य जगह से दान न लेने की प्रतिज्ञा कर ली थी, इसलिये महाराणा से प्रतिग्रह लेना अस्वीकार कर उसके लिये धन्यवाद-पूर्वक क्षमा-याचना की।

महाराजा मानसिंह के पूर्व जोधपुर की गद्दी पर उनके चचेरे भाई भीमसिंह थे। भीमसिंह ने गद्दी पर बैठते ही अपने कई भाई-भतीजों

को मरवा डाला था। इस कारण महाराजा मानसिंह वहाँ से भागकर जालोर में, जो बचाव के लिये सुरक्षित स्थान था, जा बैठे। उनको वहाँ से निकालने के लिये महाराजा भीमसिंह ने सिंघवी इंद्रराज को सेना देकर भेजा, जिसने जालोर के क़िले को घेर लिया, और मानसिंह को यहाँ तक तंग किया कि वह विवश होकर क़िले से निकल जायँ। उक्त क़िले में जलंधरनाथ का एक स्थान था। वहाँ के आयस (कनफड़ानाथ) देवनाथ ने उनसे कहा—"यदि आप छः दिन और इस क़िले में रह जाओगे, तो यह आपके हाथ से कभी न निकल सकेगा और आप मारवाड़ के स्वामी होकर जोधपुर पहुँचोगे।" इन वाक्यों पर उनको दृढ़ विश्वास हो गया, और अनेक आपत्तियाँ सहने पर भी उन्होंने जालोर के क़िले को न छोड़ा। इन्हीं दिनों जोधपुर से महाराजा भीमसिंह के देहांत हो जाने का समाचार इंद्रराज को मिला। जोधपुर का तमाम सैनिक-बल इंद्रराज के अधिकार में था, इसलिये उसने सोचा यदि कोई दूसरा गद्दी पर बैठ गया, तो सरदार उसे अपने क़ाबू में कर लेंगे, और मानसिंह को गद्दी पर बिठाया जाय, तो वह अपने हाथ में रहेगा, और उस पर यह बड़ा उपकार का काम होगा। निदान उसने महाराजा मानसिंह को यह सूचना देकर बिना संकोच उन्हें जोधपुर चलने के लिये कहलाया, परंतु उन्हें विश्वास नहीं हुआ। अंत में जब उन्हें निश्चित रूप से भीमसिंह की मृत्यु का हाल ज्ञात हुआ और उनके विरुद्ध होने वाले षड्यंत्र का भय मिट गया, तब वह जालोर से आकर जोधपुर के सिंहासन पर आरूढ़ हुए। इसके बाद महाराजा ने आयस देवनाथ की भविष्यद्वाणी को स्मरण कर उसको अपना गुरु बनाया, जिससे नाथों का उपद्रव बहुत बढ़ा, परंतु महाराजा सदा उस बात की उपेक्षा ही करते रहे। अंत में नाथों के उपद्रव से तंग होकर सरदारों ने आयस देवनाथ को अमीरख़ाँ पठान के द्वारा मरवा डाला, और कुँवर छत्रसिंह को महाराजा के हाथ से राज्याधिकार दिलवा दिया। इतना ही नहीं कुँवर को चांपासेनी के वल्लभ-संप्रदाय के गोसाईं द्वारा मंत्रोपदेश दिलवाया, जिससे वहाँ कनफड़ों का प्रभाव हटने लगा। उस समय कविराजा ने महाराजा के अप्रसन्न

होने की कुछ भी परवा न कर नाथों का निन्दा-सूचक एक सवैया कहा, जिसका अंतिम चरण इस प्रकार है—

"मान को नंद गोविंद रहे, जद···फ़टे कनफट्टन की।"

युवराज छत्रसिंह शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हुआ, तदनंतर फिर राज्याधिकार महाराजा ने अपने हस्तगत कर लिया। नाथों के बड़े पक्षपाती होने के कारण उक्त महाराजा ने कविराजा के कहे हुए उक्त दोहे से चिढ़कर उनको दंड देना चाहा। महाराजा के क्रूर स्वभाव से कविराजा अपरिचित न थे। इसलिये जो नौकर उन्हें बुलाने आया, उससे कहा कि मैं हाज़िर होता हूँ, तुम चलो। किंतु वह महाराजा के पास नहीं गए, और तेज़ चलने वाले ऊँट पर सवार होकर, मारवाड़ का परित्याग कर मेवाड़ चल दिए। वहाँ पर उनका वैसा ही आदर रहा, जैसा जोधपुर में था। महाराजा को कविराजा के मारवाड़ छोड़ देने पर बड़ा दुःख हुआ। अंत में उन्होंने बहुत कुछ अनुनय-विनय करके उनको फिर जोधपुर बुला लिया।

श्रावण-सुदि ३, वि० सं० १८९० (ई० सन् १८३३) को कविराजा का परलोकवास हुआ। महाराजा मानसिंह को उनकी मृत्यु पर बड़ा शोक हुआ, और निम्नलिखित सोरठों में उन्होंने अपने हृदयोद्गार प्रकट किए—

"सद्विद्या बहु साज, बाँकी थी बाँका बसु; कर सुधि कवराज, आज कठीगो आसिया। विद्या कुल विख्यात, राज काज हर रहसरी; बाँका तो बिण बात, किण आगल मनरी कहाँ।"

कविराजा बाँकीदास-रचित डिंगल और ब्रजभाषा के छोटे-बड़े कई ग्रन्थ हैं, और उनकी फुटकर कविताएँ और गीत तो अनेक हैं। महाभारत के कुछ अंश का हिंदी-अनुवाद भी उन्होंने किया था, परंतु अभी तक वह अप्रकाशित ही है। मरु-भाषा की गंगालहरी आदि २४ ग्रन्थों में से निम्नलिखित ग्रंथ नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी ने बालाबक्ष राजपूत-चारण-पुस्तकमाला में, दो भागों में, प्रकाशित किए हैं।

पहले भाग में—(१) सूर-छत्तीसी, (२) सीह-छत्तीसी (३) वीर-विनोद, (४) धवल-पच्चीसी (५) दातार-बावनी, (६) नीति-मंजरी और (७) सुपह-छत्तीसी।

दूसरे भाग में—(१) वैसक-वार्ता, (२) मावड़िया मिजाज, (३) कृपण-दर्पण, (४) मोह-मर्दन, (५) चुगल-मुख-चपेटिका, (६) वैस-वार्ता, (७) कुकवि-बत्तीसी, (८) विदुर-बत्तीसी, (९) भुरजाल-भूषण और (१०) गंगालहरी।

अप्रकाशित—(१) झमाल, (२) जेहल-जस-जड़ाव, (३) सिधराव-छत्तीसी, (४) संतोष-बावनी, (५) सुजस-छत्तीसी, (६) वचन-विवेक-पच्चीसी और (७) कायर-बावनी।

कविराजा बाँकीदास की कविता डिंगल-भाषा में प्रायः वीर-रस-पूर्ण हुआ करती थी, जिसका राजपूताने में बड़ा सम्मान है किन्तु समय-समय पर उन्होंने अपनी कविता में अन्य रसों का भी प्रयोग किया है। कहते हैं, जयपुर और जोधपुर के महाराजों के आपस के वैर को मिटाने के लिये महाराजा मानसिंह ने अपनी कन्या का विवाह जयपुराधीश जगत्सिंह के साथ तथा जगत्सिंह ने अपनी बहन का विवाह मानसिंह के साथ कर दिया था। उस समय हिन्दी के प्रसिद्ध कवि पद्माकर और बाँकीदास के बीच काव्यचर्चा हुई, जिसमें बाँकीदास ने बाज़ी मार ली। उनकी डिंगल-भाषा की कविता ओज-पूर्ण, प्रसाद-गुण युक्त, उत्कृष्ट एवं सुधरी हुई होती थी। उनका ऐतिहासिक ज्ञान भी अगाध था। मेरे संग्रह में उनकी लिखी हुई अनुमानतः २८०० ऐतिहासिक बातों का संग्रह है, जो अब तक अप्रकाशित है। वह संग्रह केवल राजपूताने के इतिहास के लिये ही उपयोगी है। इतना ही नहीं, किन्तु राजपूताने के बाहर राज्यों तथा मुसलमानों के इतिहास की भी उसमें कई बातें उल्लिखित हैं।

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) निम्नांकित शब्दों के अर्थ समझाओ :—ओजस्विनी, मर्मज्ञ, काव्य-कला, षड्यंत्र, अनुनय-विनय, उत्कृष्ट।

(ख) इन शब्दों के अर्थों पर विचार करके इनके पर्यायवाची शब्द बताओ :—निरन्तर, पारितोषिक, चन्द्रिका।

२—भाषा सम्बन्धी—

(ग) जीवन चरित्र की भाषा सरल और सुबोध होनी चाहिये। क्या इस लेख में तुम्हें सरलता और सुबोधता का पुट मिलता है? यदि हाँ, तो प्रमाणित करो।

(घ) इस लेख के किसी स्थल में यदि उर्दू या अन्य किसी भाषा के शब्द आये हों, तो उन्हें हिन्दी में रूपान्तरित करो।

(ङ) निम्नांकित अंशों का भाव स्पष्ट करो :—

(क) वह डिंगलभाषा······चित्ताकर्षक होती थी।

(ख) उनकी डिंगलभाषा की······सुघरी हुई होती थी।

३—विचार सम्बन्धी—

(च) कविराजा बाँकीदास की कविता कैसी होती थी? लेखक ने उस पर अपना क्या मत प्रगट किया है?

(छ) डिंगलभाषा से क्या तात्पर्य समझते हो? इस भाषा के कवि भारतवर्ष के किस स्थान में अधिक पाये जाते हैं?

४—व्याकरण सम्बन्धी—

(ज) निम्नांकित शब्दों के समासों का विग्रह करो—कवि-रत्न, आशुकवि, नेत्र रोग, गुण-ग्राहक, राज्याधिकार, नागरी-प्रचारिणी।

(झ) प्रत्यय या उपसर्ग लगाकर विविध शब्द बनाओ—मन, ज्ञान, रूप।

(ट मूल शब्द बताओ और उनसे अन्य प्रकार की संज्ञाएँ एवं विशेषण बनाओ—ऐतिहासिक, सम्मानित, पीड़ित, सैनिक।

(ठ) संधि विग्रह करो :—यत्किंचित्, निरन्तर, चित्ताकर्षक तदनन्तर हृदयोद्गार।

(ड) वाक्य विश्लेषण करो :—

(ग) उनकी अद्भुत कवित्व शक्ति······स्थान दिया।

(घ) इतना ही नहीं······उल्लिखित हैं।

(त) निम्नांकित शब्दों की पद व्यख्या करो—अद्भुत्, अतिरिक्त, प्रकट।

२—दीनों पर प्रेम

[लेखक—श्रीयुत वियोगीहरि]

वंश:—ब्राह्मण

जन्म संवत्:—१९५३

परिचय—आपका पूरा नाम हरिप्रसाद द्विवेदी है। किन्तु हिन्दी साहित्य में आप वियोगीहरि के ही नाम से विख्यात हैं। इसी नाम से आपकी सम्पूर्ण रचनाएँ भी प्रकाशित हुई हैं। १९१५ ई० में आपने मैट्रिकुलेशन की परीक्षा पास की। आपको दर्शन-शास्त्र से अधिक प्रेम है। अपने इसी प्रेम के कारण आप कुछ दिनों तक छतरपुर में रहे। वहाँ आप छतरपुर नरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी श्रीयुत गुलाबराय जी से दर्शनशास्त्र का अध्ययन कर रहे थे। इसके पश्चात् आप दिल्ली चले गये और आज कल वहीं 'हरिजन' नामक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन कर रहे हैं।

आप बड़े भावुक और भक्त हैं। खड़ी बोली और ब्रजभाषा, दोनों में कविता करने की सफल क्षमता रखते हैं। ब्रजभाषा के कवियों में आपका विशेष स्थान है। आपकी 'वीरसतसई' नामक पुस्तक पर आपको हिन्दी-साहित्य सम्मेलन से मंगलाप्रसाद पारितोषिक भी प्राप्त हो चुका है।

कार्य:—हिन्दी-साहित्य के गद्य-पद्य लेखकों में आपका विशेष स्थान है। आपने कई मौलिक पुस्तकें लिखीं, तथा कई पुस्तकों का सम्पादन भी किया है। दिल्ली से प्रकाशित होने वाले 'हरिजन' पत्र के आप ही सम्पादक हैं। आपने बहुत से स्फुट लेख और कवितायें भी लिखी हैं। आपके लेखों और आपकी कविताओं में प्रायः भक्तिभाव की प्रधानता पाई जाती है।

शैली:—आपकी शैली में संस्कृत का अनुशीलन पाया जाता है। स्थान-स्थान पर भाषा सानुप्रासिक है। उसमें स्वाभाविकता का सुन्दर विकास पाया जाता है। आवेश-पूर्ण कथनोपकथन लिखने में आप अपना विशेष स्थान रखते हैं। आप कहीं कहीं उर्दू शब्दावली का भी प्रयोग करते हैं।

रचनाएँ—गद्य काव्य—१ तरंगिणी, २ अन्तर्नाद, ३ ठंडे छींटें।

नाटक—४ छद्म योगिनी। संग्रह—५ साहित्य विहार। कविता—६ वीरसतसई। विवेचनात्मक—७ ब्रजमाधुरीसार।

हम नाम के ही आस्तिक हैं। हर बात में ईश्वर का तिरस्कार करके ही हमने 'आस्तिक' की ऊँची उपाधि पाई है। ईश्वर का एक नाम 'दीनबन्धु' है। यदि हम वास्तव में आस्तिक हैं, ईश्वर-भक्त हैं, तो हमारा यह पहला धर्म है कि दीनों को प्रेम से गले लगायें, उनकी सहायता करें, उनकी सेवा करें, उनकी शुश्रूषा करें, तभी न दीनबन्धु ईश्वर हम पर प्रसन्न होगा? पर ऐसा हम कब करते हैं? हम तो दीन-दुर्बलों को ठुकरा-ठुकरा कर ही आस्तिक या दीनबन्धु भगवान् के भक्त आज बने बैठे हैं। दीनबन्धु की ओट में हम दीनों का खासा शिकार खेल रहे हैं। कैसे अद्वितीय आस्तिक हैं हम! न-जाने क्या समझ कर हम अपने कल्पित ईश्वर का नाम दीनबन्धु रखे हुए हैं, क्यों इस रद्दी नाम से उस लक्ष्मी-कान्त का स्मरण करते हैं—

दीननि देखि घिनात जे, नहिं दीनन सों काम।
कहा जानि ते लेत हैं दीनबन्धु कौ नाम॥

यह हमने सुना अवश्य है, कि त्रिलोकेश्वर श्रीकृष्ण की मित्रता और प्रीति सुदामा नाम के एक दीन-दुर्बल ब्राह्मण से थी। यह भी सुना है, कि भगवान् यदुराज ने महाराज दुर्योधन का अतुल आतिथ्य अस्वीकार कर बड़े प्रेम से ग़रीब विदुर के यहाँ साग-भाजी का भोग लगाया था। पर ये बातें चित्त पर कुछ बैठती नहीं हैं। रहा हो कभी ईश्वर का दीनबन्धु नाम, पुरानी सनातनी बात है, कौन काटे? पर हमारा भगवान्, दीनों का भगवान् नहीं है। हरे, हरे! वह उन घिनौनी कुटियों में रहने जायगा? वह रत्न-जटित स्वर्ण-सिंहासन पर विराजने वाला ईश्वर उन भुक्खड़ कंगालों के फटे-कटे कम्बलों पर बैठने जायगा? वह मालपुआ और मोहनभोग का भोग लगानेवाला भगवान् उन भिखारियों की रूखी-सूखी रोटी खाने

जायगा ? कभी नहीं हो सकता। हम अपने बनवाये हुए विशाल राज-मन्दिरों में उन दीन-दुर्बलों को आने भी न देंगे। उन पतितों और अछूतों की छाया तक हम अपने ख़रीदे हुए ख़ास ईश्वर पर न पड़ने देंगे। दीन-दुर्बल भी कहीं ईश्वर-भक्त होते सुने हैं ? ठहरो, ठहरो, यह कौन गा रहा है ? ठहरो, ज़रा सुनो। वाह ! तब यह ख़ूब रहा !

मैं ढूँढ़ता तुझे था जब कुंज और वन में,
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में।
तू आह बन किसी की मुझको पुकारता था,
मैं था तुझे बुलाता संगीत में, भजन में।

तो क्या हमारे श्रीलक्ष्मीनारायण "दरिद्र-नारायण" हैं ? इस फ़क़ीर की सदा से तो यही मालूम हो रहा है। तो क्या हम भ्रम में थे ? अच्छा, अमीरों के शाही महलों में वह पैर भी नहीं रखता !

मेरे लिए खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू,
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में !

हज़रत खड़े भी कहाँ होने गये।

बेबस गिरे हुओं के तू बीच में खड़ा था,
मैं स्वर्ग देखता था झुकता कहाँ चरन में।

तो क्या उस दीनबन्धु को अब यही मंजूर है कि हम अमीर लोग, धन-दौलत को लात मारकर उसकी खोज में दीन-हीनों की झोपड़ियों की ख़ाक छानते फिरें ?

× × ×

दीन-दुर्बलों को अपने असह्य अत्याचारों की चक्की में पीसने वाला धनी परमात्मा के चरणों तक कैसे पहुँच सकता है। धनान्ध को स्वर्ग का द्वार दीखेगा ही नहीं। महात्मा ईसा का यह वचन क्या असत्य है—

"यदि तू सिद्ध पुरुष होना चाहता है, तो, जा, जो कुछ धन-दौलत तेरे पास हो, वह सब बेचकर कंगालों को दे दे। तुझे अपना ख़ज़ाना

स्वर्ग में सुरक्षित रखा मिलेगा। तब, आ और मेरा अनुयायी हो जा। मैं तुमसे सच कहता हूँ, कि धनवान के स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करने की अपेक्षा ऊँट का सुई के छेद में निकल जाना कहीं आसान है।" सहजोबाइ भी यही बात कह रही हैं:—

"बड़ा न जानै पाइहै साहिब के दरबार।
द्वारे ही सूँ लागिहै 'सहजो' मोटी मार॥"

किसानों और मजदूरों की टूटी-फूटी झोपड़ियों में ही प्यारा गोपाल वंशी बजाता मिलेगा। वहाँ जाओ, उसकी मोहिनी छवि निरखो। जेठ-बैसाख की कड़ी धूप में मजदूर के पसीने की टपकती हुई बूँदों में उस प्यारे राम को देखो। दीन-दुर्बलों की निराशा-भरी आँखों में उस प्यारे कृष्ण को देखो। किसी धूल भरे हीरे की कनी में उस सिरजनहार को देखो। जाओ, पतित, पददलित अछूत की छाया में उस लीला-विहारी को देखो।

× × ×

तुम न जाने उसे कहाँ खोज रहे हो! अरे भाई यहाँ वह कहाँ मिलेगा? इन मन्दिरों में वह राम न मिलेगा। इन मसजिदों में अल्लाह का दीदार मुश्किल है। इन गिरजों में कहाँ परमात्मा का वास है? इन तीर्थों में वह मालिक रमने का नहीं। गाने-बजाने से भी वह रीझने का नहीं। अरे, इन सब चटक-मटक में वह कहाँ? वह तो दुखियों की आह में मिलेगा। ग़रीबों की भूख में मिलेगा। दीनों के दुःख में मिलेगा। वहाँ तुम खोजने जाते नहीं। यहाँ व्यर्थ फिरते हो!

दीनबन्धु का निवास-स्थान दीन-हृदय है। दीन-हृदय ही मन्दिर है, दीन-हृदय ही मसजिद है, दीन-हृदय ही गिरजा है। दीन-दुर्बल का दिल दुखाना भगवान् का मन्दिर ढहाना है। दीन को सताना सबसे भारी धर्मविद्रोह है। दीन की आह समस्त धर्म-कर्मों को भस्मसात् कर देनेवाली है। सन्तवर मलूकदास ने कहा है—

"दुखिया जनि कोइ दूखिये, दुखिये अति दुख होय।
दुखिया रोइ पुकारिहै, सब गुड़ माटी होय ॥"

दीनों को सता कर, उनकी आह से कौन मूर्ख अपने स्वर्गीय जीवन को नारकीय बनाना चाहेगा, कौन ईश्वर-विद्रोह करने का दुस्साहस करेगा? ग़रीब की आह भला कभी निष्फल जा सकती है—

'तुलसी' हाय ग़रीब की, कबहुँ न निष्फल जाय।
मरे बैल के चाम सों, लोह भसम ह्वै जाय ॥,

और की बात हम नहीं जानते, पर जिसके हृदय में थोड़ा-सा भी प्रेम है, वह दीन-दुर्बलों को कभी सता ही नहीं सकता। प्रेमी निर्दय कैसे हो सकता है? उसका उदार हृदय तो दया का आगार होता है। दीन को वह अपनी प्रेममयी दया का सब से बड़ा और पवित्र पात्र समझता है। दीन के सकरुण नेत्रों में उसे अपने प्रेमदेव की मनमोहिनी मूर्ति का दर्शन अनायास प्राप्त हो जाता है। दीन की मर्म-भेदिनी आह में उस पागल को अपने प्रियतम का मधुर आह्वान सुनाई देता है। इधर वह अपने दिल का दरवाज़ा दीन-हीनों के लिए दिन-रात खोले खड़ा रहता है, और उधर परमात्मा का हृदय-द्वार उस दीन-प्रेमी का स्वागत करने को उत्सुक रहा करता है। प्रेमी का हृदय दीनों का भवन है, दीनों का हृदय दीनबन्धु भगवान् का मन्दिर है, और भगवान् का हृदय प्रेमी का वास-स्थान है। प्रेमी के हृदेश में दरिद्रनारायण ही एक-मात्र प्रेम-पात्र है। दरिद्र-सेवा ही सच्ची ईश्वर-सेवा है। दीन-दयालु ही आस्तिक है, ज्ञानी है, भक्त है, और प्रेमी है। दीन-दुखियों के दर्द का मर्मी ही महात्मा है। ग़रीबों की पीर जाननेहारा ही सच्चा पीर है। कबीर ने कहा है—

'कबिरा' सोई पीर है, जो जानै पर-पीर।
जो पर-पीर न जानई, सो काफ़िर बेपीर ॥'

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) निम्नांकित शब्दों के अर्थ बताओ :—आस्तिक, तिरस्कार, अद्वितीय, अपेक्षा, भस्मसात्, विद्रोह, आह्वान।

(ख) अर्थान्तर की व्याख्या करो :—उपाधि—व्याधि, आस्तिक—नास्तिक, असह्य—सह्य, सुरक्षित—अरक्षित ।

(ग) तत्सम रूप लिखो :—घिन, चरन, भसम ।

२—भाषा सम्बन्धी—

(घ) वियोगी हरि जी किस ढंग की भाषा के पक्षपाती ज्ञात होते हैं ?

(ङ) इस लेख की भाषा से क्या तुम यह प्रमाणित कर सकते हो कि वियोगीहरि जी उर्दू की शब्दावली का भी कहीं कहीं प्रयोग करते हैं ?

(च) इस लेख क अन्तर्गत आने वाले उर्दू शब्दों को हिन्दी में रूपान्तरित करो ।

(छ) शुद्ध और सरल भाषा में भाव स्पष्ट करो :—

(क) दीन-बन्धु का निवास…मन्दिर ढहाना है ।

(ख) दीन-दयालु ही…सच्चा पीर है ।

३—विचार सम्बन्धी—

(ज) लेखक के विचारानुसार वास्तविक आस्तिक किसे कहते हैं ?

(झ) तुम यह कैसे प्रमाणित कर सकते हो कि भगवान् दीनों से अधिक प्रेम करते हैं ?

(ञ) संक्षिप्त परिचय दो :—कृष्ण, सुदामा, सहजोबाई, मलूकदास ।

(ट) निम्नांकित वाक्यों पर अपने विचार प्रकट करो :—

(क) दीन-दयालु ही आस्तिक है ।

(ख) ग़रीबों की पीर जानने वाला ही सच्चा पीर है ।

(ठ) इस लेख से तुम्हारे हृदय में किस प्रकार के भावों का उदय होता है ?

४—व्याकरण सम्बन्धी—

(ड) सविग्रह समास बताओ :—दीन-बन्धु, दीन-दुर्बल, त्रिलोकेश्वर, रत्न-जटित, स्वर्ण-सिंहासन, मर्म-भेदिनी ।

(ढ) नीचे लिखे हुये शब्द किन शब्दों से बनाये गये हैं :—कल्पित, मित्रता, सनातनी, मोहिनी, प्रेममयी ।

(ण) प्रथम अनुच्छेद की क्रियाएँ चुनो और उनकी पद-व्याख्या करो।

(त) वाक्य विश्लेषण करो—

(क) यदि तू सिद्ध पुरुष······रखा मिलेगा।

(ख) दीन के सकरुण नेत्रों में···सुनाई देता है।

(थ) पदव्याख्या करो :—उपाधि पाई है, भोग लगाया था, पात्र समझता है।

३—चरित्र-पालन

[लेखक—पं० बालकृष्ण भट्ट]

वंशः—ब्राह्मण

जन्मस्थान :—प्रयाग

जन्म संवत् :—१६०१

मृत्यु संवत्—१६७१

परिचयः—भट्ट जी बाल्यावस्था ही से बड़े प्रतिभाशाली थे। बारह वर्ष की अवस्था तक उन्हें संस्कृत की शिक्षा दी गई। इसके पश्चात् वे अँगरेज़ी की शिक्षा प्राप्त करने लगे। एन्ट्रेन्स की परीक्षा पास करने के पश्चात् वे मिशन-स्कूल में अध्यापक हो गये। किन्तु अपनी धार्मिक भावनाओं के कारण भट्ट जी मिशन स्कूल में अधिक दिनों तक न रह सके। अध्यापन-काल में ही उनका ध्यान हिन्दी-साहित्य की ओर आकृष्ट हो चुका था। अतः वे स्कूल से अलग होकर स्वतंत्र रूप से हिन्दी साहित्य की सेवा करने लगे। उन्होंने बहुत से स्फुट लेख लिखे। उनके लेखों से उनकी चारों ओर सुख्याति फैल गई। जीवन के अन्तिम भाग में उन्होंने प्रयाग की कायस्थ पाठशाला में संस्कृत के अध्यापक का कार्य भी किया था।

कार्य :—हिन्दी गद्य साहित्य में भट्ट जी का विशेष स्थान है। उनके स्फुट निबन्धों से गद्य-साहित्य के प्रसार में अधिक सहायता प्राप्त हुई। उन्होंने 'हिन्दी-प्रदीप' नाम का एक मासिक पत्र निकाला था। भट्ट जी ने इस पत्र

का तैंतीस वर्षों तक लगातार सम्पादन किया। इस पत्र के द्वारा हिन्दी गद्य की अच्छी उन्नति हुई थी।

शैली :—भट्ट जी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की शैली के अनुयायी थे। उनकी शैली में उनका एक अपनापन झलकता है। रोचकता और सजीवता के उनकी शैली में बड़े अपूर्व दर्शन होते हैं। मुहाविरों का बड़ा ही सराहनीय प्रयोग हुआ है। मुहाविरों के उत्तम प्रयोग के कारण भाषा अधिक सुन्दर और ओजस्विनी बन गई है। उनके विषय चयन में उनकी एक विशेष विशेषता है। साधारण विषयों पर भी भट्ट जी ने सुन्दर शैली में निबन्ध लिखे हैं। भट्ट जी ही आज के विकसित गद्य-काव्य के निर्माता हैं।

रचनाएँ :—१ साहित्य सुमन (निबन्ध संग्रह), २ सौ अजान एक सुजान (कहानी), ३ नूतन ब्रह्मचारी (कहानी), ४ शिक्षा दान।

चरित्र में कहीं पर किसी तरह का दाग़ न लगने पावे, इस बात की चौकसी का नाम चरित्र-पालन है। हमारे लिए चरित्र-पालन की आवश्यकता इसलिए मालूम होती है कि चरित्र को यदि हम सुधारने की फिकर न रखें तो उसे बिगड़ते देर नहीं लगती, जैसे उर्वरा फलवंत धरती में लंबी-लंबी घास और कटीले पेड़ आप-से-आप उग आते हैं और अन्न आदि के उपकारी पौधे बड़े यत्न व परिश्रम के उपरान्त उगते हैं। सच तो यों है कि त्रिगुणात्मक प्रकृति ने चरित्र में विकार पैदा कर देने वाले इतने तरह के प्रलोभन संसार में उपजा दिये हैं कि जिनसे आकर्षित हो मनुष्य बात-की-बात में ऐसा बिगड़ जा सकता है कि फिर यावज्जीवन किसी काम का नहीं रहता। महल बनाने में कितना यत्न और परिश्रम करना पड़ता है, पर जब वह बनकर तैयार हो जाता है तो उसे ढहाते देर नहीं लगती। इसी बात पर लक्ष्य कर कवि-शिरोमणि कालिदास ने कहा है—

> विकार-हेतौ सति विक्रियंते
> येषां न चेतांसि, स एव धीराः।

अर्थात्—जो बातें विकार पैदा करने वाली हैं उनके होते हुए भी जिनके मन में विकार पैदा न हो वे धीर हैं। महाकवि भारवि ने भी ऐसा ही कहा है—

विक्रिया न खलु काल-दोष-जा
निर्मल-प्रकृतिषु स्थिरोदया।

अर्थात्—निर्मल प्रकृति वालों में काल की कुटिलता के कारण जो विकार पैदा होते हैं, वे चिरस्थायी नहीं रहते।

चरित्र-रक्षा एक प्रकार की सन्दली ज़मीन है, जिस पर यश-सौरभ इत्र के समान बनाये जा सकते हैं—अर्थात् जैसे गंधी सन्दल का पुट देकर हर क़िस्म का इत्र उसमें से तैयार करता है, वैसे ही चरित्र जब आदमी का शुद्ध है तो वह हर तरह की योग्यता प्राप्त कर सकता है। शुद्ध चरित्र वाला मनुष्य सब जगह प्रतिष्ठा पाता है। वह जिस काम में सन्नद्ध होता है उसी में पूर्ण योग्यता को पहुँच हर तरह सरसब्ज़ होता है।

यथा हि मलिनैर्वस्त्रैर्यत्र-तत्रोपविश्यते।
एवं चलित-वृत्तस्तु वृत्त-शेषं न रक्षति॥

अर्थात्—जैसे मैला कपड़ा पहना हुआ मनुष्य जहाँ चाहता है, वहाँ बैठ जाता है, कपड़ों में दाग़ लग जाने का ख़याल उस आदमी को बिलकुल नहीं रहता, उसी तरह चलित—वृत्त अर्थात् जिसके चाल चलन में दाग़ लग गया है, वह फिर बाक़ी अपने और चरित्र को भी नहीं बचा सकता, वरन् वह नित्य-नित्य बिगड़ता जाता है। मन, जिह्वा और हाथ का निग्रह चरित्र पालन का मुख्य अङ्ग है। जिन्होंने मन को कुपथ पर जाने से रोका है, जीभ को दूसरे की चुग़ली-चबाई से या गाली देने से रोका है, और हाथ को दूसरे की वस्तु चुराने से या बेईमानी से ले लेने से रोक रक्खा है वही चरित्र-पालन में उदाहरण दूसरों के लिए हो सकता है। ऐसा मनुष्य कसौटी में कसे जाने पर खरे-से-खरा निकलेगा।

वरं विन्ध्याटव्यामनशनतृषार्त्तस्य मरणं
वरं सर्पाकीर्णे तृणपिहितकूपे निपतनम् ;
वरं गर्त्तावर्ते गहनजलमध्ये विलयनं
न शीलाद्विभ्रंशोभवतु कुलजस्य श्रुत वतः ।

सच है, कुलीन समझदार साक्षर के लिए चरित्र में दाग़ लगना ऐसी ही बुरी बात है कि उसे अपना जीवन भी बोझ मालूम होने लगता है। जैसा ऊपर के श्लोक में कवि ने कहा है कि—"विन्ध्य पहाड़ के वन में भूखा-प्यासा ही मर जाना अच्छा, तिनकों से ढके सर्पों से भरे कुएँ में गिर कर प्राण दे देना श्रेष्ठ, पानी के भँवर में डूबकर बिला जाना उत्तम, पर शिष्ट पढ़े-लिखे मनुष्य का चरित्र से च्युत हो जाना अच्छा नहीं।" रुपया-पैसा हाथ का मैल है, आता-जाता रहता है, किन्तु बात गये बात फिर नहीं बनती। इसीलिए धन का दरिद्र, यदि वह सुचरित्र में आढ्य हो तो, दरिद्र नहीं कहा जा सकता। जिनकी आँख का पानी ढरक गया है, उनको चरित्र-पालन कोई बड़ी बात नहीं है, और न इसकी कुछ क़दर उन्हें है; किन्तु जो चरित्र को सब से बड़ा धन माने हुए हैं, वे अत्यन्त समझ के साथ बड़ी सावधानी से संसार में निबहते हैं। यावत् धर्म कर्म और परमार्थ-साधन सब का निचोड़ वे इसी को मानते हैं। ऐसे लोग जन-समाज में बहुत कम पाये जाते हैं, हज़ारों में कहीं एक ऐसे होते हैं, और ऐसे ही लोग समाज में अगुआ, राह दिखानेवाले, आचार्य, गुरु, रसूल या पैग़म्बर हुए हैं, और आप्त तथा शिष्ट माने गये हैं। उनके एक-एक शब्द जो मुख से निकलते हैं तथा उनका उठना-बैठना चलना-फिरना अलग-अलग चरित्र-पालन में उदाहरण होता है। जो प्रतिष्ठा बड़े-से-बड़े राजाधिराज, सम्राट्, बादशाह, शाहंशाह को दुर्लभ है वह चरित्रवान् को सुलभ है, और यह प्रतिष्ठा चरित्र-पालन वाले को सहज ही में मिल गई हो, सो नहीं, वरन् सच कहिये तो यह असिधारा-व्रत है; संसार के अनेक सुखों को लात मार बड़े-बड़े क्लेश उठाने के उपरान्त मनुष्य इसमें पक्का हो सकता है।

चरित्र से बहुत मिलती हुई दूसरी बात शील है। शील का चरित्र ही में अन्तर्भाव हो सकता है। चरित्र-पालन में चतुर शीलसंरक्षण में भी प्रवीण हो सकेगा, किन्तु शील-संरक्षण में विचक्षण मनुष्य चरित्र-पालन में प्रवीण नहीं हो सकता। अङ्गरेज़ी में शील के लिए 'कांडक्ट' और चरित्र के लिए 'कैरेक्टर' शब्द हैं। आदमी की बाहरी चालचलन का सुधार शील या "कांडक्ट" अथवा 'बिहेवियर' कहा जायगा, किन्तु मनुष्य का अभ्यन्तर शुद्ध जब तक न होगा, तब तक बाहरी सभ्यता 'चरित्र' नहीं कहलायेगी। श्रीरामचन्द्र, युधिष्ठिर, बुद्धदेव तथा महात्मा ईसा के चरित्रपालन का समाज पर वैसा ही असर होता है, जैसा रक्त-संचालन का शरीर पर। सुस्निग्ध पुष्ट भोजन से जो रुधिर पैदा होता है, वह शरीर को पुष्ट और नीरोग रखता है, वैसेही जिस समाज में चरित्र-पालन की क़दर है और लोगों को इसका ख़याल है कि हमारा चरित्र दग़ीला न होने पावे, वह समाज पुष्ट पड़ता जाता है और उत्तरोत्तर उसकी उन्नति होती जाती है। जिस समाज में चरित्रपालन पर किसी की दृष्टि नहीं है और न किसी को, 'चरित्र किस तरह बनता व बिगड़ता है' इसका कुछ ख़याल है, उस बिगड़े समाज का भला क्या कहना। कुपथ्य भोजन से विकृत रुधिर पैदा होकर जैसे शरीर को व्याधि का आलय बना नित्य उसे क्षीण और जर्जर करता जाता है, वैसे ही लोगों के कुचरित्र होने से समाज नित्य क्षीण, निःसत्व और जर्जर होता जाता है। जिस समाज में चरित्र की बहुतायत होगी, वह समाज सर्वोपरि दीप्यमान होकर देश और जाति की उन्नति का द्वार होगा। हमारी प्राचीन आर्य-जाति चरित्र की खान थी, जिसके नाम से इस समय हिन्दू-मात्र पृथ्वी-भर में विख्यात हैं। अफ़सोस! जो क़ौम किसी समय दुनिया के सब लोगों के लिए चरित्र-शिक्षा में नमूना थी, वह आज दिन यहाँ तक गई-बीती होगई कि दूसरे से सभ्यता और चरित्र-पालन की शिक्षा लेने में अपना अहोभाग्य समझती है। समय-खेलाड़ी ने हमें अपना खिलौना बनाकर जैसा चाहा, वैसा खेल खेलाया। देखें, आगे अब वह कौन खेल खेलता है!

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) निम्नांकित शब्दों के अर्थ समझाओ :—
चौकसी, उपरान्त, सन्दली, सन्नद्ध, निग्रह, प्रवीण, संरक्षण, सुस्निग्ध, आलय, दीप्यमान।

(ख) इन शब्दों के अर्थों पर विचार करके इनके पर्यायवाची शब्द बताओ :—निर्मल, च्युत, शिष्ट, रुधिर, दृष्टि।

२—भाषा सम्बन्धी :—

(ग) भट्ट जी की शैली में उनका एक अपनापन है, इस बात को तुम इस लेख की भाषा से कैसे प्रमाणित कर सकते हो?

(घ) भट्ट जी किस ढंग की भाषा के पक्षपाती थे? इस लेख से उसकी पुष्टि करो।

(ङ) इस लेख के किसी स्थल में यदि उर्दू या अन्य किसी भाषा के शब्द आये हों, तो उन्हें हिन्दी में रूपान्तरित करो।

(च) निम्नांकित अंशों का भाव स्पष्ट करो :—
(क) चरित्र से बहुत मिलती हुई............प्रवीण नहीं हो सकता।
(ख) कुपथ्य भोजन से .....जर्जर होता जाता है।

३—विचार सम्बन्धी—

(छ) 'चरित्र रक्षा एक प्रकार की सन्दली ज़मीन है,' लेखक की इस उक्ति को अपने प्रमाणों से प्रमाणित करो।

(ज) चरित्र-पालन से क्या समझते हो? वह कैसे और किस प्रकार किया जा सकता है?

(झ) धन का दरिद्र सुचरित्र होने पर दरिद्र क्यों नहीं कहा जा सकता?

(ञ) शील और चरित्र के भीतरी भेदों को भली भाँति समझा कर बताओ।

(ट) निम्नांकित व्यक्तियों के सम्बन्ध में संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखो :—
कालिदास, भारवि, श्रीरामचन्द्र, युधिष्ठिर, बुद्धदेव, ईसा।

४—व्याकरण सम्बन्धी :—

(ठ) सविग्रह समास बताओ :—त्रिगुणात्मक, चरित्र पालन, राजाधिराज, सुचरित्र ।

(ड) प्रत्यय या उपसर्ग लगा कर विविध शब्द बनाओ :—मान, यश, वर्ण ।

(ढ) किस प्रकार के शब्द हैं और कैसे बने हैं :—पारिश्रमिक, दारिद्र्य, प्रतिष्ठित, चारित्र्य ।

(ण) संधि विग्रह करो :—अभ्यन्तर, उत्तरोत्तर, निःसत्त्व ।

(त) वाक्य विश्लेषण करो :—

(क) शुद्ध चरित्र वाला......सरसब्ज़ होता है ।

(ख) जिस समाज में......भला क्या कहना ।

(थ) पद-व्याख्या करो :—परिश्रम के, जाने से, दूसरे की, प्रवीण, बनाकर ।

—: ० :—

४—शरीर की बनावट

[लेखक—पं० सदगुरुशरण अवस्थी]

वंश:—ब्राह्मण

निवासस्थान:—कानपुर

जन्म संवत्—१९५८

परिचय :—आप आगरा कालेज के ग्रेजुएट और हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् हैं। आज कल आप कानपुर में विश्म्भरनाथ सनातन-धर्म-कालेज में प्रोफेसर हैं। आप बड़े निरभिमानी और साधारण जीवन-पसन्द व्यक्ति हैं। आपका अध्ययन प्रशंसनीय है। आपके गंभीर लेखों में आपके प्रगाढ़ अध्ययन की पर्याप्त झलक मिलती है।

शिक्षण कला से आपको अत्यधिक प्रेम है। इसी विषय पर प्राय: आपके सुन्दर लेख भी मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। आप समालोचक

भी हैं। आपकी समालोचनाएँ बड़ी तीव्र और भाव-संयुक्त होती हैं। आपने गोस्वामी तुलसीदास जी के ऊपर एक बड़ी सुन्दर आलोचनात्मक पुस्तक लिखी है।

कार्य :—अवस्थी जी हिन्दी-साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठ लेखक हैं। हिन्दी की सभी उत्कृष्ट पत्रिकाओं में आपके सुन्दर लेख प्रकाशित हुआ करते हैं। आपने विभिन्न विषयों पर बहुत से स्फुट लेख लिखे हैं। आप 'विक्रम' 'संसार' 'प्रताप' और 'हितकारी' इत्यादि पत्रों के सहायक सम्पादक भी रह चुके हैं। आपने कई पुस्तकें भी लिखी हैं।

शैली—आपका अध्ययन प्रगाढ़ है। आपकी शैली में भी आपकी अध्ययन-प्रगाढ़ता का परिचय मिलता है। आप अधिकांश संस्कृत शब्दों का प्रयोग करते हैं। किन्तु भाषा में दुरूहता नहीं आने पाती। भाषा बड़ी रोचक और बोधगम्य होती है।

रचनाएँ—१ श्रमिक पथिक, २ फूटा शीशा, ३ तुलसी के चार दल।

मनुष्य का शरीर घड़ी की तरह कल-पुरजों से भरा पड़ा है। घड़ी में लोहे और पीतल के दाँतुवें और पहिये होते हैं। मनुष्य के शरीर में अनेक कल-पुरजे हड्डियों और रक्त मांस से बने हैं। घड़ी का एक पुरजा खराब हो जाने पर उसकी चाल में अन्तर आ जाता है। इसी प्रकार मनुष्य-शरीर में जब कभी कोई दोष उत्पन्न हो जाता है तब उसकी दशा एक दम घड़ी की सी हो जाती है।

घड़ी के प्रत्येक पुरजे बाल कमानी और प्रधानयंत्र कमानी के नियंत्रण में चलते रहते हैं। मनुष्य-शरीर का प्रत्येक पुरजा जो कि हाड़ मांस और रक्त तथा शरीर सम्बन्धी अनेक तन्तुओं से बना है, शरीर के प्रधान शासक मस्तिष्क की आज्ञा पर चलता रहता है। मनुष्य के शरीर के कई अंगों को मिला कर एक विभाग कहा जाता है, और इस विभाग को संस्थान कहते हैं। मनुष्य-शरीर के अंगों को कई मुख्य संस्थानों में विभक्त किया जा सकता है।

शरीर के संस्थान—

(१) आधार संस्थान—इस स्थान में हड्डियाँ और उनके जोड़ रहते हैं।

(२) प्रेरक संस्थान—वे अंग जिनसे हमारे शरीर में गति होती है।

(३) रक्त और रक्त-वाहक संस्थान—वे अंग हैं, जिनकी सहायता या जिनके द्वारा हमारे शरीर में रक्त संचालित होता है। जैसे हृदय, रक्त-वाहक नालियाँ।

(४) श्वासोश्वास—वे अंग हैं, जिनसे हम साँस लेते हैं। जैसे टेंटुआ, नाक, फुफ्फुस।

(५) पोषण संस्थान—इन अंगों द्वारा हम भोजन खाते और पचाते हैं। आमाशय, आँत, यकृत, प्लीहा।

(६) मूत्र वाहक संस्थान—इन अंगों में मूत्र बनता है, और निकलता है, जैसे मूत्राशय।

(७) बात संस्थान—वे अंग हैं, जिन के द्वारा मस्तिष्क सारे शरीर पर शासन करता है, बात रज्जुयें, बात सूत्र, मस्तिष्क इत्यादि।

(८) विशेष ज्ञान इन्द्रियाँ—आँख, कान, खाल, नाक, जीभ।

(९) उत्पादक संस्थान—वे अंग हैं, जिनके द्वारा संतान उत्पन्न की जाती है।

शरीर के इन ९ बड़े संस्थानों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। (१) सिर (२) गर्दन और (३) धड़। सिर मनुष्य के उस भाग को कहते हैं, जिसमें आँख, कान, नाक, मुँह हैं। सिर और धड़ के बीच के भाग को गर्दन कहते हैं। जहाँ गर्दन धड़ से लगी है, यहाँ से दाहिने बायें दो शाखायें निकली हैं जिन्हें बाहु कहते हैं और धड़ के नीचे की शाखाओं को टाँग कहते हैं। सिर के ऊपर बाल रहते हैं। जिस जगह सिर पर बाल रहते हैं उसको टटरी या खोपड़ा कहते

हैं। सामने दो आँखें होती हैं। दोनों आँखों के बीच नाक रहती है। हर एक आँख के ऊपर कुछ बा। रहते हैं उनको भौहें कहते हैं। दोनों भौंहें के ऊपर जो बिना बाल : सिर का भाग है उसे माथा कहते हैं। नाक के नीचे मुँह होता है। मुँह और नाक के अगल-बगल दोनों ओर गाल होते हैं। मुँह दो होठों के बीच एक राह है। एक ओठ ऊपर होता है और दूसरा नीचे होता है। ये दोनों ओठ जाबड़ों से मिले रहते हैं, इन जाबड़ों में ३२ दाँत होते हैं। नीचे वाले ओठ के नीचे जो उठा हुआ भाग होता है उसे ठुड्डी कहते हैं। पुरुषों के ऊपर वाले ओठ की खाल में जो बाल होते हैं, उन्हें मूँछ कहते हैं। ठुड्डी और गाल पर जो बाल उगते हैं उन्हें डाढ़ी कहते हैं। स्त्रियों के इन स्थानों में बाल नहीं होते।

मुँह के भीतर दाँतों के नीचे लाल मसूढ़े होते हैं। मुँह खोलने पर जो छत सी दिखाई देती है उसे तालू कहते हैं। तालू के एक दम पीछे एक मुलायम वस्तु है। वह अँगुली-सी दीखती है; उसको कौव्वा कहते हैं। नीचे के दाँतों के पीछे जीभ रहती है। जीभ की जड़ के पीछे दाहिने बायें दो छेद से दिखाई देते हैं और उसके बीच में एक गुलथी-सी वस्तु रहती है उसे तालु-ग्रन्थियाँ कहते हैं। जिन लोगों के सर्दी जुकाम या खाँसी प्रायः रहती है उनकी तालु-ग्रन्थियाँ अधिकतर फूल जाया करती हैं। इनमें पीड़ा भी होती है। छेदों के पीछे जो भाग है उसे कंठ कहते हैं। कंठ के ऊपरवाले भाग में कोमल तालु के ऊपर और उससे ढके हुए नाक के छेद नथुने कहलाते हैं। नीचेवाले भाग में दो नालियों के छेद हैं। जीभ के जड़ के पीछे स्वर-यंत्र का ऊपरी भाग रहता है और उसके ऊपर एक ढकना रहता है। जीभ को यदि आप खूब अधिक मुँह के बाहर निकालें तो उसका कुछ भाग दिखाई देगा। स्वर-यंत्र के छेद के पीछे अन्नप्रणाली है। इस नली द्वारा भोजन पेट में पहुँचता है। आँखों के पीछे कान होते हैं। कान और माथे के बीच के भाग को कनपटी कहते हैं। कानों के पीछे मध्य रेखा में जो सर का भाग जान पड़ता है उसको गुद्दी अथवा लेवड़ी कहते हैं। सर का

ऊपरी भाग अन्दर से खोखला रहता है और इस खोखले के भीतर शरीर का शासनकर्त्ता मस्तिष्क रहता है।

गर्दन—निम्न जाबड़े के नीचे के बीच में जो मोटी और कड़ी वस्तु है वह स्वर-यंत्र है। उसके ऊपर के किनारे और ठोढ़ी के बीच में हाइऑयड नामक जो अस्थि है वह टटोलने से मालूम होती है। भोजन निगलते समय स्वर-यंत्र के नीचे जो ऊपर उठता है; फिर नीचे को बैठता है। स्वर-यंत्र के नीचे जो कड़ी नली जाती है वह टेंटुआ कहा जाता है। स्वर-यंत्र और टेंटुआ से होकर वायु फुफ्फुस में प्रवेश करती है। टेंटुवे के पीछे अन्न-प्रणाली रहती है। टेंटुवे के दोनों ओर एक मुलायम डण्डा होता है। यदि आप अपना सर बाँये कंधे की ओर घुमायें तो वह दाहिनी ओर दीख पड़ेगा और यदि आप अपना सर दाहिनी ओर घुमायें तो वह बाईं ओर मालूम पड़ेगा। इनको गर्दन की पेशियाँ कहते हैं। टेंटुवे के दोनों ओर दबाने पर इन पेशियों में धड़कन मालूम होगी। जिस जगह यह धड़कन होती है वहाँ पर रक्त नली है, जो पेशी के नीचे रहती है। गर्दन के पीछे मध्य रेखा टटोलने पर जो कड़ी चीज़ जान पड़ती है, वे रीढ़ की हड्डियाँ हैं।

गर्दन के नीचे का ऊपरी भाग वक्षःस्थल कहलाता है। इसके दाहिनी और बाईं ओर भुजाएँ हैं। ऊपर के भाग में गर्दन के नीचे मध्य रेखा के इधर उधर टटोलने पर जो वस्तु कंधे की तरफ़ एक हो जाती है उसे हँसली कहते हैं। इकहरे बदनवाले स्त्री-पुरुषों में यह दूर से दीखती है। हँसली के नीचे स्तन होते हैं। औरतों के स्तनों में दूध बनता है। वक्षःस्थल के सामने मध्य रेखा में जो चौड़ी अस्थि लगी है उसे वक्षोस्थि कहते हैं। हँसली के नीचे वक्ष की दीवार में दोनों ओर बारह बारह पसुलियाँ होती हैं। वक्ष के पीछेवाले भाग को पीठ कहते हैं। पीठ का कन्धे के पास वाला भाग साफ दीख पड़ता है। ये उभरे भाग पट्ठे अथवा खवे कहे जाते हैं। कन्धे उचकाने से यह साफ दिखलाई देता है। पीठ की मध्य रेखा में यदि उँगली रगड़िये तो आपको रीढ़ मालूम हो जायगी। वक्ष के भीतर तीन बड़े-बड़े अंग हैं। वक्ष के दाहिनी और बाईं ओर पसुलियों के नीचे दो फुफ्फुस रहते

हैं—इन फुप्फुसों के मध्य में हृदय रहता है। इनके अतिरिक्त वक्ष में खून की नालियाँ, अन्न-प्रणाली, टेंटुआ, वातसूत्र और लिम्फ की ग्रन्थियाँ रहती हैं।

वक्ष के नीचे बिना पसुलियों वाला भाग उदर कहलाता है। वक्षोस्थि के नीचे पसुलियों की महराब के बीच में जो भाग है वह कौड़ी का देश होता है। कौड़ी की बिल्कुल सीध के नीचे नाभि होती है। उदर के पिछले भाग को कमर कहते हैं। नाभि के नीचे और मूत्र इन्द्रिय के ऊपर टटोलने से एक कड़ी वस्तु जान पड़ेगी। यह दो अस्थियों की सन्धि है और इस सन्धि के पीछे उदर में मूत्राशय होता है और स्त्रियों में गर्भाशय होता है।

उदर या पेट के भीतर भोजन-पाचक यंत्र रहते हैं, जहाँ पर रस बनानेवाले कल पुरज़े रहते हैं। आमाशय अंत्र या आँत, यकृत, क्लोम, सीहा, गुरदे, वक्क इत्यादि भी पेट में ही होते है। उदर के नीचे का भाग कटोरे की तरह का बना है और इस में आँत का अन्तिम भाग और मूत्र इकट्ठा होने की थैली लगी रहती है। सन्तानोत्पादक अंग भी इस स्थान में रहते हैं।

वक्ष के दोनों ओर दो भुजायें होती हैं, इनको उच्च शाखा भी कहते हैं। भुजा के गर्दन के समीप वाले उभरे भाग को कन्धा कहते हैं। कन्धे के नीचे बाहु होती है। बाहु और वक्ष के बीच में एक गढ़ा रहता है, उसे बगल कहते हैं। युवा पुरुषों के बगल में बाल भी होते हैं। बाहु से नीचे को मुड़नेवाला एक जोड़ होता है उसे कोहनी कहते हैं। कोहनी के नीचे अग्र बाहु होती है। अग्र बाहु के नीचे कलाई होती है। पहुँचों के नीचे हाथ होता है। हाथ के सामने की ओर एक गढ़ा होता है उसे करतल कहते हैं। करतल (हथेली) में पाँच उँगलियाँ होती हैं, जिनमें से एक सब से मोटी होती है जिसे अँगूठा कहते हैं। एक सब से छोटी और पतली होती है जो कनिष्ठा के नाम से जानी जाती है। अँगूठे के पास वाली उँगुली को तर्जनी कहते हैं। और कनिष्ठा के पास वाली को अनामिका कहते हैं।

अनामिका और तर्जनी के बीच वाली को मध्यमा कहते हैं। अँगूठे में दो भाग होते हैं। शेष उंगुलियों में तीन भाग होते हैं। इन भागों को पोर कहते हैं। हर उँगली के सिर पर एक नाखून होता है।

उदर के नीचे दो निम्न शाखायें होती हैं। घुटने और उदर के बीचवाले भाग को जंघा कहते हैं। जंघा सामने को उदर पर मुड़ जाती है। जिस स्थान पर वह मुड़ती है वह कुछ दबा रहता है। यह जंघासा के नाम से जाना जाता है। जंघासा पर उँगुली से टटोला जाय तो लिम्फ की ग्रन्थियाँ जान पड़ेंगी। जंघासा को दबाने से वहाँ की रक्त नली की फड़क भी जान पड़ेगी। पीछे कमर के नीचे मध्य में एक दरार होती है। इसके इधर-उधर मांस के दो ऊँचे उभार रहते हैं जिन्हें पृष्ठमांस पिंड कहा जाता है। जिस जगह टाँग जाँघ पर मुड़ जाती है वह जानु कही जाती है। जानु के सामने एक हिलनेवाली कड़ी चीज़ होती है जिसे चखनी कहते हैं। जाँघ के नीचे टाँग है। टाँग के नीचे पाँव (पैर) हैं। पैर टाँग पर सामने और पीछे मुड़ सकता है। जिस स्थान में यह गति होती है, उसे टखना कहते हैं। टखने में दो उभार होते हैं, जिन्हें गट्टा कहा जाता है। टखने के नीचे जो पीछे का भाग है वह एड़ी कहलाता है। पैर के नीचे एक गढ़ा रहता है जिसे तरुआ कहते हैं। पैर में पाँच उँगुलियाँ होती हैं। इन उँगुलियों के नाम हाथ ही की उँगुलियों की तरह हैं। इन उंगुलियों और हाथ की उँगुलियों के नाम में कोई अन्तर नहीं।

शरीर की स्थूल रचना तो बता दी गई। किन्तु उसके सूक्ष्म अंगों-प्रत्यंगों का ज्ञान बिना शास्त्र विद्या के नहीं जाना जा सकता। जो व्यक्ति इस विद्या में पारंगत होता है, उसे शरीर-छेदन-शास्त्र-विशारद कहते हैं। इस विद्या के सीखने में बहुत से छोटे बड़े छेदन-शास्त्र-सम्बन्धी शस्त्र रखने पड़ते हैं।

यदि हम शरीर के किसी एक अंग की सूक्ष्म बनावट जानना चाहें तो हमको छेदन-यंत्रों द्वारा उन अंगों के पतले, मोटे और छोटे तमाम पन्ने काटने पड़ेंगे। उसकी और अधिक बारीकी जानने के लिये

माइक्रासकोप (विवेचन-यंत्र) की आवश्यकता होगी। कभी कभी किसी वस्तु को समझने के लिये रंगों की ज़रूरत होती है। इन रंगों से उन हिस्सों को रँग लेते हैं।

यदि हम शरीर के किसी अंग या भाग की जानकारी प्राप्त करना चाहें तो हम को उस अंग के ऊपर की खाल छेदन-शस्त्र, चाकू, अथवा अन्य आवश्यक शस्त्र से अलग करनी होगी और इस प्रकार आप को तरल लाल रंग की एक वस्तु मिलेगी। यह रक्त अथवा ख़ून कहा जाता है। मरे मनुष्य में यह वस्तु नहीं मिलती और मरने के बाद शरीर में यह कुछ लाली और पीलापन मिले हुए तरल वस्तु बन जाती है। इसे प्लाज़्मा कहते हैं। चाकू से काट कर फिर खाल से नीचे रहने वाले पदार्थों को चिमटो से उसे अलग करते हैं। चिमटी की सहायता से खाल अलग करने पर हमको साफ़ मालूम हो जायगा कि वह शरीर के उस अंग में खोल की भाँति नहीं चढ़ी है किन्तु ताज़े फल में चिपके हुये छिलके की तरह चिपकी रहती है। खाल के नीचे चिकनी पीलापन लिये हुए एक वस्तु होती है जिसे चिकित्सक और शरीर-शास्त्र-विशारद चर्बी कहते हैं। यदि होशियारी से यह अलग की जाय तो यह साफ़ बाहर निकल आयेगी। काट कर देखा गया है, कि चर्बी के नन्हें-नन्हें टुकड़े कुछ सूत्रों में फँसे रहते हैं। इन सूत्रों के एकीकरण से एक जाली बन जाती है जिसे झिल्ली कहते हैं। झिल्ली चर्बीवाली होने के कारण वसामय कही जाती है। यदि थोड़ा और अधिक सावधानी से वसामय को काटें तो उसमें उन सूत्रों के अतिरिक्त अन्य पतले और मज़बूत सूत्र दिखाई देंगे; जो बातसूत्र कहे जाते हैं, और जिनका सम्बन्ध मस्तिष्क और मस्तिष्क-सम्बन्धी अन्य वस्तुओं से है। इनकी बारीक़ शाखायें खाल से सटी रहती हैं।

खाल और चर्बी के बीच में कुछ चौड़ी और खोखली डोरियाँ होती हैं जो शरीर में ऊपर से नीली जान पड़ती हैं। ये रक्त-नलियाँ धमनी और सिरायें हैं।

चर्बीवाली झिल्ली के नीचे मांस होता है, और इस प्रकार से मांस को एक झिल्ली ढके रहती है। यह झिल्ली भी सूत्रों से बनी है; मगर चर्बीवाली झिल्ली से भिन्न होती है। मांस शरीर में अनेक छोटे-छोटे भागों में रहता है। यह भाग सूत्रों द्वारा जुड़े रहते हैं। सूत्रिक वस्तु को हटा कर माँस के टुकड़े आसानी से अलग किये जा सकते हैं। ऐसे माँस-टुकड़ों को माँस-पेशी कहते हैं। शरीर का प्रत्येक अंग माँस की अनेक पेशियों के समूह से बनता है। इनका आकार-प्रकार भिन्न-भिन्न लम्बाई-चौड़ाई का होता है। किसी किसी माँस-पेशी में चर्बी भी पाई जाती है।

मांस-पेशियों के बीच में या उनमें भीतर घुसती हुई कुछ सफ़ेद नालियां दीखती हैं जो रक्त की नालियां कहलाती हैं। इनमें जो कड़ी और ठोस होती हैं, वे बात-रज्जुयें कहलाती हैं। यदि मांस-पेशी को आसानी से इन से अलग करना चाहें तो नहीं हटाया जा सकता। क्योंकि मांस-पेशियाँ अपने नीचे की किसी वस्तु से चिपटी रहती हैं। मांस को काट-छाँट कर निकाल फेंकने पर एक कड़ी वस्तु मिलेगी। यह वस्तु अस्थि कही जाती है। अस्थि के ऊपर एक झिल्ली मढ़ी रहती है जिसे अस्थि-रक्षक कहते हैं। अस्थि खोखली होती है। यदि यह तोड़ी जाय या काटी जाय तो इसमें एक लाल पीले रंग की चिकनी चीज़ दीख पड़ेगी। यह मज्जा कहलाती है।

मनुष्य के शरीर में कुल २०६ हड्डियाँ होती हैं। कुछ शरीर-शास्त्र के विद्वानों का मत है, कि कुछ स्त्रियों में २०७ हड्डियाँ होती हैं। अस्थियों का रंग साफ़ और सफ़ेद होता है। जीवित मनुष्य की अस्थियाँ (हड्डियाँ) रक्त का सम्पर्क होने के कारण लाली लिये हुये होती हैं। शरीर की सब हड्डियाँ एक ही आकार-प्रकार की नहीं होतीं। अस्थियों के नामकरण अधिकतर उनके स्थानों और अंगों के नामों के अनुसार ही रखे गये हैं। कुछ हड्डियाँ छिद्र सहित शरीर में होती हैं।

हड्डियों के अस्थि-पंजर को कंकाल कहते हैं। इस पंजर में दो
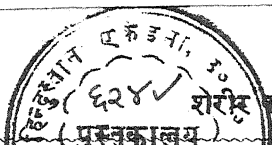
प्रकार की अस्थियाँ रहती हैं। एक तो कार्टिलेज और दूसरी कठिन अस्थि होती है। कार्टिलेज छोटे बच्चों में अधिक होती है। बच्चा जितना अधिक उम्रदार होता जाता है, उसकी कार्टिलेज अस्थियाँ भी उतनी सख्त बनती जाती हैं। युवा अवस्था तक पहुँचने पर मनुष्य की अधिक कोमल हड्डियाँ कठिन अस्थियाँ बन जाती हैं। अस्थियाँ मनुष्य शरीर में मज़बूत खम्भों का कार्य करती हैं।

शरीर के कंकाल को यदि पांच भागों में बाँटा जाय तो इस प्रकार से अस्थियाँ मिलेंगी :—

१ खोपड़ी	...	२२ अस्थियाँ
२ रीढ़	...	२६ अस्थियाँ
३ उच्च शाखायें	...	६४ अस्थियाँ; प्रत्येक उच्च शाखा में ३२ अस्थियाँ होती हैं।
४ निम्न शाखायें	...	६२ अस्थियाँ, प्रत्येक शाखा में ३१ अस्थियाँ होंगी।
५ वक्षस्थल	...	२५ अस्थियाँ, ये पसुलियाँ हैं। वक्ष के दोनों ओर १२; १२। एक वक्षोस्थि होती है।

गर्दन में स्वर-यंत्र और ठोढ़ी में हवाइड नाम की अस्थियाँ होती हैं। हर कान में तीन अस्थियाँ होती हैं। ये कार्टिलेज होती हैं।

कुल जोड़ २०६

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) अर्थ बताओ :—नियंत्रण, मस्तिष्क, संस्थान, संचालित, यकृत, अस्थि, वक्र, कनिष्ठा, अग्र, पारंगत, सूत्रिक, कंकाल।

(ख) अर्थान्तर की व्याख्या करो :—अंग-प्रत्यंग, विभक्त-भक्त, पारंगत-गत, शस्त्र-शास्त्र ।

(ग) भिन्न-भिन्न मात्रायें लगाकर नवीन शब्द बनाओ—रक्त, दम, प्रण ।

२—भाषा सम्बन्धी—

(घ) इस लेख की भाषा कैसी है ? क्या तुम इसे विद्यार्थियों के लिये उपयुक्त भाषा कह सकते हो ?

(ङ) इस लेख के अन्तर्गत आने वाले उर्दू शब्दों को हिन्दी में रूपान्तरित करो ।

(च) इस लेख की भाषा के आधार पर लेखक की भाषा पर अपने विचार प्रगट करो ।

(छ) भाव स्पष्ट करो :—

(क) घड़ी में प्रत्येक पुरज़े······चलता रहता है ।

(ख) शरीर की स्थूल······कहते हैं ।

३—विचार सम्बन्धी—

(ज) प्रमाणित करो, कि मनुष्य का शरीर घड़ी की तरह कल-पुरज़ों से भरा पड़ा है ।

(झ) शरीर के मुख्य संस्थान और उनकी क्रियाएँ बताओ ।

(ञ) कार्टिलेज अस्थि से क्या मतलब समझते हो ?

(ट) इस लेख का सारांश दो पृष्ठों में प्रगट करो ।

४—व्याकरण सम्बन्धी—

(ठ) समास विग्रह करो—रक्त-वाहक, तालु-ग्रन्थियाँ, अन्न-प्रणाली, छेदन-शास्त्र-सम्बन्धी, शरीर-छेदन-शास्त्र-विशारद, अस्थि-रक्षक।

(ड) सन्धि-विग्रह करो :—प्रत्येक, वक्षोस्थि, सन्तानोत्पदक ।

(ढ) पद-व्याख्या करो :—मस्तिष्क रहता है, पीठ कहते हैं, कोई अन्तर नहीं, धमनी ।

(ण) समास निर्माण करो—मनुष्य का शरीर, आँख और कान, अस्थियों की रक्षा करने वाला ।

(त) प्रथम अनुच्छेद का वाक्य-विश्लेषण करो ।

५—अमावस्या की रात्रि

[लेखक—श्रीयुत प्रेमचन्द]

वंश :—कायस्थ

जन्मस्थान :—बनारस ज़िलान्तर्गत मढ़वा गाँव

जन्म सन् :—१८६०

मृत्यु सन्—१६३७

परिचय :—प्रेमचन्द जी के माता-पिता एक साधारण स्थिति के मनुष्य थे। इसी से उन्हें अपने प्रारंभिक जीवन में बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। प्रारंभ में उन्हें उर्दू और अँगरेज़ी की शिक्षा दी गई। उर्दू की शिक्षा मिलने के कारण सन् १६०१ में आपने उर्दू में कहानियाँ भी लिखनी आरम्भ की। आपका वास्तविक नाम धनपतराय था, किन्तु उर्दू में आप 'नवाबराय' के नाम से कहानियाँ लिखा करते थे। आपकी उर्दू की कहानियाँ 'ज़माना' इत्यादि उर्दू पत्रों में प्रकाशित हुआ करती थीं। उर्दू की कहानी कला के प्रवर्तकों में आपका प्रमुख स्थान है। आपकी उर्दू कहानियों की, मौलाना शिबली, जो अरबी, फ़ारसी और उर्दू के सिद्धहस्त विद्वान् थे, मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा किया करते थे।

बी० ए० पास करने के पश्चात् आपका ध्यान हिन्दी की ओर आकर्षित हुआ। उसी समय से आपने हिन्दी का अध्ययन करना आरंभ कर दिया, और साथ ही आप प्रेमचन्द के नाम से हिन्दी में कहानियाँ भी लिखने लगे। सन् १६०५ में आपका 'प्रेमा' नाम का एक उपन्यास भी प्रकाशित हुआ था। आपका वास्तविक साहित्यिक जीवन सन् १६१७ से आरंभ होता है आपने थोड़े ही दिनों में अपनी कलामय कृतियों से समस्त हिन्दी-साहित्य ऊपर अपनी एक धाक-सी स्थापित कर ली।

आप बड़े उदार, प्रसन्न चित्त, और सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। देह जीवन से आपको अत्यन्त प्रेम था। दरिद्रों और ग़रीबों के साथ आपका म घूमता फिरता था। आपकी कहानियों और उपन्यासों में इसी से ग्रा, किसानों, और ग़रीबों का चित्रण भी सफलता-पूर्वक पाया जाता है।

कार्य :—बी० ए० पास करने के पश्चात् कुछ दिनों तक आप अध्यापक रहे। इसके बाद आप स्कूलों के डिप्टी इन्सपेक्टर हो गये। महात्मा गाँधी के असहयोग का आपके जीवन पर भी प्रभाव पड़ा। आप सरकारी नौकरी से अलग होकर स्वतंत्र रूप से साहित्य की सेवा करने लगे। इसी समय आप माधुरी के सम्पादक हुये। कुछ दिनों के पश्चात् आपने अपना निजी पत्र 'हंस' और 'जागरण' प्रकाशित किया। 'जागरण' बन्द होगया, किन्तु 'हंस' इस समय भी निकल रहा है। कुछ दिनों तक आपने बम्बई की एक फिल्म-कम्पनी में भी काम किया था। आपकी कई कहानियों की फिल्में भी बन गई हैं।

शैली :—प्रेमचन्द जी हिन्दी के सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास लेखक हैं। इनकी भाषा बड़ी सरल, किन्तु सजीव है। रोचकता और सुबोधता तो मानों इनके पल्ले पड़ी है। इनके छोटे-छोटे वाक्य बड़े प्रभावशाली और चित्ताकर्षक हैं। भाषा का धारा प्रवाह अत्यन्त दर्शनीय है। मुहाविरों और अलंकारों के उचित प्रयोग ने भाषा को और भी अधिक शक्तिशाली बना दिया है। भाषा का चलता हुआ रूप इनकी रचनाओं में अधिक पाया जाता है।

प्रमुख रचनाएँ :—उपन्यास—सेवा-सदन, कायाकल्प, वरदान, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि, ग़बन, गोदान। नाटक—कर्बला। कहानी संग्रह—प्रेरणा, सप्त सुमन, प्रेम-द्वादशी, प्रेम-तीर्थ, अग्नि-समाधि, प्रेम-पूर्णिमा, नवनिधि।

—:o:—

(१)

दिवाली की सन्ध्या थी। श्रीनगर के घूरों और खँडहरों के भी भाग्य चमक उठे थे। कस्बे के लड़के, लड़कियाँ श्वेत थालियों में दीपक लिये मन्दिर की ओर जा रही थीं। दीपों से अधिक उनके मुखार-विन्द प्रकाशमान थे। प्रत्येक गृह रोशनी से जगमगा रहा था। केवल पंडित देवदत्त का सप्तघरा भवन अन्धकार में काली घटा की भाँति गम्भीर और भयङ्कर रूप में खड़ा था। गम्भीर इसलिए कि उसे अपनी उन्नति के दिन भूले न थे। भयङ्कर इसलिए कि यह जगमगाहट मानो उसे चिढ़ा रही थी। एक समय वह था जब कि ईर्ष्या भी उसे

देख कर हाथ मलती थी, और एक समय यह है जब कि घृणा भी उस पर कटाक्ष करती है। द्वार पर द्वारपाल की जगह अब मदार और एरंड के वृक्ष खड़े थे। दीवानखाने में एक मतंग-साँड़ अकड़ता था। ऊपर के घरों में जहाँ सुन्दर रमणियाँ मनोहारी संगीत गाती थीं, वहाँ आज जंगली कबूतरों के मधुर स्वर सुनाई देते थे। किसी विधवा स्त्री के हृदय की भाँति उसकी दीवारें विदीर्ण हो रही थीं। पर समय को हम कुछ कह नहीं सकते। समय की निन्दा व्यर्थ और भूल है, यह मूर्खता और अदूरदर्शिता का फल था।

अमावस्या की रात्रि थी। प्रकाश से पराजित होकर मानो अन्धकार ने उसी विशाल भवन में शरण ली थी। पंडित देवदत्त अपने अर्द्ध अन्धकार वाले कमरे में मौन परन्तु चिन्ता में निमग्न थे। आज एक महीने से उनकी पत्नी ‘ गिरिजा ’ की जिंदगी को निर्दय काल ने खिलवाड़ बना लिया है। पंडितजी दरिद्रता और दुःख को भुगतने के लिए तैयार थे। भाग्य का भरोसा उन्हें धैर्य बँधाता था। किन्तु यह नई विपत्ति सहनशक्ति से बाहर थी। बेचारे दिन के दिन गिरिजा के सिरहाने बैठकर उसके मुरझाए हुए मुख को देखकर कुढ़ते और रोते थे। गिरिजा जब अपने जीवन से निराश होकर रोती, तो वे उसे समझाते—गिरिजा, रोओ मत, तुम शीघ्र अच्छी हो जाओगी।

पंडित देवदत्त के पूर्वजों का कारोबार बहुत विस्तृत था, वे लेन-देन किया करते थे। अधिकतर उनके व्यवहार बड़े बड़े रजवाड़ों के साथ थे। उस समय ईमान इतना सस्ता नहीं बिकता था। सादे पत्रों पर लाखों की बातें हो जाती थीं। मगर सन् ५७ ई० के बलवे ने कितनी ही रियासतों और राज्यों को मिटा दिया और उनके साथ तिवारियों का यह अन्नधनपूर्ण परिवार भी मिट्टी में मिल गया। खज़ाना लुट गया, बहीखाते पंसारियों के काम आए। जब कुछ शान्ति हुई, रियासतें फिर सँभलीं तो समय पलट चुका था। वचन लेख के अधीन हो रहा था, तथा लेख में भी सादे और रंगीन का भेद होने लगा।

जब देवदत्त ने होश सँभाला तब उसके पास खँडहरे के अतिरिक्त कोई सम्पत्ति न थी। अब निर्वाह के लिए कोई उपाय न था। कृषि में परिश्रम और कष्ट था। वाणिज्य के लिए धन और बुद्धि की आवश्यकता थी। विद्या भी ऐसी नहीं थी कि कहीं नौकरी करते, परिवार की प्रतिष्ठा दान लेने में बाधक थी। अस्तु, साल में दो-तीन बार अपने व्यवहारियों के घर बिना बुलाए पाहुनों की भाँति जाते और जो कुछ बिदाई तथा मार्ग-व्यय पाते उसी पर गुज़रान करते। पैतृक-प्रतिष्ठा का चिन्ह यदि कुछ शेष था तो वह पुरानी चिट्ठी पत्रियों का ढेर तथा हुण्डियों का पुलिंदा जिनकी स्याही भी उनके मन्द भाग्य की भाँति फीकी पड़ गई थी। पंडित देवदत्त उन्हें प्राण से भी अधिक प्रिय समझते थे। द्वितीया के दिन जब घर घर लक्ष्मी की पूजा होती है, पंडित जी ठाट-बाट से इन पुलिंदों की पूजा करते। लक्ष्मी न सही लक्ष्मी के स्मारक-चिन्ह ही सही। दूज का दिन पंडित जी की प्रतिष्ठा के श्राद्ध का दिन था। इसे चाहे बिडम्बना कहो, चाहे मूर्खता, परन्तु श्रीमान् पंडित महाशय को उन पत्रों पर बड़ा अभिमान था। जब गाँव में कोई विवाद छिड़ जाता, तो यह सड़े-गले काग़ज़ों की सेना ही बहुत काम कर जाती और प्रतिवादी शत्रु को हार माननी पड़ती। यदि सत्तर पीढ़ियों से शस्त्र की सूरत न देखने पर भी लोग क्षत्रिय होने का अभिमान करते हैं तो पंडित देवदत्त का उन लेखों पर अभिमान करना अनुचित नहीं कहा जा सकता जिनमें ७० लाख रुपयों की रक़म छिपी हुई थी।

(२)

वही अमावस्या की रात्रि थी। किन्तु दीपमालिका अपनी अल्प जीवनी समाप्त कर चुकी। चारों ओर जुआरियों के लिए यह शकुन की रात्रि थी, क्योंकि आज की हार साल-भर की हार होती है। लक्ष्मी के आगमन की धूम थी। कौड़ियों पर अशर्फियाँ लुट रही थीं। भट्टियों में शराब के बदले पानी बिक रहा था। पंडित देवदत्त के अतिरिक्त क़स्बे में कोई ऐसा मनुष्य नहीं था, जो कि दूसरों की कमाई समेटने की धुन में न हो। आज भोर ही से गिरिजा की अवस्था

शोचनीय थी। विषम-ज्वर उसे एक-एक क्षण में मूर्छित कर रहा था। एकाएक उसने चौंक कर आँखें खोलीं और अत्यन्त क्षीण स्वर में कहा—आज तो दिवाली है।

देवदत्त ऐसा निराश हो रहा था कि गिरिजा को चैतन्य देख कर भी उसे आनन्द नहीं हुआ। बोला—हाँ आज दिवाली है। गिरिजा ने आँसू-भरी दृष्टि से इधर-उधर देख कर कहा—हमारे घर में क्या दीप न जलेंगे?

देवदत्त फूट-फूट कर रोने लगा। गिरिजा ने फिर उसी स्वर में कहा—देखो, आज बरस के दिन घर अँधेरा रह गया। मुझे उठा दो, मैं भी अपने घर में दीये जलाऊँगी।

ये बातें देवदत्त के हृदय में चुभी जाती थीं। मनुष्य की अन्तिम घड़ी लालसाओं और भावनाओं में व्यतीत होती है।

इस नगर में लाला शंकरदास अच्छे प्रसिद्ध वैद्य थे। वे अपने प्राणसंजीवन-औषधालय में दवाओं के स्थान पर छापने का प्रेस रक्खे हुए थे। दवाइयाँ कम बनती थीं, किन्तु इश्तिहार अधिक प्रकाशित होते थे।

वे कहा करते थे कि बीमारी केवल रईसों का ढकोसला है और पोलिटिकल एकानोमी (अर्थशास्त्र) के मतानुसार इस विलास पदार्थ से जितना अधिक सम्भव हो टैक्स लेना चाहिए। यदि कोई निर्धन है तो हो। यदि कोई मरता है तो मरे। उसे क्या अधिकार है कि वह बीमार पड़े और मुफ्त में दवा करावे? भारतवर्ष की यह दशा अधिकतर मुफ्त दवा कराने से हुई है। इसने मनुष्यों को असावधान और बलहीन बना दिया है। देवदत्त महीने भर से नित्य उनके निकट दवाई लेने आता था; परन्तु वैद्य जी कभी उसकी ओर इतना ध्यान नहीं देते थे कि वह अपनी शोचनीय दशा प्रकट कर सके। वैद्य जी के हृदय के कोमल भाग तक पहुँचने के लिए देवदत्त ने बहुत कुछ हाथ पैर चलाये। वह आँखों में आँसू भरे आता किन्तु वैद्य जी का हृदय ठोस था उसमें कोमल भाग था भी नहीं।

वही अमावस्या की डरावनी रात थी। गगनमंडल में तारे आधी रात के बीतने पर और अधिक प्रकाशित हो रहे थे, मानो श्रीनगर की बुझी हुई दीपमाला पर कटाक्षयुक्त आनन्द के साथ मुसकुरा रहे थे। देवदत्त एक बेचैनी की दशा में गिरिजा के सिरहाने से उठे और वैद्य जी के मकान की ओर चले। वे जानते थे कि लाला जी बिना फीस लिये कदापि न आयेंगे, किन्तु हताश होने पर भी आशा पीछा नहीं छोड़ती। देवदत्त क़दम आगे बढ़ाते चले जाते थे।

(३)

हकीम जी उस समय अपने रामबाण 'बिन्दु' का विज्ञापन लिखने में व्यस्त थे कि इतने में देवदत्त ने बाहर से आवाज़ दी। वैद्य जी बहुत ख़ुश हुए। रात के समय उनकी फ़ीस दुगनी थी। लालटेन लिए हुए बाहर निकले तो देवदत्त रोता हुआ उनके पैरों से लिपट गया और बोला—वैद्य जी इस समय मुझ पर दया कीजिए। गिरिजा अब कोई सायत की पाहुनी है, अब आप ही उसे बचा सकते हैं: यों तो मेरे भाग्य में जो लिखा है वही होगा, किन्तु इस समय तनिक चलकर आप देख लें तो मेरे दिल की दाह मिट जायगी। मुझे धैर्य हो जायगा कि उसके लिए मुझसे जो कुछ हो सकता था, मैंने किया। परमात्मा जानता है कि मैं इस योग्य नहीं हूँ कि आपकी कुछ सेवा कर सकूँ, किन्तु जब तक जीऊँगा, आपका यश गाऊँगा और आपके इशारों का गुलाम बना रहूँगा।

हकीम जी को पहले कुछ तरस आया किन्तु वह जुगुनू की चमक थी, जो शीघ्र स्वार्थ के विशाल अन्धकार में लीन हो गई।

(४)

वही अमावस्या की रात्रि थी। वृक्षों पर भी सन्नाटा छा गया था। जीतने वाले अपने बच्चों को नींद से जगाकर इनाम देते थे। हारने वाले अपनी रुष्ट और क्रोधित स्त्रियों से क्षमा के लिए प्रार्थना कर रहे थे। इतने में घंटों के लगातार शब्द वायु और अन्धकार को चीरते हुए कान में आने लगे। उनकी सुहावनी ध्वनि इस निस्तब्ध अवस्था में

अत्यन्त भली प्रतीत होती थी ! यह शब्द समीप होते गये और अन्त में पंडित देवदत्त के समीप आकर उस खँडहरे में डूब गये। पंडित जी उस समय निराशा के अथाह समुद्र में गोते खा रहे थे, शोक में इस योग्य भी नहीं थे कि प्राणों से भी अधिक प्यारी गिरिजा की दवा-दरपन कर सकें। क्या करें ? इस निष्ठुर वैद्य को यहाँ कैसे लावें ? ज़ालिम मैं सारी उमर तेरी गुलामी करता। तेरे इश्तिहार छापता। तेरी दवाइयाँ कूटता। आज पंडित जी को यह ह्रासमय ज्ञान हुआ है कि सत्तर लाख की चिट्ठी-पत्रियाँ इतनी कौड़ियों के मोल की भी नहीं। पैतृक-प्रतिष्ठा का अहंकार अब आँखों से दूर हो गया। उन्होंने उस मखमली थैली को सन्दूक से बाहर निकाला और उन चिट्ठी-पत्रियों को, जो बाप-दादे की कमाई का शेषांश थीं, और प्रतिष्ठा की भाँति जिनकी रक्षा की जाती थी, वे एक एक करके दीया को अर्पण करने लगे। जिस तरह सुख और आनन्द से पालित शरीर चिता की भेंट हो जाता है, उसी प्रकार यह काग़ज़ी पुतलियाँ भी उस प्रज्ज्वलित दीया के धधकते हुए मुँह का ग्रास बनती थीं। इतने में किसी ने बाहर से पंडित जी को पुकारा। उन्होंने चौंक कर सिर उठाया। वे नींद से जागे, अँधेरे में टटोलते हुए दरवाज़े तक आये तो देखा कि कई आदमी हाथ में मशाल लिये हुए खड़े हैं और हाथी अपनी सूँड़ से उन एरंड के वृक्षों को उखाड़ रहा है, जो द्वार पर द्वारपालों की भाँति खड़े थे। हाथी पर एक सुन्दर युवक बैठा हुआ है, जिसके सिर पर केसरिया रङ्ग की रेशमी पाग है। माथे पर अर्द्ध-चन्द्राकार चन्दन, भाले की तरह तनी हुई नोकदार मोछे, मुखारविन्द से प्रभाव और प्रकाश टपकता हुआ, कोई सरदार मालूम पड़ता था। उसका कलीदार अँगरखा और चुनावदार पैजामा, कमर में लटकती हुई तलवार, और गर्दन में सुनहरे कंठे और जंजीर उसके सजीले शरीर पर अत्यन्त शोभा पा रहे थे। पंडित जी के देखते ही उसने रकाब पर पैर रक्खा और नीचे उतर कर उनकी वन्दना की। उसके इस विनीत भाव से लज्जित होकर पंडित जी बोले—आपका आगमन कहाँ से हुआ ?

नवयुवक ने बड़े नम्र शब्दों में जवाब दिया। उसके चेहरे से भलमनसाहत बरसती थी—मैं आपका पुराना सेवक हूँ। दास का घर राजनगर में है। मैं वहाँ का जागीरदार हूँ। मेरे पूर्वजों पर आप के पूर्वजों ने बड़े अनुग्रह किये हैं। मेरी इस समय जो कुछ प्रतिष्ठा और सम्पदा है, वह आपके पूर्वजों की कृपा और दया का परिणाम है। मैंने अपने अनेक स्वजनों से आपका नाम सुना था और मुझे बहुत दिनों से आपके दर्शनों की कांक्षा थी। आज वह सुअवसर भी मिल गया। अब मेरा जन्म भी सफल हुआ।

पंडित देवदत्त की आँखों में आँसू भर आये। पैतृक-प्रतिष्ठा का अभिमान उनके हृदय का कोमल भाग था।

वह दीनता जो उनके मुख पर छाई हुई थी थोड़ी देर के लिए विदा हो गई। वे गम्भीर भाव धारण करके बोले—यह आपका अनुग्रह है जो ऐसा कहते हैं। नहीं तो मुझ जैसे कपूत में तो इतनी भी योग्यता नहीं है जो अपने को उन लोगों की सन्तति कह सकूँ। इतने में नौकरों ने आँगन में फ़र्श बिछा दिया। दोनों आदमी उस पर बैठे और बातें होने लगीं, वे बातें जिनका प्रत्येक शब्द पंडित जी के मुख को इस तरह प्रफुल्लित कर रहा था जिस तरह प्रातः-काल की वायु फूलों को खिला देती है। पंडित जी के पितामह ने नवयुवक ठाकुर के पितामह को पच्चीस सहस्र रुपये कर्ज़ दिये थे। ठाकुर अब गया में जाकर अपने पूर्वजों का श्राद्ध करना चाहता था, इसलिए ज़रूरी था कि उसके जिम्मे जो कुछ ऋण हो उसकी एक-एक कौड़ी चुका दी जाय। ठाकुर को पुराने बहीखाते में यह ऋण दिखाई दिया। पच्चीस के पचहत्तर हज़ार हो चुके थे। वही ऋण चुका देने के लिए ठाकुर २०० मील से आया था। धर्म वह शक्ति है जो अन्तःकरण में ओजस्वी विचारों को पैदा करती है। हाँ, इस विचार को कार्य में लाने के लिए एक पवित्र और बलवान् आत्मा की आवश्यकता है। नहीं तो वे ही विचार क्रूर और पापमय हो जाते हैं। अन्त में ठाकुर ने पूछा—आपके पास तो वे चिट्ठियाँ होंगी?

देवदत्त का दिल बैठ गया। वे सँभल कर बोले—सम्भवतः हाँ। कुछ कह नहीं सकते। ठाकुर ने लापरवाही से कहा—ढूँढ़िए, यदि मिल जायँ तो हम लेते जायँगे।

पंडित देवदत्त उठे। लेकिन हृदय ठंडा हो रहा था। शंका होने लगी कि कहीं भाग्य हरे बाग़ न दिखा रहा हो। कौन जाने वह पुर्ज़ा जल कर राख हो गया या नहीं। यह भी तो नहीं मालूम कि वह पहले भी था या नहीं। यदि न मिला तो रुपये कौन देता है। शोक! दूध का प्याला सामने आकर हाथ से छूटा जाता है। हे भगवान्! वह पत्री मिल जाय। हमने अनेक कष्ट पाये हैं। अब हम पर दया करो। इस प्रकार आशा और निराशा की दशा में देवदत्त भीतर गये और दीया के टिमटिमाते हुए प्रकाश में बचे हुए पत्रों को उलट-पलट कर देखने लगे। वे उछल पड़े और उमङ्ग में भरे हुए पागलों की भाँति आनन्द की अवस्था में दो-तीन बार कूदे। तब दौड़ कर गिरिजा को गले से लगा लिया; और बोले—प्यारी, यदि ईश्वर ने चाहा तो तू अब बच जायगी। इस उन्मत्तता में उन्हें एकदम यह नहीं जान पड़ा कि 'गरिजा' अब वहाँ नहीं है, केवल उसकी लोथ है।

देवदत्त ने पत्री को उठा लिया और द्वार तक वे तेज़ी से आये मानो पाँव में पर लग गये हैं। परन्तु यहाँ उन्होंने अपने को रोका और हृदय में आनन्द की उमड़ती हुई तरंग को रोक कर कहा—यह लीजिए, वह पत्री मिल गई। संयोग की बात है, नहीं तो सत्तर लाख के काग़ज़ दीपकों के आहार बन गये।

आकस्मिक सफलता में कभी कभी सन्देह बाधा डालता है। जब ठाकुर ने उस पत्री के लेने को हाथ बढ़ाया तो देवदत्त को सन्देह हुआ कि कहीं वह उसे फाड़ कर फेंक न दे। यद्यपि यह सन्देह निरर्थक था, किन्तु मनुष्य कमज़ोरियों का पुतला है। ठाकुर ने उनके मन के भाव को ताड़ लिया। उसने बेपरवाही से पत्री को लिया और मशाल के प्रकाश में देख कर कहा—अब मुझे पूर्ण विश्वास हुआ। यह लीजिए, आपका रुपया आपके समक्ष है, आशीर्वाद दीजिए कि मेरे पूर्वजों की मुक्ति हो जाय।

यह कह कर उसने अपनी कमर से एक थैला निकाला और उसमें एक एक हज़ार के पचहत्तर नोट निकाल कर देवदत्त को दे दिये। पंडित जी का हृदय बड़े वेग से धड़क रहा था। नाड़ी तीव्र गति से कूद रही थी। उन्होंने चारों ओर चौकन्नी दृष्टि से देखा कि कहीं कोई दूसरा तो नहीं खड़ा है और तब काँपते हुए हाथों से नोटों को ले लिया। अपनी उच्चता प्रकट करने की व्यर्थ चेष्टा में उन्होंने नोटों की गणना भी नहीं की। केवल उड़ती हुई दृष्टि से उन्हें देखा और जेब में डाल दिया।

(५)

वही अमावस्या की रात्रि थी। स्वर्गीय दीपक भी धुँधले हो चले थे। उनकी यात्रा सूर्यनारायण के आने की सूचना दे रही थी। उदयाचल फ़िरोजा बाना पहन चुका था। अस्ताचल में भी हल्के श्वेत रङ्ग की आभा दिखाई दे रही थी। पंडित देवदत्त ठाकुर को विदा करके घर में चले। उस समय उनका हृदय उदारता के निर्मल प्रकाश से प्रकाशित हो रहा था। कोई प्रार्थी उस समय उनके घर से निराश नहीं जा सकता था। सत्यनारायण की कथा धूमधाम से सुनने का निश्चय हो चुका था। गिरिजा के लिए कपड़े और गहने के विचार ठीक हो गये। अन्तःपुर में पहुँचते ही उन्होंने शालिग्राम के सम्मुख मनसा-वाचा-कर्मणा सिर झुकाया और तब शेष चिट्ठी-पत्रियों को समेट कर उसी मखमली थैले में रख दिये। किन्तु अब उनका यह विचार नहीं था कि सम्भवतः उन मुर्दों में भी कोई जीवित हो उठे। वरन् जीविका से निश्चिन्त हो अब वे पैतृक-प्रतिष्ठा पर अभिमान कर सकते थे। उस समय वे धैर्य और उत्साह के नशे में मस्त थे। बस, अब मुझे ज़िन्दगी में अधिक सम्पदा की ज़रूरत नहीं। ईश्वर ने मुझे इतना दे दिया है। इसमें मेरी और गिरिजा की ज़िन्दगी आनन्द से कट जायगी। उन्हें क्या ख़बर थी कि गिरिजा की ज़िन्दगी पहले ही कट चुकी है। उनके दिल में यह विचार गुदगुदा रहा था कि जिस समय गिरिजा इस आनन्द-समाचार को सुनेगी उस समय अवश्य उठ बैठेगी। चिन्ता और कष्ट ही ने उसकी ऐसी दुर्गति बना

दी है। जिसे भर-पेट कभी रोटी नसीब न हुई, जो कभी नैराश्यमय धैर्य और निर्धनता के हृदय-विदारक बन्धन से मुक्त न हुई, उसकी दशा इसके सिवा और हो ही क्या सकती है? यह सोचते हुए वे गिरिजा के पास गये और उसे आहिस्ता से हिला कर बोले—गिरिजा, आँखें खोलो। देखो, ईश्वर ने तुम्हारी विनती सुन ली और हमारे ऊपर दया की। कैसी तबीयत है?

किन्तु जब गिरिजा तनिक भी न मिनकी तब उन्होंने चादर उठा दी और उसके मुँह की ओर देखा। हृदय से एक करुणोत्पादक ठंडी आह निकली। वे वहीं सर थाम कर बैठ गये। आँखों से शोणित की बूँदें टपक पड़ीं। आह! क्या यह सम्पदा इतने मँहगे मूल्य पर मिली है? क्या परमात्मा के दरबार से मुझे इस प्यारी जान का मूल्य दिया गया है? ईश्वर, तुम ख़ूब न्याय करते हो। मुझे गिरिजा की आवश्यकता है, रुपयों की आवश्यकता नहीं। यह सौदा बड़ा महँगा है।

(६)

अमावस्या की अँधेरी रात गिरिजा के अन्धकारमय जीवन की भाँति समाप्त हो चुकी थी। खेतों में हल चलानेवाले किसान ऊँचे और सुहावने स्वर से गा रहे थे। सर्दी से काँपते हुए बच्चे सूर्य देवता से बाहर निकलने की प्रार्थना कर रहे थे। पनघट पर गाँव की अलबेली स्त्रियाँ जमा हो गई थीं। पानी भरने के लिए नहीं; हँसने के लिए। कोई घड़े को कुएँ में डाले हुए अपनी पोपली सास की नकल कर रही थी, कोई खंभों से चिमटी हुई अपनी सहेली से मुसकरा-मुसकरा कर प्रेम-रहस्य की बातें कर रही थी। बूढ़ी स्त्रियाँ रोते हुए पोतों को गोद में लिये अपनी बहुओं को कोस रही थीं कि घंटे भर हुए अब तक कुएँ से नहीं लौटी। किन्तु राजवैद्य लाला शंकरदास अभी तक मीठी नींद ले रहे थे। खाँसते हुए बच्चे और कराहते हुए बूढ़े उनके औषधालय के द्वार पर जमा हो चले थे। इस भीड़-भब्भड़ से कुछ दूर हट कर दो-तीन सुन्दर किन्तु मुर्झाये हुए नवयुवक टहल रहे थे और वैद्य जी से एकान्त में कुछ बातें किया चाहते थे। इतने में पंडित देवदत्त जी नंगे सर, नंगे बदन, आँखें लाल, डरावनी सूरत, काग़ज़ का एक

पुलिंदा लिये दौड़ते हुए आये और औषधालय के द्वार पर इतने ज़ोर से हाँक लगाने लगे कि वैद्य जी चौंक पड़े और कहार को पुकार कर बोले कि दरवाज़ा खोल दे। ये महात्मा बड़ी रात गये किसी बिरादरी की पंचायत से लौटे थे, उन्हें दीर्घनिद्रा का रोग था, जो वैद्यजी के लगातार भाषण और फटकार की औषधियों से भी कम न होता था। आप ऐंठते हुए उठे और किवाड़ खोलकर हुक्का-चिलम की चिन्ता में आग ढूँढ़ने चले गये। हकीम जी उठने की चेष्टा कर रहे थे कि सहसा देवदत्त उनके सम्मुख जाकर खड़े हो गये और नोटों का पुलिंदा उनके आगे पटककर बोले—वैद्यजी, ये पचहत्तर हज़ार के नोट हैं। यह आपका पुरस्कार और आपकी फ़ीस है। आप चलकर गिरिजा को देख लीजिए, और ऐसा कुछ कीजिए कि वह केवल एक बार आँखें खोल दे। यह उसकी एक दृष्टि पर न्योछावर है—केवल एक दृष्टि पर! आपको रुपये मनुष्य की जान से प्यारे हैं। वे आपके समक्ष हैं। मुझे गिरिजा की एक चितवन इन रुपयों से कई गुनी प्यारी है।

वैद्य जी ने लज्जामय सहानुभूति से देवदत्त की ओर देखा और केवल इतना कहा—मुझे अत्यन्त शोक है, मैं सदैव के लिए तुम्हारा अपराधी हूँ। किन्तु तुमने मुझे शिक्षा दे दी। ईश्वर ने चाहा तो अब ऐसी भूल कदापि न होगी। मुझे शोक है। सचमुच महाशोक है।

ये बातें वैद्य जी के अन्तःकरण से निकली थीं।

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) निम्नांकित शब्दों के अर्थ बताओ :—विदीर्ण, वाणिज्य, विडम्बना, निस्तब्ध, प्रफुल्लित, दीर्घनिद्रा।

(ख) अर्थान्तर की व्याख्या करो :—अजित—पराजित, व्यस्त—अस्त, निस्तब्ध—स्तब्ध, उदयाचल—अस्ताचल, मनसा—वाचा—कर्मणा।

(ग) इन मुहाविरों के अर्थ बताओ :—फूट फूट कर रोना, हाथ-पैर चलाना, हृदय ठोस होना, वह जुगनू की चमक थी, दिल बैठ गया, हृदय ठंडा हो रहा था, सर थाम के बैठ गये ।

२—भाषा सम्बन्धी—

(घ) इस कहानी की भाषा के आधार पर प्रेमचन्द जी की भाषा के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करो ।

(ङ) इस कहानी के किसी स्थल में यदि उर्दू या अन्य किसी दूसरी भाषा के शब्द आये हों, तो उन्हें हिन्दी में रूपान्तरित करो ।

(च) प्रेमचन्द जी हिन्दी और उर्दू मिश्रित भाषा के पक्षपाती थे, इस बात की इस कहानी की भाषा से पुष्टि करो ।

(छ) निम्नांकित अंशों का भाव सरल और शुद्ध भाषा में स्पष्ट करो :—

(अ) ये कहा करते थे······टैक्स लेना चाहिए ।

(ब) गगन मण्डल में······मुसुकुरा रहे थे ।

(स) वही अमावस्या······आभा दे रही थी ।

३—विचार सम्बन्धी—

(ज) इस कहानी के द्वारा संसार की परिवर्त्तनशीलता को प्रमाणित करो ।

(झ) इस कहानी से किस प्रकार के सामजिक भावों की पुष्टि होती है ?

(ञ) इस कहानी के पात्रों के चरित्रों पर विचार करके बताओ कि किस पात्र का चरित्र अधिक सुन्दर है और क्यों ?

(ट) इन पर अपने विचार प्रगट करो :—

(प) समय की निन्दा व्यर्थ और भूल है ।

(फ) धर्म वह शक्ति है, जो अन्तःकरण में ओजस्वी विचारों को पैदा करती है ।

(ठ) इस कहानी से तुम्हें किस प्रकार की शिक्षा मिलती है ?

४—व्याकरण सम्बन्धी—

(ड) सविग्रह समास बताओ :—मुखारविन्द, स्मारक-चिन्ह, अर्द्धचन्द्राकार, मनसा-वाचा-कर्मणा ।

(ढ) इनके मूल शब्द बताओ:—घृणित, पराजित, नैराश्य, पैतृक, समाप्ति, सामीप्य ।

(ण) प्रत्यय या उपसर्ग लगाकर विविध शब्द बनाओ :—
शान्त, मान, मुख
(त) प्रथम अनुच्छेद की क्रियाएँ चुनो और उन्हें विधि क्रियाओं के
में परिवर्तित करो।
(थ) पद परिचय करो :—
तिवारियों का, वाणिज्य, ढकोसला है, चिट्ठियाँ, महाशोक।
(द) वाक्य विश्लेषण करो :—
(ब) केवल पंडित......रूप में खड़ा था।
(भ) आह ! क्या यह सम्पदा...... खूब न्याय करते हो।

६—मन की दौड़

[लेखक—श्रीयुत बालमुकुन्द गुप्त]

वंश :—अग्रवाल

जन्मस्थान:—रोहतक जिलान्तर्गत गुरयानी गाँव

जन्म संवत् :—१९२२

मृत्यु संवत् :—१९६४

परिचय :—आप हिन्दी-साहित्य के सुलेखक थे। पहले उर्दू में लिख करते थे। जब हिन्दी का आन्दोलन हुआ, तब इस आन्दोलन का आपके हृदय पर प्रभाव पड़ा, और आप हिन्दी-साहित्य के मैदान में उतर आये दिल में गुदगुदी पैदा करने वाली आपकी चुस्त और चुभती हुई हिन्दी ने थोड़े दिनों में आपको विख्यात कर दिया। आपकी समालोचनाओं में आपका एक अपनापन पाया जाता है। तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक स्थिति पर आपके आलोचनात्मक विचार मनन करने के योग्य हैं। आप स्वभाव के बड़े ज़िन्दा दिल और हँसमुख थे। रोते हुये मनुष्यों को हँसाने के लिये आपके पास जादू की पुड़िया-सी रहती थी।

कार्य :—सम्वत् १९४४ में आप मिर्ज़ापुर के 'अखबार-ए-चुनार' नामक उर्दू पत्र के सम्पादक नियुक्त हुये। एक वर्ष के पश्चात् लाहौर चले गये,

और 'कोहेनूर' नामक उर्दू पत्र का सम्पादन करने लगे। लाहौर ही में आपका हृदय हिन्दी-साहित्य की ओर आकृष्ट हुआ। उन दिनों कालाकाँकर से पं० मदनमोहन मालवीय और पं० प्रतापनारायण मिश्र के सम्पादकत्व में 'हिन्दुस्तान' नामक पत्र प्रकाशित हुआ करता था। आप उर्दू के 'कोहेनूर' को छोड़ कर हिन्दी के 'हिन्दुस्तान' में चले आये। इसके बाद आप 'बंगवासी' और 'भारतमित्र' के भी सम्पादक हुये। आपने विभिन्न विषयों पर बहुत से स्फुट लेख लिखे हैं। आपके लेखों के दो तीन संग्रह भी प्रकाशित हुये हैं।

शैली :—गुप्त जी की शैली बड़ी रोचक और सजीव है। हास्य और व्यंग्य की पुट ने उसमें एक प्रकार की जिन्दा दिली-सी डाल दी है। संस्कृत के व्यावहारिक तत्सम शब्दों के साथ मिलकर उर्दू के शब्दों ने एक अनुपम बहार-सी लगा दी है। छोटे-छोटे चुभते हुये वाक्यों की छटा देखते ही बनती है। मुहाविरों का सुन्दर और उपयुक्त प्रयोग हृदय को आकृष्ट किये बिना नहीं रहता। संक्षिप्त रूप में गुप्त जी की शैली बड़ी ज़ोरदार, व्यावहारिक और प्रभावशालिनी है।

रचनाएँ :—१ गुप्त निबन्धावली, २ चिट्ठे और ख़त, ३ शिव शंभु के चिट्ठे, ४ स्फुट कविता (कविताओं का संग्रह)

तीसरे पहर का समय था। दिन जल्दी-जल्दी ढल रहा था, और सामने से सन्ध्या फुर्ती के साथ पाँव बढ़ाये चली आती थी। शर्मा महाराज बूटी की धुन में लगे हुए थे। सिल-बट्टे-से भंग रगड़ी जा रही थी। मिर्च-मसाला साफ़ हो रहा था। बादाम-इलायची के छिलके उतारे जा रहे थे। नागपुरी नारंगियाँ छील-छील कर रस निकाला जा रहा था। इतने में देखा कि बादल उमड़ रहे हैं। चीलें नीचे उतर रही हैं। तबियत भुरभुरा उठी। इधर भंग, उधर घटा, बहार में बहार। इतने में वायु का वेग बढ़ा, चीलें अदृश्य हुईं। अँधेरा आया। बूदें गिरने लगीं। साथ ही तड़तड़-धड़धड़ होने लगी। देखा ओले गिर रहे हैं। ओले थमे, कुछ वर्षा हुई। बूटी तैयार हुई। बम-भोला कह के शर्मा

जी ने एक लोटा-भर चढ़ाई। ठीक उसी समय लाल-डिग्गी पर बड़े लाट मिंटो ने बंग देश के भूतपूर्व छोटे लाट उडवर्न की मूर्ति खोली। ठीक एक ही समय कलकत्ते में ये दो आवश्यक काम हुए। भेद इतना ही था कि शिवशम्भु शर्मा के बरामदे की छत पर बूँदें गिरी थीं और लार्ड मिंटों के सिर या छाते पर।

भंग छान कर महाराज जी ने खटिया पर लम्बी तानी। कुछ काल सुषुप्ति के आनन्द में निमग्न रहे। अचानक धड़धड़-तड़तड़ के शब्द ने कानों में प्रवेश किया। आखें मलते उठे। वायु के झोंकों से किवाड़ पुर्जे-पुर्जे हुआ चाहते थे। बरामदे के टीनों पर तड़ातड़ के साथ टनाका भी होता था। एक दरवाजे के किवाड़ खोलकर बाहर की ओर झाँका तो हवा के झोंके ने दस-बीस बूदें और दो चार ओलों से शर्मा जी के श्रीमुख का अभिषेक किया। कमरे के भीतर भी ओलों की एक बौछाड़ पहुँची। फुर्ती से किवाड़ बन्द किये तथापि एक शीशा चूर हुआ। समझ में आ गया कि ओलों की बौछाड़ चल रही है। इतने में टन-टन कर के दस बजे। शर्मा जी फिर चारपाई पर लम्बायमान हुए। कान टीन और ओलों के सम्मिलन की ठनाठन का मधुर शब्द सुनने लगे। आँखें बन्द, हाथ-पाँव सुख में। पर विचार के घोड़े को विश्राम न था। वह ओलों की चोट से बाजुओं को बचाता हुआ परिन्दों की तरह इधर-उधर उड़ रहा था। गुलाबी नशे में विचारों का तार बँधा कि बड़े लाट फुर्ती से अपनी कोठी में घुस गये होंगे और दूसरे अमीर भी अपने अपने घरों में चले गये होंगे पर वे चीलें कहाँ कई होंगी? ओलों से उनके बाजू कैसे बचे होंगे? जो पत्ती इस समय अपने अण्डे-बच्चों समेत पेड़ों पर पत्तों की आड़ में हैं या घोंसले में छिपे हुए हैं, उन पर क्या गुज़री होगी? जरूर झड़े हुए फलों के ढेर में कल सबेरे इन बदनसीबों के टूटे अण्डे, मरे बच्चे और इनके भीगते-सिसकते शरीर पड़े मिलेंगे। हा! शिवशम्भु को इन पत्तियों की चिन्ता है, पर यह नहीं जानता कि इस अभ्रस्पर्शी अट्टालिकाओं से परिपूरित महानगर में सहस्रों अभागे रात बिताने को झोंपड़ी भी नहीं रखते। इस समय सैकड़ों अट्टालिकाएँ शून्य पड़ी

हैं। उनमें सहस्रों मनुष्य सो सकते पर उनमें ताले लगे हैं; और सहस्रों में केवल दो-दो चार-चार आदमी रहते हैं। अहो, तिसपर भी इस देश की मिट्टी से बने हुए सहस्रों अभागे सड़कों के किनारे इधर-उधर की सड़ी और गीली भूमियों पर पड़े भीगते हैं! मैले चिथड़े लपेटे वायु वर्षा और ओलों का सामना करते हैं। सबेरे इनमें से कितनों ही की लाशें जहाँ-तहाँ पड़ी मिलेंगी। तू इस चारपाई पर मौजें उड़ रहा है।

आन-की-आन में विचार बदला, नशा उड़ा, हृदय पर दुर्बलता आई। भारत, तेरी वर्त्तमान दशा में हर्ष को अधिक देर स्थिरता कहाँ? कभी कोई हर्ष-सूचक बात दस-बीस पलक के लिए चित्त को प्रसन्न कर जाय तो वही बहुत समझना चाहिए। प्यारी भंग तेरी कृपा से कभी-कभी कुछ काल के लिए चिन्ता दूर हो जाती है। इसी से तेरा सहयोग अच्छा समझा है। नहीं तो यह अध-बूढ़ा भंगड़ क्या सुख का भूखा है? घावों से चूर जैसे नींद में पड़कर अनेक कष्ट भूल जाता है, अथवा स्वप्न में अपने को स्वस्थ देखता है, तुझे पीकर शिवशम्भु भी उसी प्रकार कभी-कभी अपने कष्टों को भूल जाता है।

चिन्ता-स्रोत दूसरी ओर फिरा। विचार आया कि काल अनन्त है। जो बात इस समय है वह सदा न रहेगी। इससे एक समय अच्छा भी आ सकता है। जो बात आज आठ-आठ आँसू रुलाती है, वही किसी दिन बड़ा आनन्द उत्पन्न कर सकती है। एक दिन ऐसी ही काली रात थी। इससे भी घोर अँधेरी भादों कृष्ण अष्टमी की अर्धरात्रि। चारों ओर अन्धकार! वर्षा होती थी, बिजली कौंदती थी, घन गरजते थे। यमुना उत्ताल तरङ्गों से बह रही थी। ऐसे समय में एक दृढ़ पुरुष, एक सद्यजात शिशु को गोद में लिये मथुरा के कारागार से निकल रहा था। शिशु की माता शिशु के उत्पन्न होने के हर्ष को भूलकर दुःख से विह्वल होकर चुपके-चुपके आँसू गिराती थी—पुकार कर रो भी नहीं सकती थी। बालक उसने उस पुरुष को अर्पण किया और कलेजे पर हाथ रख कर बैठ गई। सुध आने के

समय से उसने कारागार में ही आयु बिताई है। उसके कितने ही बालक वहीं उत्पन्न हुए और वहीं उसकी आँखों के सामने मारे गये। यह अन्तिम बालक है। कड़ा कारागार, विकट पहरा। पर इस बालक को वह किसी प्रकार बचाना चाहती है। इसी से उस बालक को उसके पिता की गोद में दिया है कि वह उसे किसी निरापद स्थान में पहुँचा आवे।

वह और कोई नहीं थे, यदुवंशी महाराज वसुदेव थे और नवजात शिशु कृष्ण। उसी को उस कठिन दशा में उस भयानक काली रात में वह गोकुल पहुँचाने जाते हैं। कैसा कठिन समय था, पर दृढ़ता सब बिपदों को जीत लेती है, सब कठिनाइयों को सुगम कर देती है। वसुदेव सब कष्टों को सहकर, यमुना पार करके, भीगते हुए, उस बालक को गोकुल पहुँचाकर उसी रात कारागार में लौट आये। वही बालक आगे कृष्ण हुआ, ब्रज का प्यारा हुआ, माँ-बाप की आँखों का तारा हुआ, यदुकुलमुकुट हुआ, उस समय की राजनीति का अधिष्ठाता हुआ। जिधर वह हुआ, उधर विजय हुई। जिसके विरुद्ध हुआ, उसकी पराजय हुई। वही हिन्दुओं का सर्व-प्रधान अवतार हुआ और शिवशम्भु शर्मा का इष्ट-देव, स्वामी और सर्वस्व। वह कारागार भारत-सन्तान के लिए तीर्थ हुआ; वहाँ की धूल मस्तक पर चढ़ाने के योग्य हुई।

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) स्पष्ट अर्थ बताओ :—अदृश्य, सुषुप्ति, अभिषेक, परिपूरित, स्रोत, उत्ताल, विह्वल, अधिष्ठाता, इष्टदेव।

(ख) अर्थान्तर की व्याख्या करो :—धड़ाधड़—धड़, आनन्द—नन्द, प्रवेश—वेश, अर्पण—पण, गोकुल—कुल।

(ग) निम्नांकित मुहाविरों के अर्थ लिख कर उनका अपने वाक्यों में प्रयोग करो :—तबियत भुरभुरा उठी, विचार के घोड़े, लम्बी तानी, लम्बायमान हुए, घावों से चूर।

२—भाषा सम्बन्धी—

(घ) इस लेख की भाषा-रोचकता पर अपने विचार प्रगट करो।

(ङ) गुप्त जी की भाषा में उर्दू शब्दों के क्यों अधिक प्रयोग पाये जाते हैं?

(च) इस लेख में आने वाले उर्दू शब्दों को हिन्दी में रूपान्तरित करो।

(छ) शुद्ध और सरल भाषा में भाव स्पष्ट करो :—

(अ) शिव शंभु को······शून्य पड़ी हैं।

(ब) इससे भी घोर······निकल रहा था।

(स) वही बालक आगे······स्वामी और सर्वस्व।

३—विचार सम्बन्धी—

(ज) संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखो:—कृष्ण, गोकुल, वसुदेव।

(झ) शिवशंभु शर्मा के मन की दौड़ का सारांश एक पृष्ठ में प्रकट करो।

(ञ) लेखक ने अपने इस लेख में किस सामाजिक परिस्थिति की आलोचना की है।

४—व्याकरण सम्बन्धी—

(ट) सविग्रह समास बताओ—मिर्च-मसाला, अभ्रस्पर्शी, हर्ष-सूचक, चिन्ता-स्रोत, नव-जात, भारत-सन्तान।

(ठ) क्या हैं, और कैसे बने हैं :—सुषुप्ति, स्थिरता, चिन्तित, तरंगित, राजनीतिक, पराजित।

(ड) वाक्य-विग्रह करो :—

(प) ठीक उसी समय······कम हुए।

(फ) आन की आन में······स्थिरता कहाँ?

(ब) वह और कोई······पहुँचाने जाते हैं।

(ढ) पद-व्याख्या करो :—उतारे जा रहे थे, खटिया पर लम्बी तानी, कारागार में लौट आये।

७—गोपियों की भगवद्भक्ति

[लेखक—श्रीयुत महावीरप्रसाद द्विवेदी

वंश—कान्यकुब्ज ब्राह्मण

जन्मस्थान—रायबरेली ज़िलान्तर्गत दौलतपुर गाँव

जन्म संवत्—१९२१

मृत्यु संवत्—१९९५

परिचय :—द्विवेदी जी को सवप्रथम गाँव ही में हिन्दी, उर्दू, और संस्कृत की शिक्षा मिली। गाँव की शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् आपने अँगरेज़ी का अध्ययन किया। अध्ययन तो आपके जीवन की प्रमुख वस्तु है। इसमें सन्देह नहीं, कि अध्ययन और सर्वतोमुखी प्रतिभा ही ने आपको हिन्दी-साहित्य के आचार्य के सिंहासन पर ला बिठाया। आवश्यक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् आपने रेल और तार-विभाग में कई वर्षों तक नौकरी की। नौकरी काल में भी आप बराबर अध्ययन करते रहे। आपकी अध्ययन-गंभीरता दिन पर दिन अधिक बढ़ती गई। संवत् १९६० में आपने सरस्वती के सम्पादक का पद ग्रहण किया। आपने लगभग सोलह वर्षों तक सरस्वती का सम्पादन किया। आपके सम्पादन-काल में सरस्वती ख़ूब फूली, फली, और उन्नति को प्राप्त हुई।

द्विवेदी जी हिन्दी-साहित्य के आचार्य थे। हिन्दी, उर्दू, अँगरेज़ी और बंगला इत्यादि भाषाओं पर अपना प्रभुत्व रखते थे। आपकी प्रगाढ़ विद्वत्ता और साहित्यिक सेवाओं पर प्रसन्न होकर हिन्दी-भाषी जनता ने कई बार आपको हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का सभापति बनाया, किन्तु आपने अस्वीकार कर दिया। अभी कुछ वर्ष हुये आपका देहावसान हो गया।

कार्य :—द्विवेदी जी हिन्दी-साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान थे। साहित्य की सेवा उनके जीवन का व्रत था। आज कल हिन्दी-गद्य साहित्य का जो परिष्कृत रूप दिखाई देता है, उसके निर्माणकर्त्ता आप ही थे। आपने हिन्दी गद्य-शैली को एक स्थिर स्वरूप प्रदान किया। भाषा की उच्छृङ्खलता को रोक कर उसे व्याकरण के नियमों से परिष्कृत किया। विरामों के प्रयोग की प्रथा

प्रचलित की। आपकी तीव्र आलोचनाओं ने भाषा के परिष्करण में अधिक सहायता पहुँचाई है। आपने बहुत सी मौलिक पुस्तकें लिखीं, और अन्य भाषाओं की बहुत सी पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद भी किया है।

शैलीः—द्विवेदी जी की शैली भिन्न-भिन्न प्रकार की है। इसका कारण यह है, कि द्विवेदी जी जहाँ लेखक थे, वहाँ आलोचक भी थे। जहाँ वे अपनी गवेषणा के लिये प्रसिद्ध थे, वहाँ उन्होंने व्यंग्यात्मक निबन्धों में भी अत्यन्त ख्याति प्राप्त की थी। किन्तु साधारणतः द्विवेदी जी उर्दू के तत्सम शब्दों के साथ संस्कृत शब्दों के उपयोग के पक्षपाती थे। उनकी भाषा अधिक संयत और शक्तिशालिनी है। भाषा की सरलता और सुबोधता उनकी शैली की विशेषता है।

रचनाएँ :—पद्य १ कुमार-संभव-सार, २ सुमन, ३ कविता कलाप। अनुवादित—४ हिन्दी महाभारत, ५ किरातार्जुनीय, ६ रघुवंश, ७ स्वाधीनता। निबन्ध-संग्रह—८ विचार-विमर्श, ९—संकलन, १० सुकवि संकीर्तन, ११ साहित्य सन्दर्भ, १२ वैचित्र्य चित्रण, १३ अतीत स्मृति, १४ रसज्ञ रंजन, १५ कालिदास की निरंकुशता, १६ प्राचीन चिह्न, १७ आलोचनांजलि, १८ विज्ञान-वार्त्ता। वैज्ञानिक—१९ सम्पत्तिशास्त्र, २० हिन्दी भाषा की उत्पत्ति।

शरत्काल है। धरातल पर धूल का नाम नहीं। मार्ग रजोरहित है, नदियों का औद्धत्य जाता रहा है, वे कृश हो गई हैं, सरोवर और सरिताएँ निर्मल जल से परिपूर्ण हैं। जलाशयों में कमल खिल रहे हैं। भूमि-भाग काशांसुकों से शोभित हैं। वनोपवन हरे-हरे लोल-पल्लवों से आच्छादित हैं। आकाश स्वच्छ है; कहीं बादल का लेश नहीं। प्रकृति को इस प्रकार प्रफुल्ल-बदना देखकर एक दफ़े, रात के समय, श्रीकृष्ण को एक दिल्लगी सूझी।

उस दिन शरत्पूर्णिमा थी। श्रीकृष्ण ने देखा, भगवान् निशानायक का बिम्ब अखण्ड-भाव से उदित है, वह अपनी सोलहों कलाओं से परिपूर्ण है। नवीन कुङ्कुम के समान उसका अरुण-बिम्ब रमा के मुखमण्डल को भी मात कर रहा है। उसकी कोमल-किरण-माला

वन में सर्वत्र फैली हुई है। ऐसे उद्दीपनकारी समय में उन्होंने अपनी मुरली की मधुर-तान छेड़ दी। उसकी ध्वनि ने गोपियों के मानस को बलात् अपनी ओर खींच लिया। वे उस लोकोत्तर निनाद को सुनकर मोहित हो गईं।

वंशी की ध्वनि सुन कर गोपियों की अन्य समस्त इन्द्रियाँ कर्णमय हो गईं। अन्य इन्द्रियों के धर्म लोप हो गये। अकेली श्रवणेन्द्रिय अक्षुण्ण रही। श्रीकृष्ण के द्वारा बजाई गई वंशी की ध्वनि सुन कर गोपियाँ आकुल हो उठीं। उन्होंने घर के सारे काम छोड़ दिये। शिशुओं को स्तन्य-पान कराना और पतियों की शुश्रूषा करना भी वे भूल गईं। वे सहसा घर से निकल पड़ीं और उसी तरफ़ दौड़ीं जिस तरफ़ से वह मनो-मुग्धकारिणी ध्वनि आ रही थी। आकर उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण जी अपने नटवर-वेश में खड़े वंशी बजा रहे हैं। धीरे-धीरे उनके पास एक दो नहीं सैकड़ों गोपियाँ एकत्र हो गईं। इतनी आतुर होकर, हड़बड़ी में वे घर से निकल पड़ी थीं कि उन्होंने अपने वस्त्र-भूषण तक ठीक ठीक—जिसे जहाँ पर और जिस तरह पहिनना चाहिए था—नहीं पहना था। उन्हें इस तरह आई देख श्रीकृष्ण को फिर एक दिल्लगी सूझी। आपने वंशी बजाना बन्द कर दिया और बोले—

"स्वागत! स्वागत! ख़ूब आईं! कहिये, क्या हुआ है? कुशल तो है? व्रज पर कोई विपत्ति तो नहीं आई? किस लिए रात को यहाँ आगमन हुआ?"

ज़रा इन प्रश्नों को तो देखिए। स्वागत-सत्कार के ढंग पर तो विचार कीजिए। आप ही ने तो बुलाया और आप ही आने का कारण पूछ रहे हैं! यह दिल्लगी नहीं तो क्या है? और दिल्लगी भी बड़ी ही निष्करुण। बात यहीं तक रहती तो ग़नीमत थी। कृष्ण ने तो, इसके आगे, गोपियों को कुछ उपदेश भी दिया। उपदेश क्या दिया, जले पर नमक छिड़का। आपके व्याख्यान का कुछ अंश सुनिए।

"रात बड़ी ही भयावनी है। जङ्गल बेहद घना है। हिंस्र जीव इधर-ऊधर घूम रहे हैं। भला यह समय भी क्या स्त्रियों के बाहर निकलने का है! तुम्हारे बाल-बच्चे रोते होंगे? तुम्हारे पति, पुत्र, पिता आदि कुटुम्बी तुम्हें ढूँढ़ते होंगे। राका-शशि की किरणों से रञ्जित कुसुमित-कानन की सैर हो चुकी। रवि-नन्दिनी यमुना की तरल-तरङ्गों की शोभा तुम देख चुकीं। यदि प्रेम-परवशता के कारण मेरे दर्शनार्थ तुम चली आईं तो तुम्हारी वह दर्शन-पिपासा भी पूर्ण हो गई। हो चुका, बस, अब तुम पधारो, अपने-अपने घर लौट जाओ; जाकर अपने-अपने स्वामियों की शुश्रूषा करो!

देखो, अपना पति दुःशील दुर्भग, वृद्ध, जड़, रोगी और निर्धन ही क्यों न हो, स्त्रियों को उसका त्याग कदापि न करना चाहिये। तुम जिस अभिप्राय से यहाँ आई हो, वह अत्यन्त निन्द्य है। उससे तुम्हारे दोनों लोक बिगड़ जायँगे।"

श्रीकृष्ण के इस व्याख्यान पर ध्यान दीजिये और फिर उनके उस प्रश्न पर विचार कीजिये। प्रश्न था कि तुम आईं क्यों? इस प्रश्न का उत्तर आप स्वयं ही दे रहे हैं। फिर भी आपने प्रश्न करने की जरूरत समझी! इसी से हम कहते हैं कि यह सारी दिल्लगी थी। दिल्लगी पर दिल्लगी।

कृष्ण का यह रुख देख कर और उनकी यह प्रश्नावली तथा उपदेशमाला सुन कर गोपियों के होश उड़ गये। उन्हें स्वप्न में भी यह ख्याल न हुआ होगा कि उनके साथ इतना कठोर बर्ताव किया जायगा। वे थीं अबला और अबलाओं का विशेष बल होता है रोना; आक्रोश करना, सिसकना और सिर धुनना, उसी का अवलम्ब उन्होंने किया। वे लगीं रोने, बड़े-बड़े आँसुओं के साथ, लगा उनकी आँखों का काजल बहने। मुँह उनके सूख गए। अत्युष्ण श्वासोच्छ्वासों की मार से उनके बिम्बाधर कुम्हला गये। बड़ी देर तक वे अपने पैर के अंगूठों से जमीन कुरेदती हुई ठगी-सी खड़ी रहीं। हाय, बड़ा धोखा हुआ। यह निष्ठुरता! हमारे अनन्य और निर्व्याज प्रेम का यह बदला! हमने जिसे अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया उसका यह

निष्कृय व्यवहार ! खैर, अपने होश किसी तरह थोड़ा बहुत सँभाल कर उनमें से कुछ प्रगल्भा गोपियों ने कृष्ण के सदुपदेश का इस प्रकार सत्कार किया। वे बोलीं—

"सरकार, आप तो बहुत बड़े पण्डित-प्रवर निकले। पण्डित ही नहीं, धर्मशास्त्री भी आप बन बैठे हैं। हमें आपके इन गुणों की अब तक खबर ही न थी। आपकी परम पावन कल्पनाओं का ज्ञान तो हमें आज ही हुआ। प्रार्थना यह है कि आप आदि-पुरुष भगवान् को भी जानते हैं या नहीं। मोक्ष की इच्छा रखने वाले मुमुक्षु-जन, अपना घर द्वार, स्त्री-पुरुष, धन-वैभव, सभी सांसारिक पदार्थों का परित्याग करके जब उनकी शरण जाते हैं, तब आप ही की तरह, क्या वे भी उन मुमुक्षुओं को वैसा ही शुष्क उपदेश देते हैं जैसा कि आपने हम लोगों को दिया ? क्या कभी कोई पुरुष भगवान् के दरबार या द्वार से उसी तरह दुरदुराया गया है जिस तरह कि आप हमें दुरदुरा रहे हैं ? आपको सर्वेश और सर्वोत्तम समझ कर ही हम आपकी सेवा में उपस्थित हुई हैं। अतएव, हे पण्डित-शिरोमणे ! आप हमसे पण्डिताई न छाँटिए। आप अपने पाण्डित्य का संवरण कीजिए। कठोरता के अवतार न बनिए। नृशंस-वाक्यों को मुख में न लाइये। समस्त विषयों को तृणवत् समझ कर हम आप के पाद-पद्म का आश्रय लेने आई हैं; हमारी भक्ति स्वीकार कीजिए। व्यर्थ की बातें न बनाइये। पुरुषवचनावली और नृशंसता आपको शोभा नहीं देती।

हाँ, आपकी एक बात का जवाब रह गया। आपकी धर्मभीरुता हमें बिलकुल नहीं जँची। मनु, याज्ञवल्क्य और पाराशर आदि धर्म-शास्त्रकारों के मत का मनन आपने खूब ही किया मालूम होता है। परन्तु सरकार, इन ऋषियों से भी बड़े, नहीं तो समकक्ष, अन्य ऋषियों ने जो कुछ कहा या लिख रक्खा है उस पर आपका ध्यान क्यों नहीं गया ? उन्होंने तो हाथ उठा-उठा कर जोरों से, यह कहा है कि जो जिस भाव से भगवान् की शरण जाता है उसका ग्रहण वे उसी भाव

से करते हैं! हमने सुन रक्खा है कि आप ही समस्त प्राणियों की आत्मा हैं। बता दीजिये, यह सच है या झूठ?

धर्मशास्त्रज्ञ बन कर आपने यही न फ़रमाया है कि पति, पुत्र, सुहृद् और अन्य कुटुम्बियों के विषय में स्त्रियों को अपना धर्म्म-पालन करना चाहिए—अर्थात् उनके प्रति स्त्रियों का जो कर्तव्य है उससे उन्हें च्युत न होना चाहिए! यही न! अच्छा तो अब आप यह भी फ़रमा दीजिये कि जितने देहधारी हैं उन सब के ईश्वर, उन सब की आत्मा, उन सब के बन्धु भी आप ही हैं या नहीं? अगर हैं और अगर दिव्य-दृष्टि वाले ऋषियों का यह सिद्धान्त भी सच है कि "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" तो बस हो चुका। तो हम अपने पति, पुत्र, सखा और सहोदर आदि की भावनायें सब आप ही में करती हैं। आप ही हमारे पिता, आप ही हमारे पुत्र, आप ही हमारे पति और आप ही हमारे सब कुछ हो। हमारी भावनाओं पर आपका क्या जोर! यदि आप घट-घट में व्यापक हैं– तो किसी के पिता, किसी के पति, किसी के पुत्र आप स्वयं ही बन चुके।

इससे आप अब दया कीजिए। हम आपको अपना परमाराध्य ईश्वर ही समझ कर आपकी सेवा में उपस्थित हुई हैं।"

कहने की जरूरत नहीं, गोपियों का अनन्य प्रेम और उनकी निर्व्याजभक्ति देख कर भगवान् कृष्ण ने उनकी सेवा को स्वीकार करके उन्हें कृतकृत्य कर दिया।

श्रीकृष्ण की इस लीला पर कुछ लोगों के द्वारा बड़ी ही कड़ी टीकायें की गई हैं और अब तक की जाती हैं। स्वयं पुराणकारों ही ने गोपियों को दुराचारिणी बताकर फिर उनके इस कलंक का परिमार्जन किया है। गोपियाँ बहुत पहले ही से कृष्ण को ईश्वर, परमेश्वर, सर्वात्मा, परमात्मा कहती चली आ रही हैं। वे तो उन्हें परमात्मा ही समझ कर, उनके पास, उनकी सेवा, अपने मनोऽनुकूल करने के लिए उपस्थित हुई थीं। श्रीमद्भागवत में उसके कर्ता ने एक नहीं अनेक स्थलों में, श्रीकृष्ण को परम-पुरुष, आदि-पुरुष, परमात्मा आदि शब्दों से याद किया है।

पुराणकारों ने श्रीकृष्ण को सर्वेश्वर, सर्वसाक्षी, सर्वान्तर्यामी, परमात्मा जब मान लिया तब भक्तों, प्रणयियों और दास्यभाव से प्रणोदित जनों के लिए क्या उन्होंने कुछ ऐसे भी नियम कर दिये हैं कि तुम इसी भाव से अपने उपास्य या इष्टदेव की भावना या भक्ति करो ? जहाँ तक हम जानते हैं, ऐसा तो कोई नियम नहीं। जो भाव जिसे अच्छा लगता है, उसी भाव से वह ईश्वर की अर्चना करता है। कोई उन्हें सखा समझता है, कोई उन्हें स्वामी समझता है, कोई उन्हें बालक समझता है, यहाँ तक कि किसी-किसी ने शत्रु-भाव से भी उनकी उपासना की है। इस दशा में यदि गोपियों ने श्रीकृष्ण को पति-भाव से भजा तो उन पर कलङ्क का आरोप क्यों ? या तो कृष्ण को यः कश्चित् साधारण मनुष्य समझिए या गोपियों पर वैसा आरोप करना छोड़िए। दोनों बातें साथ-साथ नहीं हो सकतीं। यदि श्रीकृष्ण परमात्मा थे और गोपियों ने उन्हें पति-भाव से ग्रहण किया तो वे सर्वथा निर्दोष ही नहीं, मङ्गल-मूर्ति समझी जाने योग्य और समस्त संसार की दृष्टि में पूजनीय हो चुकीं। आप श्रीमद्भागवत को सरासरी ही दृष्टि से पढ़िये। आप देखेंगे कि गोपियों ने अपने इष्टदेव को जहाँ प्रिय, प्रियतम, अङ्ग-सखा इत्यादि शब्दों से सम्बोधन किया है, वहाँ उन्हें वे बराबर ईश्वर, परमेश्वर और परमात्मा भी कहती आई हैं। अतएव उनके प्रेम के सम्बन्ध में दुर्भावना के लिए बिलकुल ही जगह नहीं। जिस भगवद्गीता को परम पण्डित भी संसार में सब से अधिक महत्व की पुस्तक समझते हैं उसी में कृष्ण भगवान् ने खुद ही कहा है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्

अतएव गोपियों ने यदि पति-भाव से उनका भजन किया तो क्या कोई गजब की बात हो गई ? उन्हें वही भाव प्रिय था। कंस और शिशुपाल आदि ने उन्हें और भाव से देखा था। कृष्ण ने उनके उस भाव का भी आदर ही किया और उन्हें वही फल दिया जो अन्य भाव के साधकों को प्राप्त होता है। परमात्मा होकर कृष्ण जब स्वयं कह रहे हैं कि जो जिस भाव से मेरा भजन करता है मैं

उसे उसी भाव से ग्रहण करता हूँ तब शंका और सन्देह के लिये जगह कहाँ ?

भगवद्भक्त अपनी धुन के पक्के होते हैं। उन्हें उनके निश्चित मार्ग के कोई हटा नहीं सकता। उन्हें निन्दा और स्तुति की परवा भी नहीं होती। वे रूढ़ि और लोकाचार के दास नहीं होते। मीरा की क्या कम निन्दा हुई ? उन पर क्या लाञ्छन नहीं लगाये गये ? उनके कुटुम्बियों ने क्या उनका परित्याग नहीं किया ? परन्तु यह सब होने पर भी मीरा ने यह कहना न छोड़ा—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।

कुछ-कुछ यही दशा तुलसीदास, कबीर, चैतन्य, रैदास, पलटू आदि की भी हुई है। तुलसीदास ने कहा भी है—

तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु, व्रज-बनितन पति त्यागो, भे जग मङ्गलकारी॥

प्रेमी को पूरा अधिकार है कि वह अपने उपास्य देव का आराधन चाहे जिस भाव से करे। ज्ञानयोग और राजयोग आदि के द्वारा भगवान् का सान्निध्य या मोक्ष-प्राप्त कर लेना साधारण साधकों का काम नहीं। वह मार्ग बहुत-बहुत कठिन है। पर प्रेम और भक्ति का मार्ग सुलभ और सुखसाध्य है। आप नारद-भक्ति सूत्र देखिए। उनमें इस मार्ग की कितनी महिमा गाई गई है। गोपियों के लिये योगसाधन अथवा ज्ञान-प्राप्ति करना असम्भव नहीं तो महा कठिन अवश्य था। उनके लिए वही साधन उपयुक्त था, जिसका आश्रय उन्होंने लिया। अतएव ये कल्याणी गोपिकायें ज्ञानियों और योगियों के भी वन्दन और प्रणमन की पात्र हैं।

व्रज छोड़ आने पर एक बार श्रीकृष्ण ने इन गोपियों का समाचार मँगाना चाहा। एतदर्थ उन्होंने उद्धव को चुना। उन्हीं उद्धव को जिन्होंने श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्द में बेढब वेदान्त बूका है और महाभारत में राजनीति पर बड़े-बड़े लेक्चर झाड़े हैं, आप अपनी ज्ञान-गरिमा की गठरी बाँध कर व्रज पहुँचे और लगे गोपियों को ज्ञानोपदेश करने; परन्तु वहाँ गोपियों ने उन्हें इतनी कड़ी फटकार

बताई कि उनका ज्ञान-सागर बिलकुल ही सूख गया। गोपियों की प्रेम की आँधी में उनका ज्ञानयोग यहाँ तक उड़ गया कि वे उलटे उन्हीं "व्यभिचारदुष्ट' (यहाँ यह शब्द व्यंग्यात्मक अर्थ देता है) वनचरी नारियों के चेले हो गये। उन्हें अन्त में भगवान् से प्रार्थना करनी पड़ी—

आसामहो चरणरेणुजुषामहम् स्याम्
　　वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथञ्च हित्वा
　　भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥

"इन गोपियों के चरणों की रज वृन्दावन के जिन पेड़-पौधों और लता-गुल्मादिकों पर पड़ी है वे धन्य हैं—उनके सदृश पावन और कोई चीज़ नहीं। ये गोपियाँ साधारण स्त्रियाँ नहीं। अपने दुस्त्यज कुटुम्बियों और सर्व-सम्मत तथा परम्परागत पथ का परित्याग करके ये उस पथ से चलने वाली हैं जिसे श्रुतियाँ ढूँढ़ती फिरती हैं, पर उन्हें ढूँढ़े नहीं मिलती। इसी पथ की बदौलत ये भगवान् की पदवी को प्राप्त करने में समर्थ हुई हैं। अतएव मेरी कामना है कि मैं इसी व्रज के किसी पेड़, पौधे, लता या गुल्म के रूप में कभी जन्म लेकर अपने को कृतार्थ करूँ।" उद्धव की यह उक्ति सुन कर कौन ऐसा भगवत्प्रेमी है जिसका शरीर कण्टकित और कण्ठ गद्गद न हो जायगा?

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) अर्थ स्पष्ट करो—लोल, प्रफुल्ल, लोकोत्तर, निष्करुण, दुर्भंग, निर्व्याज, समर्पण, प्रवर, शुष्क, दुर्भावना, लांछन, प्रणमन, गरिमा, कण्टकित, दुस्त्यज।

(ख) अर्थान्तर की व्याख्या करो:—लोल—कल्लोल, नवीन—प्रवीन, निर्व्याज—व्याज, शरण—रण, शास्त्रकारों—शस्त्रकारों, घट-घट—घट, अनन्य—अन्य।

(ग) इनके पर्यायवाची शब्द बताओ—निशानायक, कर्ण, राका, कृष्ण ।

२—भाषा सम्बन्धी :—

(घ) द्विवेदी जी ने अपने इस लेख में किस ढंग की शैली का प्रयोग किया है ?

(ङ) इस लेख की भाषा के चलताऊपन पर अपने विचार प्रगट करो ।

(च) इस लेख में आने वाले उर्दू शब्दों को हिन्दी में रूपान्तरित करो ।

(छ) निम्नांकित अंशों के भावार्थ स्पष्ट करो :—

(अ) शरत्काल है······दिल्लगी सूझी ।

(ब) भगवान् निशानायक···मधुर तान छेड़ दी ।

३—विचार सम्बन्धी—

(ज) इस लेख के आधार पर यह प्रमाणित करो कि कृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम पवित्र और कलंक-रहित था ।

(झ) संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखो :—
मीरा, उद्धव, तुलसीदास, कबीर, चैतन्य ।

(ञ) कृष्ण के प्रति गोपियों की भक्ति के संबंध में लेखक ने जो लिखा है, उसे अपने शब्दों में प्रगट करो ।

(ट) स्पष्ट भावार्थ समझाओ :—

(प) नदियों का औद्धत्य जाता रहा है ।

(फ) वंशी की ध्वनि सुनकर गोपियों की अन्य समस्त इन्द्रियाँ कर्ण-मय हो गईं ।

४—व्याकरण सम्बन्धी :—

(ठ) सविग्रह समास बताओः—लोल-पल्लवों, किरणमाला, दर्शन-पिपासा, निर्व्याज-भक्ति, पण्डित-प्रवर, परुष वचनावली, पाद-पद्म, दिव्य-दृष्टि, लोकाचार ।

(ड) निम्नांकित शब्द किस किस उपसर्ग के लगने से बने हैं:—आगमन, निर्मल, परिपूर्ण, प्रफुल्ल, प्रकृति, अखण्ड, निष्करुण, दुःशील, अत्यन्त ।

(ढ) सन्धि-विच्छेद करो और उनके नियम बताओ :—निर्मल, उद्दीपन, लोकोत्तर, श्रवणेन्द्रिय, निष्करुण, वस्त्राभूषण, श्वासोच्छ्वास ।

(ण) पद परिचय करोः—मुँह सूख गये, उपस्थित हुई हैं, चेले हो गये ।

(त) वाक्य विश्लेषण करो :—

(य) श्रीकृष्ण के इस······दे रहे हैं ।

(र) उन्होंने तो हाथ······करते हैं ।

(ल) इससे आप अब······उपस्थित हुई हैं ।

(थ) प्रेरणार्थक क्रियाएँ बनाकर प्रयुक्त करो—मानना, बढ़ना, पहुँचना, चढ़ना ।

८—सृष्टि की उत्पत्ति

[लेखक—श्रीयुत रामचन्द्र वर्मा]

वंशः—खत्री

जन्म स्थानः—काशी

जन्म संवत्—१६४७

परिचय—आप काशी के एक सुप्रसिद्ध खत्री वंश में उत्पन्न हुये हैं । जब आपकी अवस्था लगभग दस वर्ष के हुई, तब आपके पिता का देहावसान हो गया । पिता की मृत्यु के पश्चात् आप भारत जीवन प्रेस में रहने लगे । भारत जीवन पत्र के अध्यक्ष श्रीयुत रामकृष्ण वर्मा के साहित्यिक जीवन का आप पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा, और उन्हीं के प्रोत्साहन से आप छोटे-छोटे लेख भी लिखने लगे । आपके लेख 'भारत जीवन' में प्रायः प्रकाशित हुआ करते थे । थोड़े ही दिनों में आपकी सर्वतोमुखी प्रतिभा ने लोगों को विस्मय में डाल दिया । आपकी गणना हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखकों में की जाने लगी । आप अँग्रेज़ी, बँगला, मराठी, गुजराती, फ़ारसी इत्यादि भाषाओं के अच्छे ज्ञाता हैं । आप प्रकृति के बड़े मिलनसार, नम्र, और सुशील हैं ।

कार्यः—आपके लेख चौदह-पन्द्रह वर्ष की अवस्था ही से 'भारत जीवन'

में प्रकाशित होने लगे थे। सन् १६०७ में आप नागपुर से प्रकाशित होने वाले, 'हिन्दी केसरी' के सहायक सम्पादक हुये। कुछ दिनों के बाद आप उसके प्रधान सम्पादक बना दिये गये। सन् १६११ और १२ में आपने पटने के 'बिहार बन्धु' का सम्पादन किया। काशी की 'नागरी प्रचारिणी-पत्रिका' में भी आप कुछ दिनों तक सम्पादक रह चुके हैं।

आपने बहुत से स्वतंत्र ग्रन्थ लिखे हैं, तथा अन्यान्य भाषाओं के बहुत से ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद भी किया है। आपके ग्रन्थों की संख्या प्रायः सत्तर-पचहत्तर के लगभग होगी। काशी नागरी-प्रचारिणी सभा ने 'हिन्दी शब्द-सागर' नाम का जो बृहत् कोश प्रकाशित किया है, उसके सम्पादन में आपने भी प्रमुख रूप से भाग लिया था।

शैली:—आपकी भाषा बड़ी सुन्दर और सुबोध होती है। शुद्ध और परिमार्जित शैली का उपयोग करना आप ख़ूब जानते हैं। आपकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों की प्रचुरता रहती है। भावों की स्पष्टता आपकी भाषा की विशेषता है। आप अपने गम्भीर विचारों को भी सुलझी हुई सुन्दर भाषा में व्यक्त करते हैं।

मुख्य रचनाएँ:—अनुवादित—१ करुणा, २ छत्रशाल, ३ दासबोध, ४ सफलता और उसकी साधना के उपाय। स्वतंत्र—५—मानव जीवन, ६ साम्यवाद इत्यादि।

बहुत से लोग यह नहीं जानते होंगे कि पृथ्वी की उत्पत्ति किस प्रकार हुई है और वह किस प्रकार वर्तमान स्थिति तक पहुँची है। सब से पहले इमैनुअल कांट ने पृथ्वी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक सिद्धान्त स्थिर किया था और पीछे से लप्लेस ने बहुत ही विवेचना-पूर्वक उसी सिद्धान्त के आधार पर बहुत से नये और अधिक सूक्ष्म सिद्धान्त स्थिर किये थे। अधिकांश वैज्ञानिक जगत् प्रायः उन्हीं सिद्धान्तों से सहमत है। अतः यहाँ पहले हम उन्हीं सिद्धान्तों का संक्षेप में वर्णन करेंगे।

उन सिद्धान्तों के अनुसार आजकल प्रायः यही माना जाता है कि आरम्भ में केवल आकाश (Ether) था, जिसका कुछ अंश

कुछ समय के उपरान्त वाष्प के रूप में परिणत हो गया। इस वाष्प के अलग अलग समूह आकाश में चक्कर लगाने लगे। उनमें से कोई समूह बड़ा था और कोई छोटा। बड़े समूहों ने कुछ समय में सूर्य का रूप धारण किया और छोटे समूहों ने ग्रहों का। सृष्टि का यह काम अभी तक बराबर जारी है। अब तक आकाश में अनेक ऐसे वाष्प-पुञ्ज भ्रमण कर रहे हैं। उनमें हेलियम नामक पदार्थ ही अधिकता से है। इसीलिये उन्हें हेलियम तारे (Helium Stars) कहते हैं। ऐसे तारों का रंग कुछ नीलापन लिये सफ़ेद होता है। धीरे धीरे इन जलते हुए तारों की गरमी कम होने लगती है और ये कुछ घने और ठोस होने लगते हैं। उस समय इनका रंग कुछ पीला, जैसा कि हमारे सूर्य का है, हो जाता है। जिस समय ये और भी ठोस और ठंढे हो जाते हैं, उस समय इनका रंग कुछ लाल होने लगता है; और कुछ समय के उपरांत बहुत अधिक ठोस और ठंढे होने पर इनका रंग गहरा लाल हो जाता है।

यह तो हुई सूर्यों की उत्पत्ति। अब ग्रहों की उत्पत्ति लीजिये। पहली बात तो यह है कि सूर्यों की अपेक्षा ग्रह बहुत छोटे होते हैं, इसीलिये उनका ताप भी बहुत जल्दी घट जाता है और उनमें परिवर्तन भी बहुत शीघ्र होते हैं। दूसरी बात यह है कि ग्रह किसी सूर्य के साथ लग जाता है, जिससे उसकी दशा अन्यान्य सूर्यों से कुछ भिन्न हो जाती है। इस भिन्नता का कारण यह है कि उस पर किसी एक ही सूर्य का प्रभाव पड़ता है। हमारी पृथ्वी इसी प्रकार का एक ग्रह है। पहले यह केवल वाष्प-पुंज थी, पर पीछे यह भी ठोस होने लगी। इसकी भाप बदल कर पानी बनने लगी—बादल बनने लगे और पानी बरसने लगा। पहले तो वह पानी गरमी के कारण भाफ बन जाता था; पर जब गरमी कम हुई, तब भाफ का बनना कम होने लगा और बरसा हुआ पानी यहीं एकत्र होने लगा। इसी एकत्र पानी से समुद्रों की सृष्टि हुई। इसके उपरान्त धीरे धीरे नदियों और पहाड़ों आदि की सृष्टि हुई। जल में जलचरों की और स्थल में वनस्पतियों की सष्टि हुई और तब नभचर तथा

स्थलचर जीव बने। धीरे धीरे वह उस अवस्था को पहुँची, जिसमें उसे हम लोग इस समय पाते हैं। अभी इस दशा में भी बहुत कुछ परिवर्तन होने को बाक़ी है। इसका ऊपरी भाग तो ठंढा हो गया है, पर भीतरी भाग में बहुत कुछ ज्वाला भरी हुई है। अभी वह ज्वाला कम होगी, वायु कम होगी और जल भी कम होगा। उस समय उसकी दशा वैसी ही हो जायगी, जैसी इस समय मङ्गल की है। तदुपरान्त जब जल-वायु का बिलकुल ही अभाव हो जायगा, तब वह बुध ग्रह के समान मृत हो जायगी; और बहुत सम्भव है कि किसी सूर्य से टकरा कर अथवा और किसी प्रकार भस्म भी हो जाय। लेकिन लाखों करोड़ों वर्षों में पृथ्वी इस दशा को पहुँची है; और अभी उसका अन्त भी लाखों करोड़ों वर्षों में होगा। हाँ हम यह बतलाना भूल गये कि ग्रहों के साथ उपग्रह भी होते हैं। उपग्रहों की सृष्टि प्रायः ग्रहों से होती है। चन्द्रमा हमारी पृथ्वी का उपग्रह है। ज्योतिषियों का मत है कि हमारी पृथ्वी जिस समय बाष्प के रूप में थी, उसी समय इसमें से एक टुकड़ा निकल कर अलग हो गया। आजकल के कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि यह टुकड़ा उसी स्थान से निकला था, जहाँ आजकल प्रशान्त महासागर है। वह टुकड़ा बहुत ही छोटा था। अतः उसके जीवन-नाटक के सभी अंक बहुत जल्दी जल्दी समाप्त हो गये और अब वह बिलकुल मृत है। इसमें नाम-मात्र को भी ताप नहीं रह गया।

यही कारण है कि ग्रहों और उपग्रहों की गति एक ही ओर होती है—वे प्रायः एक ही धरातल में चक्कर लगाते हैं और उनकी कक्षा या भ्रमण-मार्ग प्रायः गोलाकार होता है। सभी सूर्यों, ग्रहों और उपग्रहों इत्यादि में आरम्भ में बहुत गरमी रहती है और धीरे धीरे वह गरमी कम होती जाती है। हमारी पृथ्वी की गरमी बहुत अधिक कम हो गई है; तो भी उसके भीतरी भाग में अभी तक बहुत अधिक ज्वाला भरी हुई है। इस गरमी का सब से सरल प्रमाण यह है कि ज्यों ज्यों हम पृथ्वी के गर्भ में बढ़ते जाते हैं, त्यों त्यों हम गरमी भी अधिक अनुभव करते हैं। हिसाब लगाकर जाना गया है कि भूगर्भ में प्रति

पचास या साठ फुट उतरने पर प्राय: एक डिग्री गरमी बढ़ जाती है। खानों और गहरे कुओं की गरमी से भी यही बात सिद्ध होती है। अनुमान किया जाता है कि जमीन के अन्दर तीस मील की गहराई में इतनी अधिक गरमी है कि उसमें पड़ते ही लोहा आप-से-आप गल सकता है ; और पृथ्वी के ठीक मध्य में तो प्रायः सवा चार लाख डिग्री की गरमी होगी ! पृथ्वी के ऊपर का जो स्थल या ठोस भाग है, वह उस जले हुए भाग के मुक़ाबले में कुछ भी नहीं है जो पृथ्वी के अन्दर है। यदि सारी पृथ्वी को मनुष्य का शरीर मान लिया जाय, जो स्थल को चमड़े की झिल्ली मात्र ही मानना होगा ; अर्थात् बहुत बड़े जलते हुए आग के गोले पर हमारे स्थल का एक बहुत ही पतला गिलाफ़ चढ़ा हुआ है।

ऊपर जो बातें बतलाई गई हैं, उन सब से यही सिद्ध होता है कि हमारी पृथ्वी किसी समय जलती हुई आग का एक गोला थी और धीरे धीरे गरमी के कम होने के कारण उसने वर्तमान रूप धारण किया है। यह रूप धारण करने में इसे लाखों नहीं बल्कि करोड़ों वर्ष लगे हैं। प्रोफेसर डारविन का मत है कि एक ऐसा ज़माना भी था, जब कि पृथ्वी-तल पर भूकंप की तरंगों के समान इतनी बड़ी बड़ी तरंगें उठती थीं, जिनके कारण उसका टुकड़ा 'चन्द्रमा' उससे अलग हो गया था। वह टुकड़ा जब समुद्र पर तैरता होगा, उस समय उसमें बहुत ऊँची ऊँची तरंगें उठती होंगी। आँधियाँ भी उस समय बहुत ही तेज़ चलती होंगी, जिनके कारण सारा जल और स्थल सदा बहुत ही क्षुब्ध रहता होगा। इन बातों से सिद्ध होता है कि केवल हमारी पृथ्वी का ताप ही दिन पर दिन नहीं घटता जा रहा है, बल्कि उसमें होनेवाले अनेक दूसरे उपद्रव भी (जैसे भूकंप, समुद्र-कंप, आँधियाँ आदि) बराबर कम होते जा रहे हैं। इन सभी उपद्रवों का ज़ोर दिन पर दिन घटता जा रहा है। लेकिन यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि बहुत पुराने ज़माने में जितनी तेज़ी से हमारी पृथ्वी का ताप घटता था, उतनी तेज़ी से अब नहीं घटता। इसी प्रकार बहुत दिनों पहले पृथ्वी का बहुत बड़ा भाग बहुत जल्दी जल्दी उभरता

और धँसता था। पर अब उसके उभरने और धँसने में भी अपेक्षाकृत बहुत कमी हो गई है। इसी प्रकार भूकंपों और ज्वालामुखी के प्रकोपों में भी पहले की अपेक्षा अब बहुत कमी हो गई है। हम पहले बता चुके हैं कि हमारी पृथ्वी के भीतरी भाग में बहुत अधिक मान में बहुत ही जलता हुआ तरल पदार्थ है। पर कुछ वैज्ञानिकों का मत इसके विरुद्ध भी है। वे कहते हैं कि पृथ्वी का भीतरी भाग ठोस और ठंढा है। एक वैज्ञानिक का तो यहाँ तक मत है कि पृथ्वी के भीतरी भाग का घनत्व लोहे से भी अधिक है। एक जर्मन भूगर्भ-शास्त्री ने बहुत से ज्वालामुखी पर्वतों आदि का भली भाँति निरीक्षण करके निश्चित किया था कि पृथ्वी का भीतरी भाग बिलकुल ठंढा और ठोस है; और पृथ्वी-तल से साठ मील की गहराई पर उसमें स्थान स्थान पर अग्नि के समुद्र और झीलें हैं; अर्थात् पृथ्वी के भीतरी भाग में तरल अग्नि उसी प्रकार है, जिस प्रकार मधु-मक्खियों के छत्ते के कोषों में शहद भरा रहता है। ज्वालामुखी पर्वतों का उसी अग्नि से संबंध रहता है, जिसके कारण ज्वालामुखी पर्वतों आदि के कारण जो दशा आज कल जापान की है, प्रायः वही दशा किसी पुराने ज़माने में स्काटलैंड की भी रही होगी। संभव है, इसका कारण यह हो कि समय पाकर किसी एक स्थान की तरल-अग्नि का समुद्र शांत हो जाता हो और कभी दूसरे स्थान पर उसकी सृष्टि हो जाती हो। कुछ आधुनिक भूगर्भ-शास्त्रियों का मत है कि पृथ्वी के भीतरी भाग में गरमी तो बहुत अधिक है, पर चारों ओर से उस पर जो दबाव पड़ता है, उस दबाव के कारण वह तरल नहीं रह सकती।

पृथ्वी की केतुनाभि चाहे तरल हो चाहे ठोस, पर यह बात सभी लोग मानते हैं कि पृथ्वी के भीतरी भाग में बहुत अधिक ज्वाला, जलती हुई गैसें, और गली हुई चट्टानें तथा धातुएँ आदि भरी हुई हैं; और उन्हीं के कारण समय समय पर ज्वालामुखी पर्वतों का स्फोट होता है, भूकंप आता है, तप्त कुंडों में से खौलता हुआ पानी निकलता है तथा इसी प्रकार की अन्यान्य अनेक बातें होती हैं। बहुत बड़े बड़े वैज्ञानिकों और भूगर्भ-शास्त्रियों ने तो भूगर्भ के संबंध में बहुत सी

युक्तियाँ लड़ाईं और बहुत सी बातें बतलाई हैं, पर साधारणतः विचार करने पर यही बात ठीक जान पड़ती है कि उसके भीतर कहीं तरल अग्नि और कहीं ठोस चट्टानें आदि हैं। यदि पृथ्वी का सारा भीतरी भाग एक दम से तरल अग्नि ही होता, तो उसमें बहुत ही साधारण क्षोभ होने पर भी स्थान-स्थान पर पृथ्वी आप से आप फट जाती और टुकड़े टुकड़े हो जाती।

अग्नि सर्वव्यापिनी है और साथ ही वह सारे विश्व का जीवन है। हम चाहे यह न कह सकते हों कि भूगर्भ में कहाँ, कितनी और कैसी अग्नि है, पर इतना अवश्य कह सकते हैं कि उसमें बहुत अधिक अग्नि है। यही अग्नि भूगर्भ में अनेक प्रकार के उपद्रव और परिवर्तन आदि करती है, यही अग्नि ज्वालामुखी पर्वतों का स्फोट करती है, यही पृथ्वी को धँसाती है, यही पृथ्वी को उभारती है और यही प्रत्यक्ष रूप में भूकंप भी लाती है। पृथ्वी के भीतरी ताप के दिन पर दिन घट जाने के कारण हम कह सकते हैं कि पृथ्वी पर के भौतिक उपद्रव भी आज तक उसी मान में घटते आये हैं और भविष्य में उसी मान में सदा घटते रहेंगे। पर पृथ्वी की आयु करोड़ों वर्षों की है; इसलिये इस ह्रास का पता एक, दो या चार पीढ़ियों को नहीं लग सकता। ह्रास होता अवश्य है; पर उस ह्रास का स्थूल मान जानने के लिए लाखों वर्ष के अनुभव की आवश्यकता है। अल्पजीवी मनुष्य उस ह्रास का केवल अनुमान कर सकता है, उसका प्रत्यक्ष अनुभव करना उसके लिए नितान्त असम्भव है।

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) अर्थ बताओ:—सिद्धान्त, उपरान्त, सृष्टि, उत्पत्ति, अपेक्षा, अन्यान्य, तदुपरान्त, उपग्रह, वाष्प, मृत, क्षुब्ध, अपेक्षाकृत, निरीक्षण, स्फोट, नितान्त, अनुभव।

(ख) अर्थान्तर की व्याख्या करो:—आधार—धार, उपरान्त—अन्त, मृत—अमृत, विरुद्ध—रुद्ध, तरल—गरल, ताप—तप।

(ग) पर्यायवाची शब्द बताओ:—पृथ्वी, आकाश, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, संसार।

२—भाषा सम्बन्धी—

(घ) इस लेख की भाषा के आधार पर बा० रामचन्द्र वर्मा की भाषा पर अपने विचार प्रगट करो।

(ङ) इस लेख में आने वाले उर्दू शब्दों को हिन्दी में रूपान्तरित करो।

(च) स्पष्ट भावार्थ बताओ:—

(अ) आज कल के कुछ······बिलकुल मृत है।

(ब) अग्नि सर्वव्यापिनी·······भूकम्प लाती है।

३—विचार सम्बन्धी—

(छ) इमैनुअल कांट ने पृथ्वी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कौन सा सिद्धान्त स्थिर किया है?

(ज) पृथ्वी के सम्बन्ध में ज्योतिषियों के विचार बताओ।

(झ) तुम यह कैसे प्रमाणित कर सकते हो कि सृष्टि के प्रारंभिक काल में पृथ्वी आग के गोले के सदृश थी?

(ञ) ज्वालामुखी पर्वतों का विस्फोट क्यों होता है?

(ट) संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखो:—ज्वालामुखी, भूकम्प, ज्योतिषी, तरल अग्नि।

४—व्याकरण सम्बन्धी—

(ठ) सविग्रह समास बताओ:—विवेचनापूर्वक, वाष्पपुंज, जीवन-नाटक, पृथ्वी-तल, तरल अग्नि, भूगर्भ-शास्त्रियों, अल्पजीवी।

(ड) प्रमाणित करो कि प्रत्यय या उपसर्ग के प्रयोग से—

(प) शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है।

(फ) शब्द का अर्थ ज्यों का त्यों बना रहता है।

(ब) शब्द का अर्थ बिलकुल विपरीत हो जाता है।

(ढ) क्या हैं और कैसे बने हैं:—वैज्ञानिक, आधिक्य, परिवर्तित, अमित, भौतिक

(ण) पदव्याख्या करो—समूह बड़ा था, उपग्रह है, होते जा रहे हैं, चट्टानें, धातुएँ।

भैंसों की भाँति लोट-पोट होने चला जाया करता था। दिन सुख से बीत रहे थे। किंतु लोभ बुरा होता है। अध्ययन का लोभ मुझे लाहौर घसीट ले गया विशेषकर ऐसे समय में, जब वहाँ गर्मी ने उग्र रूप धारण कर रक्खा था। आगरे को लोग बहुत गरम बतलाते हैं, और है भी; परन्तु इन दिनों आगरे और लाहौर की गर्मी में चूल्हे और भाड़ का-सा अन्तर प्रतीत होता था। बंद कमरे में पंखे के नीचे भी अनलमय अनिल का सामना करना पड़ता था। इस गरम हवा के आगे बिहारी की विरहिणी नायिका की उच्छ्वास भी शायद शीतल मालूम होगी। पंखे से हट कर बैठने में स्वेद सलिल की सरिता में निमग्न होना पड़ता था। इस गर्मी के आगे अध्ययन की सरगर्मी को सर झुकाना पड़ा। मैं चार रोज रह कर भागने वाला ही था कि बैठे-ठाले एक आफ़त और सर लग गई। 'एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य; तावद्द्वितीयं समुपस्थितं मे छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति।*' 'ग़रीबी में आटा गीला।' पाँच जुलाई की सायंकाल को पशु-पक्षियों की भाँति मैं भी अपने निवास-स्थान को लौट रहा था। गर्मी के कारण गति भी मंद न थी। दार्शनिक और तार्किक होता हुआ भी 'घृताधार पात्रं वा पात्राधारं घृतम्' के चक्कर में विचार-मग्न भी न था। ख़ूब सतर्क था, तो भी न-जाने कहाँ से दो श्वानदेव (मालूम नहीं कैसे थे—पागल अथवा स्वस्थ, क्योंकि केवल पागल ही नहीं लड़ा करते, बुद्धिमान् मनुष्य भी लड़ा करते हैं।) आपस में मल्ल-युद्ध करते और रौद्र-रस के अनुभावों का पूर्ण प्रदर्शन करते हुए विद्युत्-गति से मेरी टाँगों के पीछे आ गए। मैं पीछे देखने भी न पाया था कि उनके नख मेरी टाँग में लग गए। मेरे शान्तिमय स्पर्श से श्वान-मल्लों का विरोध शान्त हो गया, इसका मुझे गौरव है। मल्लों ने हार-जीत बराबर मान अपने-अपने घर की राह ली,

---

* समुद्र के पार की तरह जब तक एक दुःख के अंत तक नहीं पहुँचा था कि दूसरा उपस्थित हो गया। जहाँ कोई कमी होती है, वहीं अनर्थ अधिक होते हैं।

किन्तु मेरे पीछे एक बला लग गई। इसी को कहते हैं कि आपत्ति कोई मोल लेने नहीं जाता। न्याय-शास्त्र के कर्ता महर्षि गौतम एक बार कुछ सोचते हुए चले जाते थे। बेचारे आगे न देख सके, और कुएँ में गिर पड़े। भगवान् ने दया करके उनके पैरों में आँखें दे दीं, तभी से उनका नाम अक्षपाद पड़ा। यदि भगवान् ने उस समय सारी मनुष्य-जाति के पैरों में नेत्र दे दिए होते, तो शायद मैं इस आपत्ति से बच जाता। नायक-नायिकाओं के नख-क्षतों का वर्णन साहित्य में पढ़ा था। यद्यपि उसमें भी थोड़ा पागलपन रहता होगा, तथापि उसके कारण किसी को कमरे से बाहर नहीं जाना पड़ता था। इन श्वान महोदयों के नख-क्षत के कारण चौदह बार सूचिका वेध (Injection) के प्रायश्चित्त की, बात की बात, में डाक्टरों ने व्यवस्था दे दी। जिस प्रकार स्पर्श-मात्र से मनुष्य कलंकित हो जाता है, उसी प्रकार कुत्ते के काटे हुए व्यक्तियों की गणना में मैं भी आ गया। न्यायालयों में जब तक अभियुक्त पर जुर्म साबित न हो जाय, तब तक वह निर्दोष समझा जाता है, किन्तु चिकित्सालयों में कुत्ता जब तक ग़ैर पागल प्रमाणित न हो जाय, तब तक पागल ही माना जाता है। अपागल प्रमाणित करने का केवल एक विधि है, कुत्ते को बाँध रक्खा जाय। यदि वह दस दिन तक न मरे, तो स्वस्थ है, अर्थात् पागल नहीं है; और यदि दस दिन के भीतर मर जाय, तो पागल है। दस दिन की राह देखने में देरी हो जाने की आशंका से डाक्टर लोग इंजेक्शन फ़ौरन् ही शुरू कर देते हैं। यदि कुत्ता दस दिन में न मरा, तो इंजेक्शन बन्द कर देते हैं। पागल कुत्ते के मस्तिष्क की भी अनुवीक्षण-यंत्र (Microscope) द्वारा परीक्षा की जाती है। यदि भावात्मक फल आया, तब तो निश्चय हो जाता है कि कुत्ता पागल था, किन्तु यदि उसके दिमाग़ में पागलपन के चिन्ह न मिले, तो यह निश्चय नहीं होता कि कुत्ता पागल नहीं था। इसलिये दस रोज़ तक कुत्ते को मेहमान बना कर उसकी प्रतीक्षा करना ही श्रेयस्कर है। हँसी की दूसरी बात है, पर आशंका-मात्र पर भी इंजेक्शन लेना परम आवश्यक है। यदि एक बटा दस प्रतिशत भी आशंका हो, तो

जान ख़तरे में न डालनी चाहिए। जान तो वैसे ही सदा ख़तरे में रहती है, किन्तु जान-बूझ कर मौत की राह जाना ठीक नहीं। शरीर में यदि ज़रा भी जहर प्रवेश कर जाय, और मनुष्य को हाइड्रोफोबिया अर्थात् जल-विक्षिप्तता (इस बीमारी वाला जल से डरता है। प्यास होते हुए भी पानी नहीं पी सकता।) हो, तो वास्तव में कुत्ते की मौत मरना पड़ता है। वह रोग असाध्य हो जाता है। वह मनुष्य भी कुत्ते की तरह काटने को दौड़ता है। यदि उस मनुष्य की लार किसी को लग जाय, तो उसे भी इंजेक्शन लेना आवश्यक हो जाता है। कुत्ते के नख या दंत-स्पर्श होते ही, तुरन्त अस्पताल में, जाकर, क्षत को नश्तर से खुरचवाकर कास्टिक लगवा लेना चाहिए। इस क्रिया को 'कोटराइज़' करना कहते हैं। 'शुभस्य शीघ्रम्' न्याय से डाक्टरों ने लाहौर में ही इंजेक्शन देना आरम्भ कर दिया। दो इंजेक्शनों में ही भूगोल का पढ़ा हुआ सत्य प्रमाणित होने लगा कि पृथ्वी घूमती है। यद्यपि इस टीके का वेक्सीन अब आगरे, लखनऊ दिल्ली आदि स्थानों के अस्पतालों में रहता है, और जिस प्रकार सब स्थानों का गंगा जल पवित्र और मोक्षप्रद होता है, उसी प्रकार सभी स्थानों में इस टीके से पूर्ण लाभ होता है, तथापि जिस प्रकार हरिद्वार का कुछ और ही महत्त्व है, उसी प्रकार कसौली की भी विशेषता है। यदि दुर्भाग्य से किसी को गर्मी के दिनों में कुत्ता काटे, और उसे आर्थिक असुविधा न हो, तो वह अवश्य कसौली जाय। यहाँ का जल-वायु सुन्दर है। यहाँ पर आतप की व्यथा कम व्यापती है। मैंने भी फ़रीदकोट जा कर, किसी प्रकार माँग-जाँच कर गरम कपड़े जुटाए, और कसौली की राह ली। मैंने सोचा, कुत्ते ने काटा तो काटा, कसौली की सैर तो हो जायगी। साहब लोगों की भाँति गर्मियों में शैलशिखरवास कर लूँगा। "बछिया मरी तो मरी, आगरा तो देखा।" यहाँ पर आतप के भीषण ताप से बच जाऊँगा, और चतुर्दश (मुझे तो द्वादश ही लगे, क्योंकि दो लाहौर में लग चुके थे) सूचिका-वेध द्वारा पूर्व जन्म के पाप (मैं यह नहीं कहता कि इस जन्म में मैंने पाप नहीं किए) का प्रायश्चित्त हो जायगा। 'गोरस-बेचन, हरि-मिलन; एक

पंथ दो काज' की बात चरितार्थ हो जायगी। अस्तु! भटिंडा और राजपुरा बदलता हुआ अंबाला पहुँचा। वहाँ कुछ वर्षा भी हो चुकी थी। दूसरे वातावरण में प्रवेश हुआ। गाड़ी में कुछ नींद भी आई। कालका से दो-एक स्टेशन पूर्व आँख खुली। गाड़ी की लड़खड़ाती हुई चाल से प्रतीत हो गया कि हम लोग पर्वतीय प्रदेश में प्रवेश कर रहे हैं। गाड़ी में दो इंजन थे, तब भी वह नौ दिन में अढ़ाई कोस की चाल चल रही थी। 'ईषद्विच्छिन्न मेघावली' में अरुणोदय बड़ा सुहावना लगता था। गंभीर नीलिमा में स्वर्ण-रजतमय प्रकाश की शलाकाएँ अपूर्व शोभा दे रही थीं। शीतल वायु के स्पर्श ने शरीर में एक अपूर्व स्फूर्ति उत्पन्न कर दी। अकारण हँसी आने लगी—लाहौर में तो हँसाने पर भी हँसी न आती थी। गरम वास्कट धारण की, स्टेशन पर पहुँचा, कुलियों ने असबाब उतारा, और मैं प्लेटफ़ार्म पर खड़ा हो गया। मुझे शास्त्रीय ज्ञान तो था, अनुभवीय ज्ञान न था। धरमपुर का टिकट ले चुका था, क्योंकि रेलवे के टाइमटेबुलों में कसौली के लिये धरमपुर का ही स्टेशन बतलाया जाता है। वैसे कालका से कसौली के लिये मोटरें सस्ती मिल जाती हैं। 'पासच्युर इंस्टिट्यूट' की एक छोटी लारी भी नित्य आती-जाती है। सड़क के रास्ते कालका से कसौली केवल २२ मील है, और रेल के रास्ते क़रीब २८ मील पड़ता है। वर्षा के समय रेल में कुछ सुविधा रहती है। खैर। धरमपुर पहुँचा। वहाँ के स्टेशन का वातावरण बड़ा शांत है। पहाड़ी स्टेशनों का वातावरण प्रायः ऐसा ही होता है। वर्षा हो रही थी। मोटर मिलने में कुछ कठिनाई अवश्य हुई, किंतु सकुशल कसौली आ गया। पासच्युर इंस्टिट्यूट में ग़रीबों के लिये मुफ़्त ठहरने का स्थान है, और अमीरों के लिये आठ आना रोज़ पर अच्छे क्वार्टर मिल जाते हैं। विक्टोरिया-होटल भी अच्छा है। ग़रीबों के क्वार्टर तो जैसे मुफ्त के क्वार्टर होते हैं, वैसे ही होते हैं, किंतु यहाँ ग़रीबों के लिये कंबल और बर्तन भी मिलते हैं। खाने के लिये बालिग़ आदमी को छः आने रोज़ और बच्चे को तीन आने रोज़ मिलते हैं। मुझे तो छोटे भाई के पुण्य-प्रताप से क्लब के पास एक अच्छा स्थान मिल गया था। मैं कोठी

के मालिक के लिये हृदय से अनुगृहीत हूँ। हाँ, वह स्थान बड़ी ऊँचाई पर था। चढ़ते-चढ़ते राम याद आते थे। कबीरदासजी की ऊँचाई का आदर्श तो लंबा खजूर ही है। वह तो साईं का घर भी लंबा खजूर की ही बराबर दूर बतलाते हैं, लेकिन मैं जहाँ ठहरा था, वह स्थान बहुत ऊँचा था। खजूर से ऊँचे तो यहाँ के चील के दरख्त होते हैं (कसौली को समुद्र की सतह से ६००० फ़ीट ऊँचा बतलाते हैं। मुझे ५००० फ़ीट नहीं चढ़ना पड़ा)। मेघ भी पर्वत-शृङ्गों के आगे ऊँचे नहीं मालूम होते। यहाँ वर्षा प्रायः नित्य होती है। बिना छाता-बरसाती के काम नहीं चलता। तभी तो कालिदास का यक्ष मेघ की आर्द्रता दयार्द्रता का अनुभव कर उसको अपनी विरहगाथा सुनाकर अपनी प्रियतमा के लिये संदेश-वाहक बनाना चाहता था। जो अपने निकट होता है, उसी से बात की जाती है। कसौली कुत्ते के काटेवाले के लिए तो प्रधान तीर्थ-स्थान है ही, किंतु यहाँ जो लोग रहते हैं, वे सब कुत्ते के काटे हुए ही नहीं रहते। यहाँ पर एक बहुत सुन्दर छावनी है। यहाँ की सड़कें बड़ी रमणीक हैं। चढ़ाव उतार की और चक्करदार अवश्य हैं, किंतु उनके दोनों ओर खूब हरियाली रहती है। कुछ स्वाभाविक उपज है, और कुछ लगाई हुई। बाज़ार भी अच्छा है। यहाँ पर गिरजाघर, क्लबघर, बारकें, डेरी आदि देखने योग्य हैं। मंकीपाइंट अर्थात् वानर-शृङ्ग यहाँ का उच्चतम शिखर है। जाड़ों में ख़ूब बरफ़ पड़ती और आबादी कम हो जाती है।

कसौली का कुत्ते का अस्पताल (नहीं-नहीं, कुत्ते के काटे हुए मुझ-ऐसे आदमियों का अस्पताल) पासच्युर इंस्टिट्यूट बहुत बड़ी संस्था है। पासच्युर एक फ़रासीसी डाक्टर का नाम है, जिन्होंने पहले-पहल इस प्रकार के इलाज की ईजाद की थी। उन्हीं के नाम पर इस संस्था का नाम पड़ा है। यहाँ पर क़रीब ७० या ८० आदमी काम करते हैं। इंजेक्शन देने के लिये भी कई डॉक्टर रहते हैं। ज़खमों के ड्रेसिंग का अलग प्रबंध है। नखों और दाँतों के क्षतों की गहराई और संख्या के हिसाब से रोगियों की चार कक्षाएँ की जाती हैं—पहली श्रेणी के लोग प्रायः वे होते हैं, जिन्हें केवल लार का स्पर्श होता है। उन लोगों

को केवल सात दिन दो घन सेंटीमीटर (2 C. C.) वेक्सीन दिया जाता है। वेक्सीन की मात्रा में बच्चे और जवान के लिये भी अंतर रक्खा जाता है। चौथी श्रेणी के वे लोग होते हैं, जिनके ज़ख्म बड़े और गहरे होते हैं। इनको कभी-कभी वेक्सीन के अतिरिक्त सीरम के भी इंजेक्शन दिए जाते हैं। सीरम में दूषित कीटाणुओं से रक्षा करने की अधिक शक्ति होती है। चौथे वर्ग के लोगों से इंजेक्शन लगना शुरू होता है, और नंबरवार इंजेक्शन लगते जाते हैं। जब से इंजेक्शन का सामान तैयार होकर बाहर जाने लगा है, तब से यहाँ रोगियों की संख्या घट गई है। क़रीब बीस और तीस के बीच में हाज़िरी रहती है।

इस इंस्टिट्यूट में इंजेक्शन लगाने के अतिरिक्त वेक्सीन और सीरम तैयार भी किए जाते हैं। इसके लिये यहाँ पर बहुत-से ख़रगोश और भेड़ें भी रहती हैं। बंदरों पर तैयार किए हुए वेक्सीन और सीरम की परीक्षा होती है।

इस इंस्टिट्यूट के अतिरिक्त यहाँ पर एक सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट अर्थात् केन्द्रीय गवेषणा-संस्था है। यहाँ पर साँप के काटे, प्लेग, कॉलरा आदि के इंजेक्शनों का सामान तैयार किया जाता है। यह संस्था पासच्युर इंस्टिट्यूट से भी अधिक महत्त्व की है, किंतु लोग इसे कम जानते हैं। यहाँ से सहस्रों रुपये का वेक्सीन हिंदोस्तान-भर में जाता है। इस संस्था में एक घोड़े की तसवीर है, जिसके द्वारा १०,०००) का साँप के काटे का सीरम तैयार कराकर बाहर भेजा गया है। इस सीरम को ऐंटीवेनम अर्थात् ज़हरमोरा कहते हैं।

यहाँ पर वेक्सीन और सीरम के निर्माण की विधि एवं सिद्धांतों पर प्रकाश डालना कुछ अनुपयुक्त न होगा। हाँ, हास्य रस के साथ, जिसमें इस लेख का आरंभ हुआ था, कुछ पाठकों को रस में विष प्रतीत होगा। किंतु जीवनप्रद विज्ञान की उपेक्षा करना भी उचित नहीं। मनुष्य के जीवन का बड़ा मूल्य है। यद्यपि हास्य बिना जीवन जीवन-योग्य नहीं होता, तथापि जीवन बिना हास्य कहाँ से आवेगा। जड़ नष्ट होने पर फूल-पत्तों का भी नाश हो जाता है।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि वेक्सीन और सीरम दो भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं। इनके निर्माण के सिद्धांतों में भी अंतर है। यह प्रायः सब लोग जानते हैं कि हमारे रुधिर में लाल और श्वेत कीटाणु हैं, जिनको अँगरेज़ी में कोरप्यूसिल्स कहते हैं। जब हमारे शरीर में कोई बाहर का कीटाणु प्रवेश करता है, तब हमारे रुधिर के कीटाणु विशेषकर श्वेत कीटाणु—उसे भगाने के घोर प्रयत्न करते हैं (ये रुधिर के कीटाणु एक प्रकार के जीवित घटक (living cells) होते हैं)। यदि रुधिर के कीटाणु प्रबल होते हैं, तो वे रोग के कीटाणुओं को खा जाते हैं, और यदि रोग के कीटाणु प्रबल होते हैं तो रोग मनुष्य को दबा लेता है। रोग के कीटाणु शरीर के भीतर पहुँच कर प्रजनन द्वारा अपनी संख्या बढ़ा लेते हैं। सीरम और वेक्सीन, दोनों ही रुधिर के कीटाणुओं की रोग के कीटाणुओं से रक्षा करने में सहायक होते हैं, किंतु भिन्न-भिन्न प्रकार से। जो जख्म करता है, वही मरहम भी अपने साथ लाता है। रोग के कीटाणु अथवा सर्पादि के विष के कीटाणु जब शरीर में प्रवेश करते हैं, तब शरीर में ही एक ऐसा पदार्थ उत्पन्न कर देते हैं, जो उसका घातक होता है। उसका सहारा पाकर हमारे रुधिर के कीटाणु भी रोग के कीटाणुओं का नाश करने में समर्थ हो जाते हैं, किंतु विष-घातक (Anti toxin) पदार्थ पूर्ण मात्रा में नहीं उत्पन्न होता है। जिस समय शरीर में विष प्रवेश करता है, हमारे शरीर के कीटाणु उससे अकेले लड़ने में समर्थ नहीं होते, क्योंकि रोग के कीटाणु शरीर में पहुँचकर बहुत जल्द अपनी फ़ौज बढ़ा लेते हैं। उसके लिये सहारा दिया जाता है। यह सहारा वेक्सीन और सीरम के रूप में होता है।

वेक्सीन का सिद्धांत यह है कि वह हमारे शरीर में रोग के कीटाणुओं को ऐसी अवस्था में प्रवेश कराता है, जिसमें वे शरीर में पहुँचकर अपनी संख्या तो बढ़ा नहीं सकते, किंतु अपना घातक विष तैयार कर देते हैं। कुत्ते के काटे का वेक्सीन तथा प्लेग और कालरा का वेक्सीन इसी सिद्धांत पर बनाया जाता है। चूँकि कुत्ते के काटे का विष ज़रा देर में असर करता है, इसलिये इंजेक्शन द्वारा पहुँचाया

हुआ वेक्सीन रुधिर में पहले प्रतिक्रिया (Reaction) उत्पन्न कर उसमें कुत्ते के विष के घातक पदार्थ उत्पन्न कर देता है, और वे विष को अशक्त (Neutralised) कर देते हैं। प्लेग और कॉलरा के जो वेक्सीन बनते हैं, उनमें रोग को रोकने की तो शक्ति होती है, किंतु उसे अच्छा करने की नहीं। कुत्ते और कॉलरा तथा प्लेग के वेक्सीनों का सिद्धांत तो एक ही है, किंतु उनकी निर्माणविधि पृथक् है। बाज़ारू कुत्तों के ज़हर के (जिसको स्ट्रीट वाइरिस कहते हैं) कीटाणुओं को खरगोश के मस्तिष्क में सूचिका द्वारा प्रविष्ट करा कर उनकी एक प्रकार से खेती (Culture) कराई जाती है। वे फिर और जानवरों के मस्तिष्क में प्रविष्ट कराए जाते हैं, अंत में भेड़ के मस्तिष्क में प्रविष्ट कराए जाते हैं, और फिर उनका क़िमाम बना कर उसका वेक्सीन तैयार कराया जाता है। कॉलरा और प्लेग के वेक्सीन में इतना हत्या-कांड नहीं होता। प्लेग और कॉलरा के कीटाणु उचित मात्रा की गर्मी में (मनुष्य के शरीर का जितना ताप-मान होता है, उतना ही इनके लिये उपयुक्त समझा जाता है) बढ़ाए जाते हैं, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार अंडे सेए जाते हैं। जिस यंत्र में ये बढ़ाए जाते हैं, उसे इनक्यूबेटर अर्थात् सेनेवाला यंत्र कहते हैं। जब इनकी संख्या बढ़ जाती है, तो इनका शोध करके अर्थात् और प्रकार के कीटाणुओं को निकाल कर इनको उचित मात्रा में नमक के पानी में रक्खा जाता है, और कारबोलिक एसिड द्वारा इन्हें मार कर प्रजनन के लिये अशक्त (Sterelize) बना दिया जाता है। इसके पश्चात् वे वायु से सुरक्षित काँच की नलिकाओं (Air tight tubes) में बंद करके इंजेक्शन के लिये बाहर भेजे जाते हैं। जब सूचिका द्वारा वे शरीर में पहुँचते हैं, तब उनकी उपस्थिति के कारण उनकी जाति के घातक पदार्थ तैयार हो जाते हैं। वे कुछ असर नहीं कर सकते, न वे शरीर में जाकर बढ़ते ही हैं। इस प्रकार मनुष्य का रुधिर कॉलरा या प्लेग के कीटाणुओं से मोर्चा लेने में समर्थ हो जाता है। जिस प्रकार के कीटाणुओं का प्रवेश किया जाता है, उसी प्रकार के कीटाणु का विष-घातक (Anti-toxin) तैयार होता है। वेक्सीन द्वारा हमारे शरीर में विष-घातक तैयार करने

की शक्ति उत्पन्न कर दी जाती है। यह शक्ति प्रायः एक साल या छः महीने तक रहती है।

सीरम बनाने की विधि और उसका सिद्धान्त इस प्रकार है। ऊपर बतलाया जा चुका है कि हमारे रुधिर के कीटाणु रोग के कीटाणुओं से लड़ते हैं। यदि रुधिर के कीटाणु ज्यादा हों, तो उनकी विजय हो जाती है। इससे यह सिद्धांत निकलता है कि यदि किसी जानवर के शरीर में थोड़ा-सा विष पहुँचाया जाय, तो उसके रुधिर के कीटाणु उस पर विजय पा लेते हैं, और साथ ही-साथ रुधिर में विष के घातक पदार्थ भी उत्पन्न हो जाते हैं। संखिया खाने वाले भी थोड़ा-थोड़ा खाकर अभ्यास बढ़ा लेते हैं। इसी सिद्धांत पर घोड़ों के शरीर में सर्प का विष धीरे-धीरे प्रविष्ट कराया जाता है, और उसके कीटाणुओं की ताक़त बढ़ती रहती है, तथा वे विष के प्रभाव से सुरक्षित हो जाते हैं। फिर उनके रुधिर में यह शक्ति आ जाती है कि जब सर्प दंशित मनुष्य के शरीर में उसका प्रवेश किया जाता है, तभी वह रुधिर मनुष्य के रुधिर में मिलकर उसे सर्प-दंश के विष से सुरक्षित कर देता है। हाँ, यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि जिस प्रकार के सर्प का दंश हो उसी प्रकार के सर्प से ज़हर से बने हुए सीरम से लाभ हो सकता है, क्योंकि वही अपने कीटाणुओं से सुरक्षित होता है। इसलिये सर्प-दंशित मनुष्य को जहाँ तक हो सके, सर्प की जाति का पता लगा लेना चाहिए, सर्प से पूछ कर नहीं, उसे दिखलाकर। काले फनदार साँप कोबरा को प्रायः सब पहचानते हैं। बस, सीरम और वेक्सीन में यही अंतर है। सीरम द्वारा रोग से सुरक्षित रहने की क्षमता रखने वाला रुधिर, जिसमें विष-घातक पदार्थ तैयार हो चुके हैं, मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट किया जाता है। वह मनुष्य के रुधिर में मिल कर उसे भी सुरक्षित (immune) कर देता है। वेक्सीन द्वारा मनुष्य के शरीर में रोग के कीटाणु ऐसी अवस्था में प्रविष्ट कराए जाते हैं कि वे स्वयं तो अशक्त होते हैं, किंतु अपने घातक पदार्थ शरीर में उत्पन्न कर देते हैं। सीरम द्वारा घातक पदार्थ उत्पन्न हुई अवस्था में पहुँचाए जाते हैं, वेक्सीन द्वारा वे मनुष्य-शरीर में उत्पन्न किये जाते हैं।

कुत्ते के काटे का सीरम भी इसी प्रकार बनाया जाता है। बड़े केसों में उसी का इंजेक्शन दिया जाता है। अंतर इतना ही है कि कुत्ते के काटे का सीरम भेड़ के रुधिर से बनाया जाता है। अब घोड़ों के रुधिर से बनाने की कोशिश की जा रही है। शायद सफलता हो जाय। जिन जानवरों से सीरम बनाया जाता है, वे मरते नहीं, केवल उनका रुधिर ले लिया जाता है। जिन जानवरों से कुत्ते का वेक्सीन तैयार होता है, वे मनुष्य के हित में बलिदान हो जाते हैं। इसलिये मनुष्य-जाति को इन छोटे जानवरों का बहुत ऋणी होना चाहिए। संभव है, भविष्य में कोई ऐसा माध्यम मिल जाय, जिसमें कालरा और प्लेग के वेक्सीन की भाँति कुत्ते के ज़हर के कीटाणुओं की पैदाइश और बढ़ती के लिये जानवरों के मस्तिष्क की ज़रूरत न पड़े। हमें ध्यान रखना चाहिए कि कितनी गवेषणा के पश्चात् लोग इन सिद्धान्तों को निश्चित कर सके हैं। भविष्य में ईश्वर की कृपा से वह दिन आवेगा, जब हमारे भारतवासी भी अपनी गवेषणा द्वारा संसार के ज्ञान की वृद्धि करेंगे। यह बात असंभव नहीं है क्योंकि इन संस्थाओं में जो भारतीय डॉक्टर काम कर रहे हैं, वे बड़ी रुचि और अनुसंधान के साथ अपने काम में संलग्न रहते हैं।

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) अर्थ बताओः—वैवध्य, चरितार्थ, व्यजन, अनलमय, स्वेद, श्वान, विद्युत्, मल्ल, अक्षपाद, प्रायश्चित, अनुवीक्षण, विक्षिप्त, मोक्षप्रद, वातावरण, शिखर, अशक्त, गवेषणा, अनुसंधान।

(ख) अर्थान्तर की व्याख्या करोः—वातावरण—वरण, स्वर्ण—रजत, केवल—बल, संदेश—देश, उच्चतम—तम, शिखर—खर, प्रभाव—भाव।

(ग) निम्नांकित मुहाविरों के अर्थ बताकर उनका अपने वाक्यों में प्रयोग करोः—न सावन सूखा न भादों हरा, खर के सर से सींगों का

अभाव तहाँ अवध, जहँ राम निवासू, छाँहौं चाहति छाँह, ग़रीबी में आटा गीला।

(घ) पर्यायवाची शब्द बताओ—गगन, तारक, भू, स्वर्ण शोभा।

२—भाषा सम्बन्धी—

(ङ) गुलाबराय जी की भाषा के सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो?

(च) इस लेख की वर्णन-शैली पर अपने विचार प्रगट करो।

(छ) इस लेख में आने वाले अन्यान्य भाषाओं के शब्दों को हिन्दी में रूपान्तरित करो।

(ज) भाव स्पष्ट करके लिखोः—

(अ) गर्मी के कारण गति······पीछे आ गये।

(ब) ईषद्विच्छिन्न मेघावली······हँसी आने लगी।

३—विचार सम्बन्धी—

(झ) कसौली कहाँ है? वहाँ लोग किस विशेष अभिप्राय से जाते हैं?

(ञ) कसौली के सौन्दर्य का अपनी भाषा में वर्णन करो।

(ट) कसौली में श्वान दंश की किस प्रकार चिकित्सा की जाती है?

(ठ) क्या तात्पर्य समझते होः—इंजेक्शन, रिसर्च इंस्टिट्यूट, एंटीवेनम, कारप्यूसल्स।

(ड) वेक्सीन और सीरम किस प्रकार तैयार किया जाता है?

४—व्याकरण सम्बन्धी—

(ढ) इनके मूल शब्द बताओः—वैधव्य, विरहिणी, कलंकित, प्रमाणित, अनुगृहीत, जीवित, भारतीय।

(ण) उपसर्ग या प्रत्यय की सहायता से नवीन शब्द बनाओः—पाद, व्यवस्था, साध्य, भाग्य, जनन, क्रिया।

(त) सविग्रह समास बताओः—अहि-मृग-बाघ, तारक विखचित, विद्युत्-व्यजन, गगन-वितान, स्वर्ण-रजतमय, सन्देश-वाहक, सर्प दंशित।

(थ) इस पाठ से ऐसे पाँच शब्दों को चुनो, जो भिन्न-भिन्न शब्द विभागों की भाँति प्रयुक्त हो सकते हों।

(द) वाक्य विश्लेषण करो :—

(प) जिस प्रकार स्पर्श······मैं भी आ गया।

(फ) वानरश्रृङ्ग......हो जाती है।

(ब) ऊपर बतलाया......विजय हो जाती है।

(घ) पद व्याख्या करो—पृथक् है, तैयार हो जाते हैं, सब पहचानते हैं, संलग्न रहते हैं।

१०—हरिश्चन्द्र की सत्यवादिता

[लेखक—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र]

वंश—अग्रवाल

जन्मस्थान—काशी

जन्म संवत्—१९०७

मृत्यु संवत्—१९४२

परिचय—भारतेन्दु बाबू इतिहास-प्रसिद्ध सेठ अमीरचन्द के वंशज हैं। आपकी प्रतिभा बड़ी तीव्र थी। पाँच वर्ष की अवस्था ही में आपने एक दोहा बना कर अपने पिता को सुनाया था। आपके पिता बाबू गोपालचन्द भी एक अच्छे सुकवि थे। जब आप छोटे थे, तभी आपके माता-पिता का देहावसान हो गया। पिता की मृत्यु के कारण आपकी शिक्षा-दीक्षा भली भाँति न हो सकी। किन्तु आपकी तीव्र प्रतिभा ने आपके लिये उन्नति का मार्ग परिष्कृत कर दिया। आप थोड़े ही दिनों में अधिक विख्यात हो गये। आपके गद्य पद्य, दोनों तत्कालीन हिन्दी-साहित्य में आदर और सम्मान की वस्तु समझे जाने लगे। आप जब तक जीवित रहे, बराबर हिन्दी-साहित्य की सेवा करते रहे। आप विचारों के बड़े उदार और सुधारवादी थे। अपव्यय आपके जीवन का एक रोग था। जीवन के अन्तिम भाग में इसी रोग के कारण आपको कष्टों का सामना भी करना पड़ा। केवल पैंतीस वर्ष की ही अवस्था में आपका देहावसान हो गया।

कार्यः—भारतेन्दु बाबू से हिन्दी-साहित्य का अधिक कल्याण हुआ। आधुनिक हिन्दी-गद्य के जन्म-दाता आप ही माने जाते हैं। आपके पहले हिन्दी-गद्य-शैली का न तो कोई निश्चित क्रम था, और न उसकी कोई

निश्चित व्यवस्था थी। आपने अपनी रचनाओं के द्वारा हिन्दी-गद्य साहित्य को एक नवीन स्वरूप प्रदान किया। उपन्यासों और नाटकों के लिखने की प्रथा भी आप ही ने हिन्दी-साहित्य में चलाई। आपने कई पुस्तकें लिखी हैं, तथा कई पुस्तकों का अनुवाद भी किया है। सुधारवादी होने के कारण आपने कई संस्थायें भी स्थापित की थीं।

शैली:—आपकी भाषा अधिक परिमार्जित और परिष्कृत है। आपकी भाषा में न तो उर्दू के तत्सम शब्द अधिक पाये जाते हैं; और न संस्कृत के। आपने इन दोनों की मध्य की शैली का प्रयोग किया है। इसी से आप की रचनाओं में उर्दू के तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक नहीं मिलता। अरबी-फ़ारसी के जिन शब्दों का प्रयोग आपने किया है, वे बहुत चलताऊ हैं। आपने संस्कृत शब्दों के तद्भव रूपों का बड़ी सुन्दरता के साथ प्रयोग किया है। संक्षिप्त रूप में आपकी शैली अधिक व्यावहारिक और मधुर है। लोकोक्तियों और मुहाविरों के प्रयोग ने उसे अधिक ओजस्विनी बना दिया है।

रचनाएँ:—काव्य १ प्रेम फुलवारी, २ प्रेम माधुरी। नाटक—३ मुद्रा-राक्षस, ४ सत्य हरिश्चन्द्र, ५ नीलदेवी, ६ अन्धेर नगरी, ७ चन्द्रावली, ८ भारत दुर्दशा आदि।

[स्थान—राजा हरिश्चन्द्र का राज-भवन]

(रानी शैव्या बैठी हैं और एक सहेली बगल में खड़ी है)

रा०—अरी! आज मैंने ऐसे बुरे-बुरे सपने देखे हैं कि जब से सो के उठी हूँ कलेजा काँप रहा है। भगवान कुशल करें।

स०—महाराज के पुण्य प्रताप से सब कुशल ही होगा, आप कुछ चिन्ता न करें। भला क्या सपना देखा है? मैं भी सुनूँ।

रा०—महाराज को तो मैंने सारे अंग में भस्म लगाये देखा है और अपने को बाल खोले, और (आँख में आँसू भर कर) रोहिताश्व को देखा है कि उसे साँप काट गया है।

स०—राम! राम! भगवान सब कुशल करेगा। भगवान करे रोहिताश्व जुग-जुग जिए और जब तक गंगा जमुना में पानी है

आपका सोहाग अचल रहे। भला आपने इसकी शान्ति का भी कुछ उपाय किया है।

रा०—हाँ, गुरु जी से सब समाचार कहला भेजा है, देखो वह क्या करते हैं।

स०—हे भगवान! हमारे महाराज, महारानी, कुँवर सब कुशल से रहैं; मैं आँचल पसार के यह वरदान माँगती हूँ।

(ब्राह्मण आता है)

ब्रा०—(आशीर्वाद देता है)।

रा०—(हाथ जोड़ कर प्रणाम करती है)।

ब्रा०—महारानी! गुरु जी ने यह अभिमन्त्रित जल भेजा है; महारानी पहिले तो नेत्रों से लगा लें और फिर थोड़ा सा पान भी कर लें और यह रक्षाबन्धन भेजा है इसे कुमार रोहिताश्व की दाहिनी भुजा पर बाँध दें, फिर इस जल से मैं मार्जन करूँगा।

रा०—(नेत्र में जल लगा कर और कुछ मुँह फेर कर आचमन करके) मालती! यह रक्षाबन्धन तू सम्हाल के अपने पास रख, जब रोहिताश्व मिले उसके दाहिने हाथ पर बाँध दीजियो।

स०—जो आज्ञा (रक्षाबन्धन अपने पास रखती है)।

ब्रा०—तो अब आप सावधान हो जायँ, मैं मार्जन कर लूँ।

रा०—(सावधान होकर) जो आज्ञा।

ब्रा०—(दूर्वा से मार्जन करता है। मार्जन करके फूल अक्षत रानी के हाथ में देता है)।

रा०—(हाथ जोड़ कर ब्राह्मण को दक्षिणा देती है) महाराज, गुरु जी से मेरी ओर से विनती करके दण्डवत कह दीजियेगा।

ब्रा०—जो आज्ञा (आशीर्वाद देकर जाता है।)

रा०—आज महाराज अब तक सभा में नहीं आये?

स०—अब आते होंगे; पूजा में कुछ देर लगी होगी।

(नेपथ्य में बैतालिक गाते हैं)

प्रकटहु रवि-कुल-रवि निसि बीती, प्रजा-कमल-गन फूले।
मन्द परे रिपुगन तारा सम, जन-भय-तम उनमूले॥

नसे चोर लम्पट खल लखि जग, तुव प्रताप प्रगटायो।
मागध बन्दी सूत चिरैयन, मिलि कल रोर मचायो॥
तुव जस सीत पौन परसि, चटकी गुलाब की कलियाँ।
अति सुख पाइ असीस देत सोइ, करि अंगुरिन चट अलियाँ॥
भए धरम में थित सब द्विज जन, प्रजा काज निज लागे।
रिपु-जुवती-मुख-कुमुद मन्द जन, चक्रवाक अनुरागे॥
अरघ सरिस उपहार लिये नृप, ठाढ़े तिन कहँ पोखो।
न्याय कृपा सों ऊँच नीच सम, समुझि परसि कर तोखो॥

(नेपथ्य में से बाजे की धुनि सुन पड़ती है)

रा०—महाराज ठाकुर जी के मन्दिर से चले, देखो बाजों का शब्द सुनाई देता है और बन्दी लोग भी गाते आते हैं।

स०—आप कहती हैं चले? वह देखिये आ पहुँचे, कि चले?

रा०—(घबड़ा कर आदर के हेतु उठती है)

(परिकर सहित महाराज हरिश्चन्द्र आते हैं)

(रानी प्रणाम करती है और सब लोग यथास्थान बैठते हैं)

ह०—(रानी से प्रीतिपूर्वक) प्रिये! आज तुम्हारा मुखचन्द्र मलीन क्यों हो रहा है?

रा०—पिछली रात मैंने कुछ दुःस्वप्न ऐसे देखे हैं जिनसे चित्त व्याकुल हो रहा है।

ह०—प्रिये यद्यपि स्त्रियों का स्वभाव सहज ही भीरु होता है पर तुम तो वीर-कन्या, वीर-पत्नी और वीर-माता हो, तुम्हारा स्वभाव ऐसा क्यों?

रा०—नाथ! मोह से धीरज जाता रहता है।

ह०—तो गुरु जी से शान्ति करने को नहीं कहलाया?

रा०—महाराज! शान्ति तो गुरु जी ने कर दी है।

ह०—तब क्या चिन्ता है? शास्त्र और ईश्वर पर विश्वास रक्खो। सब कल्याण होगा। सर्वदा सहज मंगल साधन करते भी जो आपत्ति आ पड़े तो उसे निरी ईश्वर की इच्छा ही समझ के सन्तोष करना चाहिये।

रा०—महाराज ! स्वप्न के शुभाशुभ का विचार कुछ महाराज ने ग्रन्थों में देखा है ?

ह०—(रानी की बात अनसुनी करके) स्वप्न तो कुछ हमने भी देखा है। (चिन्ता पूर्वक स्मरण करके) हाँ यह देखा है कि एक क्रोधी ब्राह्मण विद्या साधन करने को सब दिव्य महाविद्याओं को खींचता है और जब मैं स्त्री जान कर उनको बचाने गया हूँ तो वह मुझसे रुष्ट हो गया है और फिर जब बड़े विनय से मैंने उसे मनाया है तो उसने मुझसे मेरा सारा राज्य माँगा है। मैंने उसे प्रसन्न करने को अपना सब राज्य दे दिया।

(इतना कहकर अत्यन्त व्याकुल हो जाता है)

रा०—नाथ ! आप एक साथ ऐसे व्याकुल क्यों हो गये ?

ह०—मैं यह सोचता हूँ कि अब मैं उस ब्राह्मण को कहाँ पाऊँगा, और बिना उसकी थाती उसे सौंपे भोजन कैसे करूँगा ?

रा०—नाथ ! क्या स्वप्न के व्यवहार को भी आप सत्य मानियेगा ?

ह०—प्रिये ! हरिश्चन्द्र की अर्द्धाङ्गिनी होकर तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है। हा ! भला तुम ऐसी बात मुँह से निकालती हो ! स्वप्न किसने देखा है ? मैंने न ? फिर क्या ? दिया सो दिया, क्या स्वप्न में क्या प्रत्यक्ष ?

रा०—(हाथ जोड़ कर) नाथ ! क्षमा कीजिये, स्त्री की बुद्धि कितनी ?

ह०—(चिन्ता करके) पर मैं अब करूँ क्या, अच्छा ! प्रधानमंत्री ! नगर में डोंड़ी पिटवा दो कि राज्य के सब लोग आज से इसे अज्ञातनाम गोत्र ब्राह्मण का समझें; उसके अभाव में हरिश्चन्द्र उसके सेवक की भाँति उसकी थाती समझ के राज-कार्य्य करेगा और दो मुहर राज काज के हेतु बनवा लो, एक पर "अज्ञातनाम गोत्र ब्राह्मण महाराज का सेवक हरिश्चन्द्र" और दूसरे पर "राजाधिराज अज्ञातनाम-गोत्र-ब्राह्मण महाराज" खुदा रहे और आज से राज काज के सब पत्रों पर भी यही नाम रहे। देश के राजाओं और बड़े-बड़े कार्य्याधीशों को भी आज्ञापत्र

भेज दो कि महाराज हरिश्चन्द्र ने स्वप्न में अज्ञात-नाम-गोत्र ब्राह्मण को पृथ्वी दी है इससे आज से उसका राज हरिश्चन्द्र मंत्री की भाँति सम्हालेगा।

(द्वारपाल आता है)

द्वा०—महाराजाधिराज ! एक बड़ा क्रोधी ब्राह्मण द्वार पर खड़ा है और व्यर्थ हम लोगों को गाली देता है।

ह०—(घबड़ा कर) अभी आदरपूर्वक ले आओ।

द्वा०—जो आज्ञा (जाता है)।

ह०—यदि ईश्वरेच्छा से यह वही ब्राह्मण हो तो बड़ी बात है।

(द्वारपाल के साथ विश्वामित्र आते हैं)

ह०—(आदरपूर्वक आगे से लेकर और प्रणाम करके) महाराज पधारिए, यह आसन है।

वि०—बैठे। बैठ चुके, बोल अभी तू ने मुझे पहिचाना कि नहीं ?

ह०—(घबड़ा कर) महाराज ! पूर्व परिचित तो आप ज्ञात होते हैं।

वि०—(क्रोध से) सच है रे क्षत्रियाधम ! तू काहे को पहिचानेगा, सच है रे सूर्य्यकुलकलंक ! तू क्यों पहिचानेगा, धिक्कार तेरे मिथ्या-धर्म्माभिमान को, ऐसे ही लोग पृथ्वी को अपने बोझ से दबाते हैं। अरे दुष्ट ! तू भूल गया, कल पृथ्वी किसको दान दी थी ? जानता नहीं कि मैं कौन हूँ ?

ह०—(पैरों पर गिर कर बड़े विनय से) महाराज ! भला आपको त्रैलोक्य में ऐसा कौन है जो न जानेगा !

वि०—(क्रोध से) सच है रे पाप-पाखंड मिथ्यादान वीर ! तूने कल सारी पृथ्वी दान दी है, ठहर ठहर देख इस झूठ का कैसे फल भोगता है। हा ! इसे देख कर क्रोध से जैसे मेरी दाहिनी भुजा शाप देने को उठती है वैसे ही जाति-स्मरण के संस्कार से बाईं भुजा फिर से कृपाण ग्रहण किया चाहती है (अत्यन्त क्रोध से लम्बी साँस लेकर और बाँह उठा कर) अरे ब्रह्मा ! सम्हाल अपनी सृष्टि को, नहीं तो परम तेज पुञ्ज दीर्घ तपोवर्द्धित मेरे इस असह्य क्रोध से आज सारा संसार नाश हो जावेगा, अथवा

संसार के नाश ही से क्या ? ब्रह्मा का तो गर्व उसी दिन चूर्ण किया जिस दिन दूसरी सृष्टि बनाई, आज इस राज कुलांगार का अभिमान चूर्ण करूँगा जो मिथ्या अहंकार के बल से जगत् में दानी प्रसिद्ध हो रहा है।

ह०—(पैरों पर गिर के) महाराज ! क्षमा कीजिये, मैंने इस बुद्धि से नहीं कहा था, सारी पृथ्वी आपकी, मैं आपका, भला आप ऐसी क्षुद्र बात मुँह से निकालते हैं ! आप बारम्बार मुझे झूठा न कहिये, सुनिए, मेरी यह प्रतिज्ञा है :—

"चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत ब्योहार।
पै दृढ़ श्री हरिचन्द को, टरै न सत्य विचार॥"

वि०—(क्रोध और अनादर पूर्वक हँस कर) ह ह ह ह ! सच है ! सच है रे मूढ़ ! क्यों नहीं आखिर सूर्यवंशी है। तो दे हमारी पृथ्वी।

ह०—लीजिये, इसमें विलम्ब क्या है, मैंने तो आपके आगमन के पूर्व ही से अपना अधिकार छोड़ दिया है। (पृथ्वी की ओर देख कर)

जेहि पाली इक्ष्वाकु सों, अबलौं रवि-कुल राज।
ताहि देत हरिचन्द्र नृप, विश्वामित्रहिं आज॥
बसुधे ! तुम बहु सुख कियो, मम पुरुषन की होय।
धरम बद्ध हरिचन्द्र को, छमहु सु परवस जोय॥

वि०—(आप ही आप) अच्छा ! अभी अभिमान दिखा ले। जो तुझको सत्य-भ्रष्ट करके छोड़ा तो मेरा नाम विश्वामित्र। और लक्ष्मी से तो हो ही चुका है। (प्रकट) स्वस्ति, अब इस महदान की दक्षिणा कहाँ है ?

ह०—महाराज ! जो आज्ञा हो वह दक्षिणा अभी आती है।

वि०—भला सहस्र स्वर्णमुद्रा से कम इतने बड़े दान की दक्षिणा क्या होगी ?

ह०—जो आज्ञा (मंत्री से) मंत्री ! हज़ार स्वर्ण-मुद्रा अभी लाओ।

वि०—(क्रोध से) "मंत्री ! हज़ार स्वर्ण-मुद्रा अभी लाओ !" मंत्री कहाँ से लावेगा ? क्या अब खजाना तेरा है। झूठा कहीं का, देना ही नहीं था तो मुँह से कहा क्यों ? चल मैं नहीं लेता ऐसे मनुष्य की दक्षिणा।

ह०—(हाथ जोड़ कर विनय से) महाराज ठीक है। खज़ाना अब सब आपका है, मैं भूला; क्षमा कीजिये। क्या हुआ खजाना नहीं है तो, मेरा शरीर तो है।

वि०—एक महीने में जो मुझे दक्षिणा न मिलेगी तो मैं तुझ पर कठिन ब्रह्मदण्ड गिराऊँगा, देख केवल एक मास की अवधि है।

ह०—महाराज ! मैं ब्रह्मदण्ड से इतना नहीं डरता जितना सत्य दण्ड से। इससे :—

बेचि देह दारा सुअन, होइ दास हू मन्द ।
रखिहहि निज वच सत्य करि, अभिमानी हरिश्चन्द ॥

(आकाश से फूलों की वृष्टि और बाजे के साथ जयध्वनि होती है)

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) अर्थ बताओः—भस्म, अभिमंत्रित, मार्जन, उनमूले, बन्दी, दुःस्वप्न, अर्द्धाङ्गिनी, अज्ञात, परिचित, मिथ्या, स्मरण, संस्कार, पुंज, तपोवर्द्धित, स्वर्णमुद्रा।

(ख) अर्थान्तर की व्याख्या करो :—प्रताप—ताप, मार्जन—जन, असीस—सीस, सरिस—रिस, व्याकुल—कुल, प्रसिद्ध—सिद्ध, आगमन—गगन।

(ग) तत्सम रूप लिखोः—जुग, आँचल, पौन, अरघ, व्योहार, धरम।

२—भाषा सम्बन्धी—

(घ) भारतेन्दु बाबू किस शैली के पक्षपाती थे ? क्या उसका विकास उनके इस लेख में पाया जाता है ?

(ङ) तुम यह कैसे प्रमाणित कर सकते हो, कि भारतेन्दु बाबू वर्तमान हिन्दी गद्य-साहित्य के जन्म-दाता हैं।

(च) इस पाठ में आने वाले उर्दू शब्दों को हिन्दी में रूपान्तरित करो।

(छ) निम्न अवतरणों के भावार्थ स्पष्ट करो :—

(अ) प्रगटहु………त खो।

(ब) सच है रे……… दबाते हैं।

३—विचार सम्बन्धी—

(ज) इस लेख का सारांश अपनी भाषा में लिखो।

(झ) महाराज हरिश्चन्द्र की किस सत्यवादिता का इस लेख में चित्रण किया गया है?

(ञ) नाटक की परिभाषा पर विचार करते हुए यह बताओ, कि इस नाट्य अंश में कहाँ तक नाटकीय कला का विकास हुआ है?

(ट) इस नाट्य अंश को कहानी के रूप में परिणत करो।

(ठ) भारतेन्दु बाबू के द्वारा हिन्दी-साहित्य का जो कल्याण हुआ हो, उसका उल्लेख करो।

(ड) संक्षिप्त परिचय दो:—शैव्या, रोहिताश्व, विश्वामित्र।

४—व्याकरण सम्बन्धी—

(ढ) सविग्रह समास बताओ :—रवि कुल-रवि, प्रजा-कमल-गन, रिपु-जुवती-मुख-कुमुद, वीर-माता, शुभाशुभ, कार्याधीश, क्षत्रियाधम, सूर्य कुल-कलंक, धर्माभिमान।

(ण) उपसर्ग लगा कर नवीन शब्द बनाओ:—ताप, मंत्रित, मार्जन, शान्त, स्वप्न।

(त) पदव्याख्या करो:—विश्वामित्र आते हैं, यह आसन है, हमारी पृथ्वी।

(थ) वाक्य-विश्लेषण करो:—

(द) सदा सहज………सन्तोष करना चाहिए।

(ध) मैं यह सोचता हूँ………भोजन कैसे करूँगा?

११—पैने छुरे

[लेखक—श्रीयुत पं० श्रीराम शर्मा]

वंश—ब्राह्मण

निवासस्थान—किरथरा, ज़िला मैनपुरी

परिचय—आप बड़े साहसी और सुयोग्य लेखक हैं। शिकारी जीवन से आपको अत्यन्त प्रेम है। जब आपकी अवस्था दस-बारह वर्ष की थी, तभी आपने एक अंधकार पूर्ण कुएँ में प्रवेश करके एक भयंकर साँप का मुक़ाबिला किया था। आपको पर्यटन से अधिक प्रेम है। आप न जाने कितने जंगलों में घूमे हैं, और न जाने कितने वनों की आपने यात्रा की है। हिमालय पर्वत पर भी आपने ख़ूब परिभ्रमण किया है। वन के पशु-पक्षियों का परिचय प्राप्त करना आपके जीवन का एक मुख्य ध्येय-सा हो गया है।

कार्य—हिन्दी में शिकार साहित्य के निर्माण कर्त्ता पं० श्रीराम शर्मा ही हैं। आप ही ने अपने लेखों के द्वारा हिन्दी-जनता का ध्यान शिकार-साहित्य की ओर आकर्षित किया इस विषय पर आपके सैकड़ों सुन्दर और भाव-पूर्ण लेख प्रकाशित हो चुके हैं। स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा आपके शिकार सम्बन्धी लेखों की मुक्त कंठ से प्रशंसा किया करते थे। आपने कृषि-विज्ञान पर भी बहुत से नवीन प्रयोग किये हैं।

शैली—आपकी शैली बड़ी सजीव और ओजस्विनी है। भाषा का कवित्वमय सुन्दर प्रवाह अपने आप चित्त को आकर्षित कर लेता है। वर्णन शैली अनूठी और ज़ोरदार है। आप अपनी शैली के हिन्दी-साहित्य में एक लेखक हैं। आप विषयों का प्रतिपादन करके उनका एक चित्र सा खड़ा कर देते हैं। हिन्दी के सुप्रसिद्ध समालोचक स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा आपकी शैली की अत्यन्त प्रशंसा किया करते थे। उन्हीं के शब्दों में आप की वर्णन-शैली बड़ी सजीव, भाव-विश्लेषण मनोविज्ञान-सम्मत और भाषा विषय के अनुरूप बड़ी सुघड़ होती है।

रचनाएँः—१ बोलती प्रतिमा, २ शिकार।

जीवन से हाथ धोने को तैयार रहना साहस की कसौटी है, और साहस जीवन-गृह का एक स्तम्भ है। जिस शिकार में जीवन जाने की आशंका नहीं, वह ऐसा है, मानो ब्रह्म रहित उपनिषद्-पाठ अथवा गृहिणी के बिना गृहस्थ। मैं ऐसा ही महसूस करता हूँ। अन्य शिकारियों की यह राय नहीं है। अनेक को तो तीतर, बटेर और क्रौंच के शिकार में भी आनन्द आता है। मेरे ख़याल से—जो ग़लत हो सकता है—शिकार और जोखिम में पुरुष और प्रकृति का-सा सम्बन्ध है। शिव प्रकृति बिना—इकार बिना—कोरे शव रह जाते हैं, और शिकार जोखिम के बिना—कम-से-कम मेरे लिए विकार है। हाँ, परिश्रम और उत्तेजना की मात्रा जोखिम हीन शिकार में कुछ आकर्षण उत्पन्न करती है—और ऐसे शिकार में स्वार्थ की भावना उत्तेजना को और भी आकर्षक बना देती है। हिरन मारे जाते हैं अपने मीठे मांस की ख़ातिर नहीं, वरन उस चर्म के लिए, जिससे परमात्मा ने उनकी देह को ढका है और जिसपर बैठकर लोग धारणा, ध्यान और समाधि की ओर प्रवृत्त होते हैं। सींग और खाल का लालच, घूमघाम और प्रकृति-दर्शन ने न मालूम कितनी बार मुझसे उनका अन्त कराया है। सीताजी के आग्रह से राम 'परम रुचिर मृग' के पीछे दौड़े थे, और यह महापातकी 'राम' नामधारी भी मगर की खाल के लालच से-वह भी अपने लिए नहीं, मित्रों के लिए—और भ्रमण-प्रवृत्ति के कारण गंगा, काली और यमुना की ओर दौड़ा करता है। कभी-कभी मन में द्वन्द्व होता है कि किसी और प्रकार मन बहला लें। चिन्ता और विपत्तियाँ साथ छोड़ने वाली नहीं। वे चिरसहचरी हैं। तू रोता हुआ पैदा हुआ और शायद रोता ही महायात्रा करेगा। तू ही उनका साथ छोड़। शिकार के क्षणिक नशे में उन्हें भूलेगा, तो फिर खुमार में उनकी वेदना अतिविषम होगी; पर वर्ष में एकबार—अधिक नहीं—उधर जाता हूँ। अपने वश की बात नहीं है। क्या करूँ ?

"फिरता हूँ फेरता है वह परदानशीं जिधर,
पुतली की तरह मैं नहीं कुछ अख़्तियार में।"

\+ \+ \+ \+

पूस मास के अन्तिम दिनों की बात है। मगर के शिकार के लिए यमुना के किनारे गया हुआ था। नदी-तट से ठहरने का स्थान एक मील बीहड़ में था। ठहरने के स्थान से सात-आठ मील की दूरी पर एक दिन घंटों की तपस्या और कठिनाई से दो मगर मारे। खाल निकलवाने में देर हो गई, इसलिए, मार्ग छोड़ कर ऊबड़-खाबड़ नालों (Ravines) में होकर हम लोग पड़ाव की ओर चले। दो-तीन मील गये होंगे कि रक्त वर्ण कम्पित सूर्य ने क्षितिज की चादर में अपना मुँह ढक लिया और श्यामा रात की परिचारिका गोधूलि ने प्रकृति को अपनी स्वामिनी के आगमन का संवाद दिया। चारों ओर से मानो साम्राज्ञी रात की दुन्दुभी बजने लगी। दिनचर इधर-उधर दौड़ रहे थे। प्रकाश की सत्ता पलट गई थी। हम लोग लपके चले जाते थे। अभी साम्राज्ञी रात का श्याम अंचल दृष्टिगोचर नहीं हुआ था। सूर्य डूब चुका था। पर दिग्दर्शन के लिए उजाला काफ़ी था। नील गाय के झुंड चरने के लिए डाँड़ों पर आ रहे थे। खरगोश हमारी आहट से बिदक कर और भाग कर कुछ दूर खड़े हो जाते। तीतर झाड़ियों में जा चुके थे। टंड बढ़ रही थी। रायफल में चार थे कारतूस भरे मैं सैनिक-वेष में खटाखट चला जा रहा था। शिकार का कोई खयाल न था, जो बिना आहट किये लुक-छिप कर चलता। मैं तो चाहता था कि पर लग जाते, तो उड़ जाता और पड़ाव पर जाकर मगर की खालों में नमक लगवा कर, रायफल को साफ कर, दस-बारह रोटियाँ पेट में डालता; पर कल्पना के परों से शरीर में पर थोड़े ही लग सकते थे। भूख और थकावट में गपशप भी अच्छी नहीं लगती थी और न बात करने की तबीयत ही होती थी। चमार खाल लादे पीछे-पीछे आ रहा था। पीछे मुड़ कर उसको देखने से ही वह मेरा अभिप्राय समझ जाता था; पर मेरी चाल को एक तो वह वैसे ही नहीं पा सकता था और तिसपर वह लदा भी था। थोड़ी दूर आगे गये कि एक लम्बा-चौड़ा डाँड़ा मिला। उसकी बग़ल की ओर को नीचे मैदान था। उसके एक कोने में कुछ खेत थे। चमार ने कहा—" पंडिज्जी,

ईख को खेतु ऐ । खाउ तो बालंग है कैं निकच्चवौ । एकादु तोल्लीओ।"

मैं—"ठीक कहा। दो-एक खेत का ही तो चक्कर पड़ेगा। भूख से दम भी निकला जाता है। चलो, पूरब की ओर से चलना ठीक होगा।

यह कह कर हम लोग नीचे को उतरे। जौ के पौदे ओस की मणिमाला पहने रात के शुभागमन के लिए खड़े थे। सरसों के पौदे झुके हुए कोरनिश-सी बजा रहे थे! खेत को मेंड़ से पार किया, तो बीच में नाला दिखाई पड़ा। उस नाले से दो-तीन फ़र्लांग पार करके पूर्व से पश्चिम को डाँड़ के आगे ईख का खेत था। नाला पश्चिम से पूर्व को टेढ़ा-मेढ़ा बहा था, मानो वह मैदान की करधनी हो। नाले के पास पहुँचा ही था कि चमार बोला—"अरे पंडित जी बु देखौ, कितनौ जैयदु (बड़ा) सूअर जाई ओरकुँ आइ रहौ ऐ!"

हक्का-बक्का होकर मैंने देखा, तो मुझसे सौ गज़ आगे एक बहुत बड़ा सूअर मस्त दुलकी चाल से—कर्ण मार्ग से—पश्चिम की ओर से पूर्व को जा रहा था। ओ हो, कितना बड़ा था और उसमें कितनी चर्बी थी! उसकी बड़ी-बड़ी काँपें (Tusks) साफ़ बाहर दिखाई देती थीं, मानो बादल में आधे दबे हुए दो द्वितीया के चाँद मुँह में दबाये जा रहा हो। उसने हमारी उपेक्षा की। सायंकाल के समय अपने भोजन के लिए निकला था। फिर दो-चार आदमियों की वह क्या परवा करता! उसकी काँपें कम्प उत्पन्न करती थीं। बड़े सूअर पर शेर भी सामने से वार नहीं करता। उसकी टक्कर को शेर सह नहीं सकता, पर शेर और बाघ इतने फुर्तीले और चालाक होते हैं कि अपने ऊपर सूअर की चोट होने नहीं देते। जंगल में जब कभी सूअर और शेर-बाघ का सामना हो जाता है, तो सूअर झाड़ी या चट्टान की ओर पिछाई करके खड़ा हो जाता है और क्षत्रियों की भाँति छाती खोलकर डट जाता है। शेर या बाघ ऐसी अवस्था में सूअर पर वार नहीं करते, और, उसको बहका या भगाकर पीछे से उस पर टूट पड़ते हैं।

इतने बड़े सूअर को देखकर मेरा उत्साह जागृत हो उठा, मानो बुझते हुए कोयलों में किसी ने फूँक मारी हो। भूख तो जाने कहाँ चली गई। रायफ़ल को कन्धे से झट उतार बोल्ट से नाल में कारतूस पहुँचाया। खड़ाखड़ की ध्वनि से सूअर ने मेरी ओर मुड़कर देखा, मानो अपनी काँपों की शक्ति की चेतावनी दी हो। वह तनिक रुका और फिर कुछ तेज़ होकर नाले में चला गया। मैंने उसकी अगाई काटने के लिए दो आदमियों को उधर भेजा। नाला टेढ़ा-मेढ़ा था, इसलिए आदमी भाग कर सीधे सूअर के मार्ग के आगे पहुँचे। मैं नाले के ऊपर इस ख़याल से खड़ा था कि सूअर लौट कर नाला-ही-नाला मेरी ओर आयगा। नाले की गहराई केवल डेढ़ गज़ होगी, इसलिए सूअर को ऊपर चढ़ना कोई कठिन न था। मैंने तो मोर्चा जमा दिया था। पचास गज़ के निशाने की दूरी लगा कर रायफ़ल साधे बैठा था और द्वितीया के चन्द्राकार काँपवाले बाराह के आगमन की प्रतीक्षा में था। भीतर-ही-भीतर यह भी आशंका थी कि कहीं गोली ठीक न लगी, तो चीरकर टुकड़े-टुकड़े कर देगा; पर बाज़ी लगा चुका था। इतना बड़ा सूअर ढूँढ़ने से भी नहीं मिलता। न मालूम निरामिष भोजी उस सूअर ने कहाँ के कंद-मूल खाये थे। वह शायद इक्कड़ था। हाथी जैसे मस्त होकर इक्कड़ हो जाता है, और जिसे पा लेता है उसे समाप्त करके ही छोड़ता है, उसी प्रकार सूअर भी इक्कड़ होता है, और अन्य सूअर उससे घबराते हैं। बुड्ढा होकर भी वह एकान्तवासी हो जाता है। अब तो मेरी उससे ठन गई थी। थोड़ी ही देर में क्या देखता हूँ कि एक भारी काली-सी शिला खेत में होकर भागी जा रही है। वह सूअर था। नाले-नाले न आकर वह अपने उसी रास्ते से लौट पड़ा, जिससे आया था। आगे आदमियों का खटका समझ वह लौटा था। उसे खेत में जाते देख, टोप एक ओर को फेंक, मैं खड़ा हो गया। सूअर एकदम ऐसे रुका, मानो मोटर में कोई एकदम ब्रेक लगा दे। मेरी ओर कान किये हुए वह खड़ा हो गया। आँखें स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ती थीं, पर वे द्वितीया के चाँद-रूपी उसके अस्त्र स्पष्ट दिखाई पड़ रहे थे।

उसकी आकृति से प्रतीत होता था, मानो कह रहा हो—ऐ मूर्ख अपना रास्ता देख। छेड़खानी करेगा, तो करे का फल पायेगा।" पर मैं तो अपनी रैमिंगटन रायफ़ल के बूते पर उससे उलझने को तैयार था। कहीं २२० ग्रेन की गोली काँख में जम जाय, तो भीत-सी गिर पड़े—यह खयाल करते हुए और 'पीप साइट' में से सँभालकर (क्योंकि अँधेरा था और अँधेरे में 'पीप साइट' ठीक काम नहीं करती), निशाना लेकर गोली दाग़ दी। घुर्र और कीं करके सूअर भागा। बड़े आश्चर्य की बात हुई, जो वह सीधा मेरी ख़बर लेने नहीं आया। केवल तीस-चालीस गज़ की ही दूरी पर तो था। उधर नज़र जो डाली, तो सूअर की एक अगली टाँग ही नदारद थी! गोली तनिक नीचे पड़ी। दो-तीन इञ्च ऊँची पड़ती, तो बाबा की भीत बैठ जाती।

सूअर बीहड़ की ओर भागा, और हम लोगों ने उसका पीछा किया। अनुमान से एक घनी झाड़ी के पास आये, तो कराहने का शब्द सुनाई पड़ा। शब्द से प्रतीत होता था कि मौत के कीटाणु उसके शरीर में प्रवेश कर चुके हैं। हमने छेड़ख़ानी करना उचित न समझा और अगले दिन वहाँ आने का निश्चय किया। जान-बूझकर आग में कूदना मूर्खता है; पर शिकार-उत्तेजना में लोग मूर्ख बन ही जाते हैं। उस दिन मैंने सीमा का उल्लंघन नहीं किया। उत्साह और आश्चर्य की तरंगों में मेरा मन बह रहा था। प्रसन्नता और आनन्द विशेष कर शिकार के आनन्द—का मार्ग वाह्य होता है। वह गलित कोढ़ के समान फूट-फूट कर प्रकट होता है। अपने भाग्य को सराहता हुआ कि इतना बढ़िया सूअर अनायास ही मिल गया, मैं चला जाता था। प्रातःकाल के लिए लम्बे-चौड़े मंसूबे बाँधने लगा कि सूअर मरा मिलेगा। अफ़सोस! कैमरा नहीं, जो उसका फ़ोटो लिया जाता; पर अन्तरिक्ष में विधाता हँस रहा था।

× × ×

सूर्योदय होते-होते हम लोग वहाँ पहुँच गये। साथ में गाँव के दो कुत्ते भी लेते गए, ताकि आवश्यकता पड़ने पर वे सूअर को झाड़ी से निकाल सकें या भागने पर उसे रोक सकें; पर यह सब कुछ तो

सावधानी के लिए था। आशा तो यह थी कि सूअर मरा मिलेगा। कई आदमी साथ थे और गाँव के कुत्ते भी, इसलिए, चुपचाप वहाँ न पहुँच सके। वहाँ जाकर देखा, तो झाड़ी में निस्तब्धता थी। जिधर से सूअर उसमें घुसा था, उधर खून की धार थी। खून ताज़ा न था। खयाल किया कि सूअर मरा पड़ा होगा। मैंने ऊपर से एक बड़ा ढेला फेंका, तो झाड़ी में कोई खड़खड़ाहट न हुई; पर जैसे ही दूसरा ढेला मारा कि घुर्र करता हुआ, सूअर निकल भागा। उसके निकलते ही गाँव वालों ने हो-हा मचाई। कुत्तों को प्रोत्साहन हुआ और तीन टाँग वाले घायल सूअर को उन्होंने बात की बात में जा पकड़ा। एक ने तो पीछे से हमला किया, दूसरे ने उसकी अगाड़ी रोकनी चाही। रायफ़ल या बन्दूक़ चलाने का अवसर लोगों ने न दिया। लाठी और बल्लम लेकर उस ओर को पिल पड़े। वे कुत्ते बड़े लागू कहे जाते थे। उन्होंने अनेक सूअरों को पछाड़ा था, पर इतने बड़े सूअर का उन्हें अनुभव न था। अनुभव ही होता तो क्या! पशुवृत्ति में समझ और अनुभव का काम थोड़े ही होता है। आगे वाले कुत्ते ने ज्यों ही सूअर की अगाड़ी से जाकर उसकी बग़ल में मुँह मारना चाहा कि सूअर ने मुड़कर कुत्ते को मुँह में दबा लिया और सेकेंडों में कच-कच करके कुत्ते को मार दिया। उस कुत्ते का चीत्कार सुनकर दूसरा कुत्ता हतोत्साह हो गया और दूर जाकर भोंकने लगा। फिर आदमियों से भी आगे नहीं बढ़ा गया। प्रोत्साहन में एक बिजली होती है, जो लँगड़े लूले को भी कर्मण्य बना देती है। हार और पतन में अकर्मण्यता का वास है। पीछे वाले कुत्ते ने अपने साथी का पतन देखा और ह्रास और अकर्मण्यता ने प्रोत्साहन की बिजली के 'स्विच' को बन्द कर दिया। कुत्ते के चीत्कार और उसके पतन से ह्रास और भय के परमाणु उसके कान और आँखों के मार्ग से प्रवेश कर गये। शक्ति क्षीण हो गई। सोच-विचार से वह पीछे नहीं हटा था। सोच-विचार का काम तो आदमी का है, और मानव-समाज में भी विपत्ति में विरले ही साथ देते हैं। विपत्ति वह भयंकर शीत है कि जिसमें सहानुभूति रूपी उष्णता ठिठुर जाती है—मृतक के समान हो जाती है। सूअर की विकराल काँपें और उसकी

अपूर्व शक्ति देखकर हम लोग भी सहम गये। कुत्ते के प्रति उनकी पूर्व संचित सहानुभूति भी ठिठुर गई। उधर सूअर के रौद्ररूप ने उन्हें सहमा दिया। कुत्ते को कराहता छोड़ सूअर आगे भागा। लोग उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। मैं कुत्ते के पास आया। उसकी आँखों में अब भी ज्योति थी। अन्तिम प्राण-वेदना हो रही थी। उसका भीतर वाला बलपूर्वक निकाला जा रहा था। जिस घर में उसका वास था, उसका अन्त सूअर ने अपने छुरों से कर दिया था। वह मर चुका था; पर उसमें जीवन प्रतीत होता था। जीवन की गन्ध तो थी ही। फूल सूख जाता है; पर गन्ध शेष रह जाती है। रस्सी जल जाती है; पर उसका टेढ़ापन क़ायम रहता है। कुत्ते के शरीर का निवासी यात्रा कर चुका था; पर उसके पदचिन्ह शेष थे। कुत्ता शरीर का स्वामी न था; पर उसका वस्त्र पड़ा रह गया। मैंने उसके मुँह में ब्रांडी डाली; पर अग्नि होती, तो आहुति का धुआँ निकलता। उसको छोड़ मैं भी सूअर के पीछे लगा। दौड़ कर मैंने लोगों को पकड़ा और उनसे कहा कि वे मुझसे एक फ़र्लाङ्ग पीछे चलें, ताकि मैं सूअर को मार सकूँ। भभ्भड़ में सूअर भी हाथ न आयेगा और किसी आदमी की जान भी चली जायगी। लोग पीछे रुक तो गये; पर अनिच्छा से ठीक वैसे, जैसे अध्यापक के रोब के कारण लड़के तमाशा देखने जाने से रुक जाते हों। पीछे जब हो-हल्ला कम हुआ, तो मैं भी धीमा पड़ गया और सूअर की खोज पर चलने लगा। खोज लगाने के लिए मैंने भीड़ में से एक खोजी को भी साथ ले लिया।

शिकार का सबसे बड़ा आनन्द और शिकार की एक मुख्य कला है खोज लगाना। खोज लगाना साधारण बात नहीं है। बड़े अनुभव का काम है। जहाँ एक से ही ताज़े खोज हों और ख़ून भी न हो, वहाँ पर खोज का लगाना बड़ा कठिन है। सूअर, पता नहीं, किस ओर गया था; पर हम लोग झुके हुए, उसकी खोज ढूँढ़ते हुए, और उन्हीं पर, चले जाते थे। पथरीली और चटकीली धरती पर खोज लेने में बड़ी कठिनाई पड़ती थी। जब खोज न मिलती, तो पन्द्रह-बीस गज़ की परिधि में घूम कर उसके खुरों के चिह्न देखते। फिर

खोज मिल जाने पर ऐसी प्रसन्नता होती, मानो निधि मिल गई हो। कभी-कभी नाले में, जहाँ चौरस्ता होता, बड़ी कठिनाई पड़ती; पर लगा खोजी बुरा होता है। हम लोग कभी-कभी ग़लत खोज पर चले जाते; पर दस-बीस गज़ जाकर लौट पड़ते और फिर असली खोज ढूँढ़ निकालते। ठीक डेढ़ घंटे बाद हम लोग बीहड़ के एक सुनसान स्थान में आये। खोज के चिह्न एक पीलू की घनी झाड़ी की ओर गये थे। "हो न हो, सूअर ने यहीं विश्राम लिया है"—यह कह कर मैंने अपने साथी खोजी को आगे बढ़ने से रोका। वह झाड़ी एक घने नाले की बग़ल में थी। यह निश्चय करने के लिए कि सूअर वहीं है, हमने उस नाले के आस-पास उसकी खोज की। यदि वह उस घनी झाड़ी में न होगा, तो झाड़ी के आस-पास उसका खोज ज़रूर मिलना चाहिए। हमारा अन्दाज़ ठीक निकला। पास कहीं खोज के और चिह्न नहीं थे। हम लोग झाड़ी के अति निकट नहीं गये! सूअर बिदका हुआ था। कहीं टूट पड़े, तो कुत्ते की मौत मरने की आशंका थी—यह सोच कर मैं नाले के ऊपर चला गया और रायफ़ल सम्हाली और अपने साथी से पीछे वाली भीड़ में से छै-सात आदमियों को—बल्लम वालों को—बुलाने को कहा। उनको चुपचाप आने का आदेश दिया था।

क्रोधित सूअर ने जब देखा होगा कि उसका पीछा करने वाले नहीं हैं, तो वह नालों और डाँड़ों को पार करता हुआ वहाँ आया। ख़ून की खोज न थी; पर उसके खुरों की खोज के सहारे हम लोगों ने उसे जा घेरा। आदमी भी आ गये और वे ही आये थे, जो उसके मांस के लिए लालायित हो रहे थे। उन्हें सूअर मारने का कुछ अनुभव भी था, तिस पर मेरी रायफ़ल के सहारे को वे ब्रह्मास्त्र समझते थे। आते ही एक ने कहा—"का करैं सा'ब, कसूर बनि परौ। मैंऐं (वहीं) बन्दूक़ हम चलाइ लैं देते, तौ न तौ बु कुत्ता मत्तो औ न हैरानगती होती।"

"अच्छा, हो गया सो हो गया, अब जैसा मैं कहूँ, वैसे ही तैयार खड़े रहो।"—मैंने कहा।

नाले के ऊपर ढाँग थी, इसलिए, इधर से तो हिमालय की-सी रोक थी। उधर सूअर चढ़ नहीं सकता था। उसके निकलने का एक ही मार्ग था, और उसे हमने घेर लिया था। एक आदमी को मैंने ढाँग पर से झाड़ी में ढेला फेंकने और कोलाहल करके सूअर को निकालने के लिए भेज दिया। तीन आदमी नाले की एक बग़ल में बल्लम लेकर खड़े हो गये और तीन एक ओर। सब से आगे मैं रायफ़ल लेकर खड़ा हो गया। सूअर वहाँ से एक ही मार्ग से नाले में होकर निकल सकता था। यदि गोली न भी लगी, तो छै बल्लम वालों में से एक-दो के बल्लम तो उसके अवश्य छिदेंगे, और इतनी देर में फिर सूअर क़ाबू में कर लिया जायगा। कन्दरा के मुँह पर कोई व्यूह रच ले, तो कन्दरा में से कोई कैसे निकल सकता है? हलाहल पाकर कोई कैसे बच सकता है? पर मनुष्य की बुद्धि से परे भी कोई चीज़ है। कभी-कभी अनहोनी होनी हो जाती है। घनघोर बादल घिर आता है, और यह प्रतीत होता है कि पृथ्वी जलमग्न हो जायगी। घोर वृष्टि की सब प्रतीक्षा करते हैं; पर कभी-कभी ऐसी दशा में एक बूँद भी नहीं पड़ती। सुख की आशा में—भविष्य की कोमल कल्पनाओं में—कभी-कभी घोर संकट आ पड़ता है। हम लोग भी यह निश्चय कर बैठे थे कि सूअर निकलते ही बल्लमों में बिंध जायगा। पहले तो वह रायफ़ल की गोली का ही निशाना बनेगा। हमारे शरीर की एक-एक नस उत्तेजित थी। मैं तो ऐसा सचेत था कि रोम-रोम आँख बन रहा था—यदि सूअर मेरे पीछे आता, तब भी मैं उसे देख लेता।

ढाँग के ऊपर से ढेले और पत्थर पड़े। झाड़ी में कुछ आहट हुई। हमारे स्नायु और भी खिंच गये। सूअर निकला। फ़ायर हुआ और कुम्भकर्ण—सूअर की पीठ में फिसलती हुई गोली लगी। पिछली टाँगों के बल वह तनिक घुटनाया और चिंघाड़ा, फिर शीघ्र ही भागने की चेष्टा में मेरे पास होकर झपटा। दूसरी गोली चलाने का अवसर ही न दिया कि मेरे पास आकर उसने अपनी थूथड़ी ऊपर को की। बाईं रान पर उसकी काँपें पड़ीं; सो भी ओछी। पीड़ा से मेरी चीख़ निकल गई।

दो मिनट की मूर्छा के उपरान्त देखा, तो मुझ से चार-पाँच गज़ आगे बल्लमों में बिधा सूअर पड़ा था। उसकी तीक्ष्ण काँपें—पैने छुरे—मेरी ओर को थीं। ख़ून से मैं लथपथ हो गया था। सूअर ने मुझे ऐसे पलट दिया, मानो कच्चे घड़े को कोई उठा कर फेंक दे। पीड़ा से मूर्छा आ गई थी। सूअर कहीं रुक कर पूरा वार कर देता, तो मेरी भी गति उसी कुत्ते की भाँति होती। नाम मात्र को तनिक झपेट ही हुई थी कि मैं मृतप्राय हो गया। मुझ पर उसने चोट की और मैं सूअर के पीछे की ओर गिरा। सूअर का वार नीचे से ऊपर को—भागते में पीछे की ओर को—था, इसलिए, मैं पीछे की ओर गिरा। जो कहीं आगे को गिरता, तो जाने क्या होता! मुझ पर चोट होते ही बल्लमों के तीक्ष्ण फल सूअर की देह में प्रवेश कर गये। वह गोली से ही लगभग भुन चुका था। भालों ने ख़ात्मा ही कर दिया!

करवट के बल आधा लेटा हुआ मैं कराह रहा था और जाँघ से निकलने वाले ख़ून के परनाले को रोकने के लिए कपड़ा बँधवा रहा था। सूअर की काँपें हड्डी तक न पहुँची थीं, इसीलिए, ख़ून रुक जाने पर कोई डर की बात न थी। उस पीड़ा और कष्ट में उस समय ख़याल आ रहा था कि अन्तरिक्ष में विधाता मेरी इस गति के लिए हँस रहा है!

× × ×

सूअर की लाश पड़ाव की ओर लाद कर लाई गई, और मैं भी खटिया पर लाया गया। लोट-पोट कर मैं अच्छा हो गया; पर उन पैने छुरों का चिह्न अब भी चन्द्राकार में बाईं जाँघ पर है और तब तक रहेगा, जब तक काया इस रूप में है

अब जब कभी मैं किसी बड़े सूअर को देखता हूँ, तब मुझे दाग़ी करने वाले सूअर का स्मरण हो आता है, और उसकी प्रशंसा में बाराह-अवतार का यह श्लोक कह बैठता हूँ—

"वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना ।
शशिनि कलंककलेव निमग्ना ॥
केशव धृत शूकररूप । जय जगदीश हरे !"

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) अर्थ बताओः—आकर्षण, विषम, रक्तवर्ण परिचारिका, अभिप्राय, जागृत, द्वितीया, अन्तरिक्ष, निस्तब्धता, चीत्कार, प्रोत्साहन, रौद्र रूप, ब्रह्मास्त्र, प्रतीत, प्रतीक्षा, उपरान्त, दशन, धृत, धरणी ।

(ख) अर्थान्तर की व्याख्या करोः—उत्पन्न—पन्न, प्रकृति—कृति, आकृति—कृति, प्रवेश—वेश, अनुभव—भव, अवसर—सर, स्मरण—रण ।

(ग) निम्नांकित मुहाविरों के अर्थ लिख कर उनका अपने वाक्यों में प्रयोग करोः—मुँह ढँक लिया, दुन्दुभी बजने लगी, मोर्चा जमा दिया था, करेगा फल पायेगा, विधाता हँस रहा था, पिल पड़े, सहम गये, रस्सी जल जाती है, पर उसका टेढ़ापन नहीं जाता ।

(घ) पर्यायवाची शब्द बताओ :—गृहिणी, सूर्य, दृष्टि, कर्ण, सूअर, इच्छा ।

२—भाषा सम्बन्धी—

(ङ) पं० श्रीराम शर्मा की वर्णन-शैली पर अपने विचार प्रगट करो।

(च) इस लेख की वर्णन-शैली में क्या विशेषता है ?

(छ) इस लेख में आने वाले उर्दू शब्दों को हिन्दी में रूपान्तरित करो।

(ज) निम्न अवतरणों के स्पष्ट भावार्थ लिखो :—

(अ) जीवन से साथ ······गृहस्थ ।
(ब) दो तीन मील ······उजाला काफ़ी था ।
(स) वह मर चुका······शेष थे ।
(द) वर्सात ······जगदीश हरे !

३—विचार सम्बन्धी—

(झ) इस लेख का सारांश अपनी भाषा में लिखो।

(ञ) सूअर के शिकार के सम्बन्ध में लेखक के विचार बताओ।

(ट) इस लेख के आधार पर सूअर की प्रकृति का चित्रण करो।

(ठ) अपने विचार प्रगट करो:—

(प) चिन्ता और विपत्तियाँ साथ छोड़ने वाली नहीं।

(फ) प्रोत्साहन में एक बिजली होती है, जो लँगड़े लूले को भी कर्मण्य बना देती है।

(ब) विपत्ति वह भयंकर शीत है, जिसमें सहानुभूति रूपी उष्णता ठिठुर जाती है।

४—व्याकरण सम्बन्धी—

(ड) सविग्रह समास बताओ:—जीवन-गृह, प्रकृति-दर्शन, शुभागमन, चन्द्राकार, निरामिष, सूर्योदय, हतोत्साह, प्राण-वेदना।

(ढ) उपसर्ग के प्रयोग से नवीन शब्द बनाओ:—नन्द, कृति, वृत्त, गमन, दर्शन, प्राय, आमिष, भव।

(ण) वाक्य-विश्लेषण करो:—

(य) चिन्ता और······महायात्रा करेगा।

(र) उसकी टक्कर को······फल पायेगा।

(त) उदाहरण देकर समझाओ:—

(भ) कर्त्ता की 'ने' विभक्ति क्रिया की किस अवस्था में उसके आगे नहीं लगती।

(म) किस अवस्था में क्रिया लिंग, वचन, और पुरुष में कर्म के अनुरूप हो जाती है।

(थ) पदव्याख्या करो—पड़ाव की ओर चले, ठंड बढ़ रही थी, टूट पड़ते हैं।

१२—हीरा और कोयला

[लेखक—श्रीयुत राय कृष्णदास]

वंश—अग्रवाल

जन्मस्थान—काशी

मृत्यु संवत्—१९४९

परिचयः—आप काशी के एक बहुत ही प्रतिष्ठित मनुष्य हैं। हिन्दी-साहित्य में कलात्मक और भाव-पूर्ण भाषा लिखने में आप अद्वितीय हैं। अँग्रेज़ी, संस्कृत इत्यादि भाषाओं पर आपका पूर्ण अधिकार है। आप अत्यन्त कला-प्रेमी हैं। आपने अपना समय और बहुत सा रुपया ख़र्च करके कलात्मक वस्तुओं का एक संग्रहालय स्थापित किया था; जिसे आपने काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा को भेंट कर दी। आप प्रकृति के बड़े उदार और सरल हैं।

कार्य :—हिन्दी-साहित्य में यदि आप गद्य-काव्य के जन्मदाता कहे जायँ, तो कोई अत्युक्ति न होगी। आपके पहले भी कुछ लोगों ने गद्य-काव्य लिखे थे, किन्तु गद्य-काव्य की सफल धारा आप ही ने प्रवाहित की। छोटी-छोटी भावात्मक और कला-पूर्ण कहानियों का भी आप ही के द्वारा श्रीगणेश हुआ। आपकी कहानियाँ और आपके गद्य-काव्य हिन्दी-साहित्य में अपनी एक विशेष विशेषता रखते हैं। आपकी रचनाओं में दार्शनिकता और करुण-रस का अच्छा संचरण पाया जाता है।

शैली:—आपकी शैली बड़ी स्वाभाविक और सजीव है। धारा प्रवाह का सुन्दर निर्वहन आपकी भाषा में ख़ूब देखने को मिलता है। छोटे-छोटे कवित्व-पूर्ण वाक्य भाषा की श्रेष्ठता को और भी अधिक बढ़ाते हैं। आपने अपनी रचनाओं में कहीं कहीं देहाती और प्रान्तीय शब्दों का भी प्रयोग किया है।

रचनाएँ:—कविता—१ भावुक। गद्य—२ साधना, ३ संलाप, ४—छायापथ। कहानियाँ—५ अनाख्या, ६ सुधांशु।

हीरा—मेरे पास तू कैसे ?

कोयला—क्यों तेरा और मेरा तो जन्म का साथ है।

हीरा—"जन्म का साथ है" चल हट दूर हो यहाँ से।

कोयला—क्या तू मेरी बात झूठ मानता है? अरे, हम सगे भाई हैं।

हीरा—क्या कहना है, चोरी और सीनाज़ोरी। अभी तक जन्म का साथी बनता था, अब भाई बनने लगा। मैं गोरा चिट्टा, तू काला कलूटा। भला कौन कहेगा कि तू मेरा भाई है।

कोयला—अरे, मैं तेरा सगा ही नहीं, सगा बड़ा भाई हूँ। एक ही पेट से पहले मेरा जन्म होता है, तब तेरा।

हीरा—तभी न हम दोनों एक से हैं।

कोयला—यह तो ईश्वरी देन है। क्या देव और दानव भाई नहीं?

हीरा—सोलहों आने सच, लेकिन दानव तू ही हुआ, क्योंकि तू मेरा बड़ा बनता है।

कोयला—कौन दानव है और कौन देव, यह तो कर्म से विदित होगा। अपने मुँह से कहने की क्या आवश्यकता है? फिर; देवता के अनुयायी ही असुरों की इतनी निन्दा करते आये हैं। यदि देखा जाय तो बेचारे असुर सदा ही देवताओं से छले गये हैं।

हीरा—अच्छा, रहने दे अपने पास अपनी दार्शनिकता। आ, हम अपनी अपनी करनी तो देख लें कि तू मेरा बड़ा भाई होने योग्य है कि नहीं।

कोयला—बहुत ठीक, बहुत ठीक, तुझे ही अपनी बड़ाई का बड़ा घमंड है; तू ही अपने गुन कह चल।

हीरा—बनता है तो मेरा सहोदर, पर तुझे मेरे गुण तक विदित नहीं। न सही, पर क्या तेरी आँखें भी फूट गई हैं। पहले तो मेरा रूप ही देख। यदि मुझमें और गुण न भी हों तो इतना ही मेरी बड़ाई के लिये बहुत है—मैं जहाँ रहता हूँ, सूरज की तरह चमकता हूँ। रंग-विरंगी किरनें मुझमें से निकला करती हैं। देखने वालों की आँखें खुल जाती हैं, तबीयत हरी हो जाती है।

कोयला—क्या कहना है, तू तो एक कंकड़ जैसा खान के बाहर आता है; वह तो हीरा-तराश तुझे यह कृत्रिम रूप देता है। तेरा अपना प्रकाश कहाँ ? तू समस्त वर्णों और प्रकाशों से शून्य है। तुझमें जैसी छाया और आभा पड़ी वैसा ही बन जाता है। गङ्गा गये, गङ्गादास; जमुना गए, जमुनादास। यदि तू कहीं अँधेरे में पड़ा रहे तो लोगों की ठोकरें—

हीरा—ज़रा ही में गर्म हो गया। पूरी बात तो सुन लेता। सुन—मैं राजराजेश्वरों के सिर पर बैठता हूँ। देवताओं का मुकुट सुशोभित करता हूँ, सुन्दरियों का आभूषण बनता हूँ—

कोयला—हाँ तू अपने कारण सम्राटों के सिर कटाता है। बड़े बड़े राज तहस-नहस करा डालता है। मनुष्य को इस धोखे में डालता है कि तुझे देव मुकुट में लगा कर वह देवता को अपने वश कर सकता है। तू सुन्दरियों की सहज रमणीयता पर भी अपनी कृत्रिमता से पानी फेरता है।

हीरा—मैं बड़े बड़े राज-कोषों में कितनी रक्षा से रक्खा जाता हूँ। मेरे लिये पहरा-चौकी लगती है। तेरे जैसा गलियों में मारा मारा नहीं फिरता। बड़ी बड़ी निधियों से मेरा विनिमय होता है। मैं टके सेर नहीं बिकता।

कोयला—क्या खूब ! नित्य बन्दी बनकर सौ सौ तालों में बन्द होकर सोने की काँटेदार बेड़ियों में जाकर तू अपने को बड़ा समझे तो समझ। तेरी बुद्धि की बलिहारी है। मैं तो स्वतन्त्रता-पूर्वक दर दर घूमना ही जीवन की धन्यता समझता हूँ और तेरा मूल्य तुझे याद है कि मैं बता दूँ ! तेरा सच्चा मोल, पंजाब-केसरी रणजीत सिंह ने आँका था—पाँच जूतियाँ। सुना तूने ?

हीरा—रहने दे छोटे मुँह बड़ी बात, तू सदा जलने वाला। तू दूसरे का उत्कर्ष कब देख सकता है ?

कोयला—हाँ, मैं जलता हूँ, किन्तु दूसरों के लिये—मैं अपने कारण दूसरों को तो नहीं जलाता। मैं जलकर ग़रीबों की भी ज़रूरतें पूरी करता हूँ—लोगों को विभूति देता हूँ।

हीरा—हाँ, मेरे ही विनिमय के लिये तू उन्हें धनिक करता है।

कोयला—क्योंकि मैं तो तुझे छोटा भाई समझकर तेरी प्रतिष्ठा ही चाहता हूँ; पर त तो ठहरा वज्र, तुझे इसका ध्यान कहाँ ?

हीरा—रहने दे अपनी उदारता। मैं इन बातों में आकर अपना मार्ग नहीं छोड़ने का।

कोयला—मैं तुझे यही तो बताना चाहता हूँ—तेरे दिन अब पूरे हो चले—संसार शीघ्र ही वह दिन देखने वाला है, जब तेरी पूछ न रह जायगी। वह शीघ्र ही कृत्रिम आभूषणों के बदले सच्चे आभूषण अपनावेगा। ग़रीबी अमीरी का ऊबड़खाबड़ और टेढ़ा मेढ़ा मार्ग छोड़कर, एक सरल समतल सीधे मार्ग से चलने वाला है।

हीरा—देखना है कि मनुष्यता कब सच्चे आभूषण अपनाती है ? देखना है कि लोकयात्रा का वह सीधा मार्ग कब बनता है ? यदि वैसा सीधा मार्ग बन भी गया तो उसके सीधेपन के कारण उसकी लंबाई देखकर ही मानवता हार बैठेगी। जो हो—

कोयला—नहीं, यह सीधापन उसका उत्साह दूना कर देगा, क्योंकि यात्रा का निर्दिष्ट स्थान उसे सामने ही दीख पड़ने लगेगा।

हीरा—जब वह समय आवेगा तब देखा जायगा। मैं बीच ही में अपना पद त्याग क्यों करूँ ? क्या सहज ही मैंने उसे पाया है ? तब तक के लिए तुझे इस बिना माँगी सलाह के लिये हृदय से धन्यवाद।

कोयला—अच्छा मेरे अनुज ! मैं जी से तुझे आशीर्वाद देता हूँ कि ईश्वर तुझे सुबुद्धि दे !

हीरा—आः क्या दैव-गति ऐसी ही है कि मैं तेरा अनुज होऊँ और तू—कोलया—मेरा अग्रज।

कोयला—हाँ, यह एक घटना है, जिसे हम मिटा नहीं सकते।

हीरा—तो क्या मनुष्य के पूर्वज बन्दर नहीं ?

कोयला—यह तो तेरे जैसे पारदर्शी ही जाने; मैं अन्ध-हृदय इन गूढ़ विषयों को क्या समझ सकूँ ?

हीरा—चाहे जैसे भी हो, तूने अपने हृदय का कालापन तो स्वीकार किया, तेरी इस हार के आगे मैं अपना सिर झुकाता हूँ।

कोयला—और मैं भी अपने उसी आन्तरिक अन्धकार से, जो आलोक का कारण है—तुझे फिर असीसता हूँ कि ईश्वर तुझे सुबुद्धि दे।

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) अर्थ बताओ—विदित, असुर, दार्शनिकता, सहोदर, कृत्रिम, समस्त, शून्य, आभूषण रमणीयता, कोष, विनिमय, भव्यता, विभूति, मानवता, निर्दिष्ट, अनुज, पारदर्शी।

(ख) अर्थान्तर की व्याख्या करोः—कलूटा—लूटा, दानव—नव, असुर—सुर, सहोदर—उदर, केसरी—सरी, समतल—तल।

(ग) इनके तत्सम रूप लिखोः—सच, मुँह, करनी, गुन, असीस।

(घ) निम्नांकित मुहाविरों के अर्थ लिख कर उनका अपने वाक्यों में प्रयोग करोः—चोरी और सीनाज़ोरी, गंगा गये गंगादास, जमुना गये जमुनादास, गर्म हो गया, पानी फेरता है, टके सेर बिकना, छोटे मुँह बड़ी बात।

२—भाषा सम्बन्धी—

(ङ) बाबू राय कृष्णदास जी की भाषा के सम्बन्ध में क्या जानते हो?

(च) इस लेख में आने वाले उर्दू शब्दों को हिन्दी में रूपान्तरित करो।

(छ) इस लेख के आधार पर प्रमाणित करो कि बाबू राय कृष्णदास देहाती और प्रान्तीय शब्दों का भी प्रयोग करते हैं।

(ज) सरल शब्दों में भाव स्पष्ट करो:—

(य) कौन दानव है······छले गये हैं।

(र) क्या कहना है······जमुनादास।

(ल) हाँ तू अपने······पानी फेरता है।

(व) नित्य बन्दी······पाँच जूतियाँ।

३—विचार सम्बन्धी :—

(झ) निम्नांकित अंशों में किन कथाओं की ओर संकेत किया गया है :—
(अ) बेचारे असुर सदा ही देवताओं से छले गये।
(ब) तेरा सच्चा मोल पंजाब-केसरी रणजीत सिंह ने आँका था।

(ञ) हीरा और कोयला, दोनों में तुम किसे अधिक विनम्र समझते हो और क्यों?

(ट) हीरा और कोयले के संलाप से जो लाभदायक बातें प्रमाणित हुई हैं उनका उल्लेख करो।

(ठ) तुम अपनी बुद्धि से यह बताओ कि कोयला और हीरा, दोनों में कौन अधिक लोकोपकारक है?

(ड) हीरा और कोयले के वार्तालाप के ढंग पर सागर और मेघ का वार्तालाप लिखो।

४—व्याकरण सम्बन्धी—

(ढ) क्या हैं और कैसे बने हैं:—निन्दित, दार्शनिक, प्रकाशित, धनिक, उदारता।

(ण) समास विग्रह करो—हीरा-तराश, प्रकाश-शून्य, राजराजेश्वर, राजकोष, लोक-यात्रा, पदत्याग।

(त) वाक्य-विश्लेषण करो :—
(स) तेरे जैसा……नहीं बिकता।
(द) हाँ मैं जलता……विभूति देता हूँ।
(ध) नहीं, वह सीधापन……पड़ने लगेगा।

(थ) पदव्याख्या करो—ध्यान कहाँ, हार बैठेगी, सुबुद्धि दे, सिर झुकाता हूँ।

१३—क्षमता की विवेचना

[लेखक—श्रीयुत लज्जाशङ्कर]

वंश—गुजराती ब्राह्मण

निवास-स्थान—काशी

जन्म संवत्—१९३२ के लगभग

परिचय :—आपकी मातृ-भाषा गुजराती है। किन्तु फिर भी आपको हिन्दी-साहित्य से अत्यधिक प्रेम है। प्रेम ही नहीं, आप हिन्दी-साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान् और सुलेखक भी हैं। अँगरेज़ी साहित्य का आपने विशेष रूप से अध्ययन किया है। आपको शिक्षण-कला से अधिक प्रेम है। पहले आप जबलपुर में ट्रेनिंग कालेज के प्रिन्सपल थे। किन्तु आजकल काशी के सेन्ट्रल हिन्दू ट्रेनिंग कालेज के प्रिंसपल हैं। आपकी प्रकृति बड़ी उदार और सरल है।

कार्य—पं० लज्जाशंकर झा हिन्दी-साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान् हैं। आपने शिक्षा सम्बन्धी विषयों पर बहुत से स्फुट लेख लिखे हैं। पशु-पक्षियों और चिड़ियों के जीवन पर भी आपने कुछ मनोरंजक निबन्ध लिखे हैं। आपकी मातृभाषा गुजराती है, इसलिए आपके द्वारा गुजराती विचारों का हिन्दी साहित्य में अच्छा विकास हो पाया है। आपने दो तीन पुस्तकें भी लिखी हैं।

शैली:—आपकी शैली बहुत ही सरल और सुबोध होती है। भाषा का परिमार्जन और प्रौढ़ता आपकी शैली में ख़ूब पाई जाती है। आप अपने गंभीर विचारों को भी सुबोध भाषा में व्यक्त करते हैं। आपकी रचनाओं में संस्कृत के तत्सम शब्द अधिक पाये जाते हैं। कहीं-कहीं उर्दू के चलताऊ शब्दों के भी दर्शन होते हैं।

रचनाएँ—१ शिक्षण पद्धति, २ स्वराज्य के योग्य शिक्षा।

इस संसार में रात-दिन जीवन-संग्राम चला हुआ है, और यदि कोई मनुष्य या जाति इस पृथ्वी पर सुख से रहना चाहती है, तो

उसे हर तरह सक्षम बनने का यत्न करना चाहिए। इतना ही नहीं, वरन् जितनी अधिक क्षमता आ सके, उतनी ही प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए। अब प्रश्न यह उठता है कि क्षमता कहते किसे हैं, और वह कितने प्रकार की है। इस लेख में इन्हीं प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न किया जायगा।

इन प्रश्नों पर विचार करने से पहले हमें यह देखना चाहिए कि मनुष्य क्या है। एक तो मनुष्य के शरीर है, जिसे इस स्थूल पृथ्वी के समागम में रख कर और प्रकृति के नियमों का पालन करके सुरक्षित रखना पड़ता है। यदि यह शरीर किसी कारण से नष्ट हो जाय तो इस पृथ्वी पर से उस व्यक्ति का इतिहास ही समाप्त हो जाता है और जीवात्मा की बुद्धि अथवा नैतिक बल से समाज को कोई लाभ नहीं होता। परन्तु मनुष्य शरीर के सिवा कुछ और भी है; अर्थात् उसमें बुद्धि है। उसी बुद्धि के सहारे वह अन्य जीवों पर अपना प्रभुत्व जमाये है। इतना ही नहीं, मनुष्य समाज-प्रिय जीव है। उसे अकेले रहना पसन्द नहीं; और यदि उसे किसी निर्जन वन में अकेले रहना पड़े, तो वह घबरा कर प्राण त्याग देगा। जब स्वभावानुकूल उसे समाज में रहना ही है, तब उसे उन गुणों के प्राप्त करने की भी आवश्यकता है, जिनके रहने से ही मनुष्य अन्य मनुष्यों के साथ सुख से अपना जीवन व्यतीत कर सकता है। नीतिज्ञों ने जो नियम बनाये हैं, वे अनुभव-सिद्ध हैं। अर्थात् अनुभव द्वारा उन लोगों ने देखा है कि अमुक नियमों का पालन करने से ही मनुष्य अपने समाज में सुख-पूर्वक अथवा सफलता-पूर्वक रह सकता है।

उपर्युक्त विचारों से यह सिद्ध होता है कि जिस मनुष्य या समाज को जीवन-संग्राम में विजय पाना हो, उसे तीन प्रकार की क्षमता प्राप्त करना चाहिए; अर्थात् शारीरिक, मानसिक और नैतिक। इसका अर्थ यह है कि उसमें तीनों प्रकार के बल होने चाहिए। यदि केवल शारीरिक बल से ही किसी जाति का उद्धार होने को होता तो अफ़गानिस्तान के निवासियों की टक्कर की अन्य कोई जाति दुनिया में न मिलती; क्योंकि शारीरिक बल में इस पृथ्वी के किसी अन्य देश

के निवासी काबुलियों की बराबरी कठिनाई से कर सकेंगे। पोलैण्ड देश के निवासी शारीरिक बल में यूरोप की अन्य जातियों की अपेक्षा बढ़ कर माने जाते हैं; परन्तु जीवन-संग्राम में उनका नम्बर पीछे पड़ा हुआ है। सभ्यता तथा व्यापार की होड़ में आगे आने के लिए अन्य गुणों की भी आवश्यकता है। साथ ही, यह भी सत्य है कि जिस जाति के लोगों में से किसी कारण से शारीरिक बल निकल गया है, उस जाति को, अन्य सब गुणों के होते हुए भी, जीवन-संग्राम में पीछे हटना पड़ता है। इस समय बङ्गाल देश की विचित्र स्थिति हो रही है। यदि बुद्धि देखी जाय तो वहाँ के लोग बहुत बढ़े-चढ़े हैं और साहित्य, विज्ञान आदि के अनेक अंगों में बङ्गाली विद्वान नाम कमा रहे हैं। डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर सरीखे कवि, सर जगदीशचन्द्र वसु सरीखे वैज्ञानिक और डाक्टर रासबिहारी घोष सरीखे राजनीति-विशारद आदि अनेक विद्वान्, इञ्जीनियर, डाक्टर, चित्रकार, शासनकर्ता इत्यादि हैं जो इस देश में तो क्या, कई तो सारी सभ्य दुनिया में नाम कमा रहे हैं। इतना होने पर भी यदि कलकत्ते और बंगाल की दशा देखी जाय, तो वह बड़ी शोचनीय है। कारण यह कि मलेरिया ने वहाँ के निवासियों को बल-हीन और चेष्टा-हीन कर दिया है। जहाँ केवल बुद्धि की दौड़ हो, या बैठे बैठे काम करना हो, केवल वहाँ तो वे लोग कुछ कर दिखाते हैं, परन्तु जहाँ शारीरिक परिश्रम करने, पुरुषार्थ दिखाने, या दौड़-धूप करने का काम आ पड़ता है, वहाँ उन बेचारों को पिछड़ना पड़ता है।

कलकत्ता शहर बंगाल प्रदेश की राजधानी है, पर वहाँ का सारा व्यापार उत्तर भारत के निवासियों तथा मारवाड़ियों के हाथ में है। वे लोग लाखों रुपए बनाते और माला-माल हो रहे हैं, पर उसी देश के अधिक शिक्षित तथा बुद्धिमान् बंगाली एम० ए०, बी० ए०, एल एल० बी० आदि परीक्षाएँ पास कर छोटी छोटी तनख्वाहों पर भूखों मर रहे हैं। इसी प्रकार वहाँ के जूट के कारखानों में तथा वहाँ की खानों में जहाँ काम कड़ा रहता है और वेतन अधिक है, परदेशी आदमी भरे हुए हैं। बेचारे बंगालियों को कोई पूछता नहीं। इसमें

बंगालियों का दोष नहीं। मलेरिया के कारण उनके शरीर का रस ऐसा निकल गया है कि पुरुषार्थी काम करने के समय उन्हें मुँह छिपाना पड़ता है। यदि कोई उद्योग करके उनके देश से मलेरिया निकाल दे, तो ये ही बंगाली ऐसे ऐसे काम करने लगेंगे कि सभ्य संसार उन्हें देख कर विस्मित होगा। इस जाति में अनेक गुण हैं जिनके कारण वह अवश्य ऊँचा स्थान प्राप्त करेगी; किन्तु अभी तो यह मलेरिया रूपी सन्निपात ज्वर में बेकार हो रही है।

अब ज़रा नैतिक बल की तरफ ध्यान देना चाहिए। यहाँ भी प्रकृति का अवलोकन करने से हमें इस विषय पर विचार करने से सहायता मिलती है। दुनिया में दो प्रकार के प्राणी होते हैं। एक तो सिंह, व्याघ्र, चीते आदि हैं। इनमें शारीरिक शक्ति अधिक होने के कारण मद बहुत रहता है, और ये अकेले रहना पसन्द करते हैं। इसी का लाभ उठाकर शिकारी लोग एक के बाद दूसरे को घेर कर इनका नाश करते जाते हैं। इसी हिन्दुस्तान देश में एक हज़ार वर्ष पहले, जहाँ वन वन में सिंह थे, अब कदाचित् एक या दो सिंह बच रहे हैं; और व्याघ्रों की संख्या भी शिकारियों के मारे दिनों दिन घटती जा रही है। कुछ दिनों बाद इनके नाम केवल ग्रन्थों में देखने को मिलेंगे। यदि इनमें परस्पर सहायता करने की आदत होती, तो इनका नाश इतनी सुगमता से न हो सकता।

सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं के मुक़ाबले में चींटी, मधुमक्खी, बर्रे आदि को देखो। इनमें शारीरिक बल कितना कम रहता है! एक को पकड़ कर नाश कर देने में लोगों को कठिनाई ही क्या है! पर इन जीवों में पारस्परिक सहकारिता रूपी नैतिक गुण इतना चढ़ा बढ़ा है कि कमज़ोर होते हुए भी ये आत्म-रक्षा में समर्थ रहते हैं। शेरनी की माँद में जाकर उसे छेड़ कर जीवित लौट आना उतना कठिन काम नहीं है; पर मधुमक्षिका या बर्रे के छत्ते को कोई भला छेड़ तो आवे! छत्ते भर के जीव एक दिल हो, एक दूसरे की सहायता करते हुए छेड़ने वाले का नाकों दम कर देंगे। यदि इन तीनों प्रकार के कीड़ों का बारीकी से अवलोकन किया जाय तो मालूम होगा, कि इनका सारा

जीवन समाज-सेवा में ही जाता है। कोई व्यक्ति स्वार्थ के लिए कुछ नहीं करता; सब कुछ अपने समाज के लिए करता है। इसी कारण ये प्रबल शत्रु से भी अपनी रक्षा कर सकते हैं।

मनुष्य भी इन्हीं कीड़ों के समान समाज-प्रिय जीव है। इन्हीं के समान यह भी शारीरिक क्षमता में हीन है। यदि मनुष्य जाति के लोग परस्पर सहायता करना और स्वार्थ-रहित बुद्धि से काम करना न सीखते, तो इस दुनिया में उनकी ख़ैरियत न रहती। फिर भी किसी जाति के लोगों ने इस गुण की विशेष उन्नति की है और किसी ने बहुत कम। इतिहास से भी यही ज्ञात होता है कि जिस जाति में परस्पर सहकारिता अधिक है, उसी ने कम सहकारिता वालों पर विजय पाई है। कम सहकारिता वालों ने जीवन-संग्राम में कभी जय नहीं पाई।

यदि इस दृष्टि से देश की स्थिति का अवलोकन किया जाय, और विशेष कर हिन्दू समाज का, तो मालूम होगा कि हम लोगों में परस्पर सहायता करने तथा एक दूसरे पर भरोसा करने की शक्ति बहुत ही न्यून है। हिन्दू समाज ऊँच-नीच के झगड़ों में ऐसा फँसा है कि वह कभी एक-बुद्धि हो सहकारिता से काम करना सीखता ही नहीं।

इस समाज की बातें बड़ी ही विचित्र हैं। यदि किसी के सामने भिन्न जातियों की बड़ाई की जाय तो, वह उन सब में कुछ न कुछ दोष दिखा ही देगा। यदि आप उससे पूछें कि जब आपने सब को नीचा बना दिया, तो ऊँच कौन रहा; तो उत्तर मिलेगा कि केवल हम ऊँच हैं, शेष सब नीच। दूसरा कहेगा कि वह कहाँ का ऊँच है? वह तो महानीच है! ऊँच तो हम हैं। इसी तरह एक दूसरे की पत्तल में छेद करने में हिन्दू समाज मग्न है। हिन्दू समाज में एका हो, तो कहाँ से हो? हर एक घर में, हर एक गाँव या प्रदेश में अलग अलग इष्टदेव विराजे हुए हैं। हर एक जाति की ढाइ चावल की खिचड़ी अलग ही पकती है। न कोइ किसी का, न अपने राम किसी के यही हाल हो रहा है।

हिन्दुस्तान का इतिहास देखने से इस प्रकार के ऊँच-नीच भाव का बुरा परिणाम प्रत्यक्ष देखने में आता है। आल्हा-ऊदल की

५२ लड़ाइयाँ क्यों हुईं ? " ओछी जात बनाफर की है, तिन संग ब्याह करन के नाँय।" इधर औरों की यह ऐंठ कि हम ओछी जाति के आल्हा-ऊदल को लड़की न देंगे; उधर इन भाइयों का भी यह हौसला कि अच्छा, हम इनकी लड़की अवश्य लेंगे। इस कारण अनेक लड़ाइयाँ लड़ कर क्षत्रिय लोग कट मर गये; और जब मुसलमानों ने इस देश पर चढ़ाई शुरू की, तब उनका सामना करने योग्य कोई राज-शक्ति न रही।

इसी भाव के कारण कन्नौजवाले खड़े तमाशा देखते रहे और दिल्ली का राज्य टूट गया। जब कन्नौज के गिरने की बारी आई, तब अन्य राजपूत राज्य भी खड़े देखते रहे। फल यह हुआ कि धीरे-धीरे सब राज्य नष्ट हो गये। पर शत्रु के विरुद्ध सहकारिता के बिना कुशल नहीं। आगे मेवाड़ तथा अन्य राजपूत राज्यों पर अनेक आपत्तियाँ आईं; पर इसी ऊँच नीच भाव के कारण दूसरे राजपूत राज्य क्वचित् ही सहायता दे सके। बङ्गाली साहित्यकारों के शिरोमणि बाबू द्विजेन्द्रलाल राय ने अपने प्रसिद्ध 'दुर्गादास' नाटक में वीर दुर्गादास के मुख से इस विषय में बड़े ही मार्मिक बचन कहलाये हैं। पचीस तीस वर्ष तक वीर दुर्गादास इस उद्योग में रहा कि मुग़लों की बादशाहत टूट कर हिन्दू साम्राज्य स्थापित हो जाय; पर अन्त में हार कर उसने यही कहा कि राजपूतों को मुग़लों की गुलामी पसन्द है; पर आपस में ही किसी को बड़ा मान कर उसे सम्राट् बनाना उन्हें कदापि स्वीकार नहीं। यही हिन्दुस्तान के इतिहास का सार है।

जहाँ किसी राज्य पर आपत्ति आई, वहाँ शत्रु के विरुद्ध सब लोगों का एक होना तो दूर रहा, आपस ही में लड़ मरे। पानीपत की भयंकर लड़ाई में जिस समय मराठा राज्य डावाँडोल हो रहा था, उस समय मराठे सरदार क्या कर रहे थे ? उनके सेनापति ने होलकर को यह कह कर कि 'तू तो गड़ेरिया है, तू जङ्गी मामला क्या समझे' उदासीन कर दिया। किसी ने व्यंग्य वचन सुनाये कि अमुक तो जूते-बरदार है, वह क्या लड़ेगा ? एक कहता है कि

अजी, जाटों में कभी अक़ल रही कि सूरजमल सलाह देने बैठा है! जिस समय अहमदशाह दुर्रानी सरीखा चैतन्य और बहादुर शत्रु सामने लड़ने को खड़ा था, उस समय क्या ऐसे ऊँच-नीच के झगड़े पेश करने का समय था?

ये तो हुईं ऐतिहासिक बातें। अब देखिए कि सहकारिता के होने या न होने से व्यापार पर क्या असर होता है। रंगून शहर का व्यापार बहुत कुछ मद्रास अहाते के सेठों के हाथ में है। उसके कई कारण हैं। मुख्य तो यह है कि इन लोगों ने ऐसी व्यवस्था कर ली है कि किसी सेठ के धन-हीन होने पर किसी का देना न रह जाय। नतीजा यह होता है कि सेठ को दिया हुआ रुपया कभी डूबता नहीं। यदि वह न दे सके तो दूसरे सेठ रुपये का भुगतान कर देते हैं। किसी सेठ के घर में केवल चटाई लोटा हो, और कपड़े-लत्ते न हों, पर जहाँ रुपयों की उसे जरूरत हुई कि अच्छे से अच्छा महाजन कम व्याज पर उसे रुपये दे देगा। इसलिए जैसा व्यापार ये लोग कर सकते हैं, वैसा दूसरी जाति के लोग नहीं कर सकते।

एक दूसरी जाति के व्यापारी कलकत्ते में हैं, जिनकी बुद्धि व्यापार सम्बन्धी बातों में विलक्षण ही समझनी चाहिए। उनमें और भी कई गुण हैं जिनके कारण कलकत्ता शहर का व्यापार बहुत कुछ उनके हाथ में आ गया। परन्तु रंगून के सेठों के समान उन्होंने अपनी जाति का यश बनाये रखने की चेष्टा नहीं की। इसी जाति वाले थाली लोटा लेकर घर से आते हैं परन्तु अपनी विलक्षण बुद्धि के कारण दूसरों का रुपया खींच व्यापार करते हैं; और जब अच्छा पैसा हो जाता है, तब सब धन घर भेज देते हैं, दिवाला निकाल, और कहीं चल देते हैं। लोगों का ऐसा ख़याल होने से उस जाति के लोगों की साख नहीं रही। उनका कोई भरोसा नहीं करता। बिना अच्छी ज़मानत और ऊँचा व्याज लिये कोई उन्हें ऋण नहीं देता। इस जाति का अपयश हो जाने से उसका व्यापार धीरे-धीरे खिसकता जाता है और उनके गुणों के होते हुए भी नैतिक तथा सहकारिता का बल न होने से उसे व्यापार में नीचा देखना पड़ता है।

सहकारिता न होने के भयङ्कर परिणाम के उदाहरण सन् १९१३ ई० में बैंकों के बिगड़ने के समय देखने में आये थे। इण्डियन पीपुल्स बैंक तथा इण्डियन स्पीसी बैंक के बिगड़ने पर बाज़ार में हुल्लड़ मच गया और सब बैंकों से लोगों ने रुपया उठाना शुरू किया। इसके कारण अनेक देशी बैंक बिगड़ गये और उनके दिवाले निकल गये। अँगरेज़ी बैंकों ने एक दूसरे की सहायता की और इस कारण ज्यों के त्यों रहे। हिन्दुस्तानी बैंकों ने एक दूसरे की सहायता न की, केवल अपना ही अपना लाभ देखा। इसी से उनकी हानि हुई। पीछे से मालूम हुआ कि बहुतेरों की दशा कुछ बुरी नहीं थी और उनके कर्ज़-दारों का कोई नुक़सान नहीं हुआ; पर इस समय जाति-भाइयों को सहायता न मिली, इससे वे डूब गये।

नैतिक क्षमता अनेक प्रकार की है, पर इस लेख में केवल एक ही प्रकार की नैतिक क्षमता का अवधारण दिया गया है।

सारांश यह कि जीवन-संग्राम में जय पाने के लिए शारीरिक, मानसिक और नैतिक तीनों प्रकार की क्षमता मनुष्य, समाज या व्यक्ति को प्राप्त करनी चाहिए।

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) अर्थ बताओ :—सूक्ष्म, स्थूल, समागम, सुरक्षित, अन्य, व्यतीत, अनुभव, स्थिति, विशारद, शोचनीय, उद्योग, अवलोकन, सह-कारिता, क्वचित, अवधारण।

(ख) अर्थान्तर की व्याख्या करो :—अनुकूल—कूल, विचित्र—चित्र, वेतन—तन, सन्निपात—पात, न्यून—नवीन, उदासीन—आसीन, विलक्षण—लक्षण, यश —अपयश।

(ग) इनके पर्यायवाची शब्द बताओ :—पृथ्वी, दुनिया, सिंह।

(घ) निम्नांकित शब्दों से कौन सा विशेष अर्थ प्रगट होता है :—अफ़-गानिस्तान, बंगाली, इतिहास, नाटक, बैंक।

२—भाषा सम्बन्धी—

(ङ) पं० लज्जाशंकर झा की भाषा पर अपने विचार प्रगट करो।

(च) प्रमाणित करो, कि पं० लज्जाशंकर झा की भाषा में उर्दू के शब्द पाये जाते हैं ?

(छ) इस लेख में आने वाले उर्दू शब्दों को हिन्दी में रूपान्तरित करो।

(ज) स्पष्ट भावार्थ लिखो :—

(अ) एक तो मनुष्य के·········कोई लाभ नहीं होता।

(ब) पोलैण्ड देश·········हटना पड़ता है।

३—विचार सम्बन्धी—

(झ) जीवन-संग्राम के लिए क्षमता की क्यों आवश्यकता पड़ा करती है ?

(ञ) क्षमता कितने प्रकार की होती है ? लेखक ने नैतिक क्षमता के सम्बन्ध में क्या लिखा है ?

(ट) जीवन संग्राम में विजय पाने के लिए तुम किस क्षमता को अधिक शक्तिशालिनी समझते हो और क्यों ?

(ठ) सार्थकता प्रमाणित करो :—

(स) केवल शारीरिक बल से किसी जाति का उद्धार नहीं होता।

(द) मनुष्य समाज-प्रिय जीव है।

(ड) संक्षिप्त परिचय दो—डाक्टर रवीन्द्रनाथ, सर जगदीश चन्द्र, द्विजेन्द्रलाल, दुर्गादास।

४—व्याकरण सम्बन्धी :—

(ढ) सविग्रह समास बताओ—सुरक्षित, स्वभावानुकूल, जीवन-संग्राम, राजनीति-विशारद।

(ण) क्या हैं और कैसे बने हैं :—शारीरिक, नैतिक, विस्मित, पारस्परिक, उदासीन।

(त) प्रथम अनुच्छेद की क्रियाओं का वाच्य-परिवर्तन करो।

(थ) पदव्याख्या करो :—समर्थ रहते हैं, यही हाल हो रहा है, राजशक्ति न रही।

(द) अन्तिम अनुच्छेद का वाक्य-विश्लेषण करो।

१४—आप

[लेखक—पं० प्रतापनरायण मिश्र]

वंश-कान्यकुब्जब्राह्मण

जन्मस्थान—कानपुर

जन्म संवत्—१९१३

मृत्यु संवत्—१९५१

परिचय :—आपके पिता एक बहुत बड़े ज्योतिर्विद थे। वे आपको भी ज्योतिष शास्त्र का विज्ञाता बनाना चाहते थे। किन्तु आपका मन ज्योतिष-शास्त्र के अध्ययन में बिलकुल न लगता था। अतः आप अँगरेजी पढ़ने के लिये एक स्कूल में भेजे गये। किन्तु वहाँ भी आपका चित्त न जमा। उन दिनों काशी से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सम्पादकत्व में 'कविवचन-सुधा' नामक एक पत्र प्रकाशित हुआ करता था। उसमें बड़े मनोरंजक गद्य-पद्य मय लेख प्रकाशित हुआ करते थे। उन लेखों का आपके हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा और आप भी गद्य-पद्य लिखने लगे। कानपुर के सुप्रसिद्ध कवि ललताप्रसाद के सहयोग से आपने इस सम्बन्ध में बड़ी उन्नति की। आप स्कूल से अपना पिण्ड छुड़ा कर स्वतंत्र रूप से छन्द शास्त्र का अध्ययन करने लगे। कुछ ही दिनों में आपकी प्रतिभा चमक उठी, और आपने अपने चमत्कारिक गद्य-पद्य मय लेखों से लोगों को विमुग्ध कर लिया। आप 'ललित' जी को अपना गुरु मानते थे। आप प्रकृति के बड़े विनोदी और मौजी थे। हिन्दी-भाषा और देवनागरी लिपि के आप बड़े पक्षपाती थे। सं० १९५१ में, अढ़तीस वर्ष की अवस्था में, आपका देहावसान हो गया।

कार्य :—आपको हिन्दी-समाचार पत्रों से अधिक प्रेम था। १८८३ ई० में आपने 'ब्राह्मण' नाम का एक मासिक पत्र निकाला। दस वर्ष तक यह पत्र बराबर चलता रहा। इसके बाद बन्द हो गया। इस पत्र में आपके सामाजिक, धार्मिक, और राजनैतिक लेख प्रकाशित हुआ करते थे। १८८९ ई० में आप कालाकाँकर से प्रकाशित होने वाले 'हिन्दुस्तान' में चले गये।

परन्तु स्वभाव की स्वच्छन्दता के कारण वहाँ अधिक दिनों तक न रह सके। आपके लिखे हुए बहुत से स्फुट लेख और कवितायें पाई जाती हैं। आपने छोटी-बड़ी बहुत सी पुस्तकें भी लिखी हैं।

शैली :—आपकी शैली मनोरंजक और हास्य प्रिय है। स्थान स्थान पर मुहाविरा के प्रयोग ने एक प्रकार की सजीवता सी उत्पन्न कर दी है। व्यंग्य और हास्य के द्वारा भाषा को चटपटी तथा रोचक बना देना आप ख़ूब जानते थे। आप व्याकरण के नियमों पर बहुत कम ध्यान देते थे। इसी से आप की रचनाओं में देहाती और व्याकरण-विरुद्ध शब्द भी अधिक पाये जाते हैं। विरामों के उचित प्रयोग की ओर आप का ध्यान कम था। विरामों के प्रयोग के अभाव के कारण जहाँ आप की भाषा उलझी हुई है वहाँ आपके विचारों को हृदयंगम करने में एक प्रकार की कठिनाई भी होती है।

मुख्य रचनाएँ निबन्ध नवनीत (संग्रह)। इन्होंने छोटी-छोटी और भी बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं।

भला बताइये तो आप क्या हैं? आप कहते होंगे, वाह आप तो आप ही हैं। यह कहाँ की आपदा आई? यह भी कोई पूछने का ढङ्ग है? पूछा होता कि आप कौन हैं, तो बतला देते कि हम आपके पत्र के पाठक हैं, और आप 'ब्राह्मण' के सम्पादक हैं। अथवा आप पण्डित जी हैं, आप राजा जी हैं, आप सेठ जी हैं, आप लालाजी हैं, आप बाबू-साहब हैं; आप मियाँ-साहब, आप निरे साहब हैं। आप क्या हैं? यह तो कोई प्रश्न की रीति ही नहीं है। वाचक महाशय! यह हम भी जानते हैं कि आप आप ही हैं और हम भी वही हैं, तथा इन साहबों की भी लम्बी धोती, चमकीली पोशाक, खुँटि हुई अँगरखी (मरजई) सीधी माँग, विलायती चाल, लम्बी दाढ़ी और साहबानी हवस ही कहे देती है कि—

"किस रोग की हैं आप दवा कुछ न पूछिये'।

अच्छा साहब, फिर हमने पूछा तो क्यों पूछा? इसीलिये कि देखें आप "आप" का ज्ञान रखते हैं या नहीं? जिस 'आप' को आप अपने लिये तथा औरों के प्रति दिन-रात मुँह पर धरे रहते हैं; वह 'आप' क्या है? इसके उत्तर में आप कहियेगा कि एक सर्वनाम है। जैसे—मैं, तू, हम, तुम, यह, वह, आदि हैं, वैसे ही 'आप' भी है, और क्या है। पर इतना कह देने से न हमीं सन्तुष्ट होंगे न आप ही को शब्द-शास्त्र-ज्ञान का परिचय होगा। इससे अच्छे प्रकार कहिये कि जैसे 'मैं' का शब्द अपनी नम्रता दिखलाने के लिये बिल्ली की बोली का अनुकरण है, 'तू' का शब्द मध्यम पुरुष की तुच्छता वा प्रीति सूचित करने के अर्थ कुत्ते के सम्बोधन की नक़ल है। हम, तुम, संस्कृत के 'अहं' 'त्वं' के अपभ्रंश हैं, यह, वह निकट की वस्तु वा व्यक्ति के द्योतनार्थ स्वाभाविक उच्चारण हैं; वैसे 'आप' क्या है? किस भाषा से किस शब्द का शुद्ध वा अशुद्ध रूप है, और आदर ही में बहुधा क्यों प्रयुक्त होता है?

हजूर की मुलाज़मत से अक्ल ने इस्तीफ़ा दे दिया हो तो दूसरी बात है, नहीं तो आप यह कभी न कह सकेंगे कि "आप लफ़जे-फ़ारसी या अरबीस्त" अथवा "ओः इटिज़ एन इङ्गलिश वर्ड" (Oh ! it is an English word.) जब यह नहीं है तो ख़ाहमख़ाह यह हिन्दी शब्द है, पर कुछ सिर-पैर मूँड़-गोड़ भी है कि यों ही! आप छूटते ही सोच सकते हैं कि संस्कृत में 'आप' कहते हैं जल को, और शास्त्रों में लिखा है कि विधाता ने सृष्टि के आदि में उसी को बनाया था, यथा—"आप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत"—तथा हिन्दी में पानी और फ़ारसी "आब" का अर्थ शोभा अथच प्रतिष्ठा आदि हुआ करता है—जैसे—"पानी उतरिगा तरवारनि का उइ करछुलि के मोल बिकायँ" तथा "पानी उतरिगा रजपूती का उइ फिर बिसुऔ ते (वेश्या से भी) बहि जायँ," और फ़ारसी में "आबरू ख़ाक में मिला बैठे" इत्यादि।

इस प्रकार पानी की ज्येष्ठता और श्रेष्ठता का विचार करके लोग पुरुषों को भी उसी नाम से 'आप' पुकारने लगे होंगे। यह आपका

समझना निरर्थक तो न होगा, बड़प्पन और आदर का अर्थ अवश्य निकल आवेगा, पर खींच-खाँच कर, और साथ ही शंका भी कोई कर बैठे तो अयोग्य न होगा कि पानी के जल, वारि, अम्बु, नीर, तोय इत्यादि और भी तो कई नाम हैं। उनका प्रयोग क्यों नहीं करते, "आप" ही के सुर्खाब का पर कहाँ लगा है! अथवा पानी की सृष्टि सब के आदि में होने के कारण वृद्ध ही लोगों को उसके नाम से पुकारिये तो युक्तियुक्त हो सकता है, पर आप तो अवस्था में छोटों को भी आप-आप कहा करते हैं, यह आपकी कौन सी विज्ञता है। या हम यों भी कह सकते हैं कि पानी में गुण चाहे जितने हों, पर गति उसकी नीच ही होती है। तो क्या आप हमको मुँह से आप-आप करके अधोगामी बनाया चाहते हैं? हमें निश्चय है कि आप 'पानी-दार' होंगे तो इस बात के उठते ही पानी-पानी हो जायँगे और फिर कभी यह शब्द मुँह पर भी न लावेंगे।

सहृदय सुहृदगण आपस में आप-आप की बोली बोलते भी नहीं हैं। एक हमारे उर्दूदाँ मुलाक़ाती मौखिक मित्र बनने की अभिलाषा से आने-जाते थे, पर जब ऊपरी व्यवहार मित्रता का सा देखा तो हमने उनसे कहा कि बाहरी लोगों के सामने की बात न्यारी है, अकेले में अथवा अपनायत वालों के आगे आप-आप न किया करो, इसमें भिन्नता की भिनभिनाहट पाई जाती है। पर वह इस बात को न माने, हमने दो-चार बार समझाया, पर वह 'आप' थे, क्यों मानने लगे! इस पर हमें झुँझलाहट छूटी तो एक दिन उनके आते ही और 'आप' का शब्द मुँह पर लाते ही हमने कह दिया कि आपकी ऐसी-तैसी!! यह क्या बात है कि तुम मित्र बन कर हमारा कहना नहीं मानते? प्यार के साथ तू कहने में जितना स्वाद आता है उतना बनावट से आप-साँप कहो तो कभी सपने में नहीं आने का। इस उपदेश को वह मान गये। सच तो यह है कि प्रेम-शास्त्र में कोई बन्धन न होने पर भी इस शब्द का प्रयोग बहुत ही कम वरंच नहीं के बराबर होता है।

हिन्दी की कविता में हमने दो ही कवित्त इससे युक्त पाये हैं, एक

तो "आप को न चाहे ताके बाप को न चाहिये" पर यह न तो किसी प्रतिष्ठित ग्रन्थ का है और न इसका आशय स्नेह-सम्बन्ध है। किसी जले-भुने कवि ने कह मारा हो तो यह कोई नहीं कह सकता कि कविता में भी "आप" की पूछ है। दूसरी घनानन्दजी का यह सवैया है—"आपहि तो मन हेरि हरो तिरछे करि नैनन नेह के चाव में" इत्यादि। पर यह भी निराशापूर्ण उपालम्भ है, इससे हमारा यह कथन कोई खण्डन नहीं कर सकता कि प्रेम-समाज में "आप" का आदर नहीं है, "तू" ही प्यारा है।

संस्कृत और फ़ारसी के कवि भी 'त्वं' और 'तू' के आगे 'भवान' और 'शुमा' (तू का बहुवचन) का बहुत आदर नहीं करते। पर इससे आप को क्या मतलब? आप अपनी हिन्दी के 'आप' का पता लगाइये, और न लगे तो हम बतला देंगे।

संस्कृत में एक "आप्त" शब्द है, जो सर्वथा माननीय अर्थ में ही आता है, यहाँ तक कि न्याय-शास्त्र में प्रमाण-चतुष्टय (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द) के अन्तर्गत शब्द-प्रमाण का लक्षण ही यह लिखा है कि "आप्तोपदेशः शब्दः" अर्थात् आप्त पुरुष का वचन प्रत्यक्षादि प्रमाणों के समान ही प्रामाणिक होता है। या यों समझ लो कि आप्त जन प्रत्यक्ष, अनुमान और उपमान प्रमाण से सर्वथा प्रमाणित ही विषय को शब्द-बद्ध करते हैं। इससे जान पड़ता है कि जो सब प्रकार की विद्या, बुद्धि, सत्य-भाषणादि सद्गुणों से संयुक्त हो, वह आप्त है। और देवनागरी (हिन्दी) भाषा में आप्त शब्द सब के उच्चारण में सहजतया नहीं आ सकता, इससे उसे सरल करके आप बना लिया है, और मध्यम पुरुष तथा अन्य पुरुष के अत्यन्त आदर-द्योतन करने में काम आता है। 'तुम बहुत अच्छे मनुष्य हो' और 'यह बड़े सज्जन हैं'—ऐसा कहने से सच्चे मित्र, बनावट के शत्रु चाहे जैसे "पुलक प्रफुल्लित-पूरित गाता" हो जायँ, पर व्यवहार-कुशल लोकाचारी पुरुष तभी अपना उचित सम्मान समझेंगे, जब कहा जाय कि "आपका क्या कहना है, आप तो बस सभी बातों में एक ही हैं" इत्यादि।

अब तो आप समझ गये होंगे कि आप कहाँ के हैं, कौन हैं, कैसे, हैं. यदि इतने बड़े बात के बतंगड़ से भी न समझे हों तो इस छोटे-से कथन में हम क्या समझा सकेंगे कि 'आप' संस्कृत के 'आप्त' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है, और माननीय अर्थ के सूचनार्थ उन लोगों (अथवा एक ही व्यक्ति) के प्रति प्रयोग में लाया जाता है जो सामने विद्यमान हों, चाहे बातें करते हों, चाहे बातें करने वालों के द्वारा पूछे—बताये जा रहे हों, अथवा दो व अधिक जनों में जिनकी चर्चा हो रही हो। कभी-कभी उत्तम पुरुष के द्वारा भी इसका प्रयोग होता है, वहाँ भी शब्द और अर्थ वही रहता है; पर विशेषता यह रहती है कि एक तो तब कोई अपने मन से आप को (अपने-तई) आप ही (आप्त ही) समझता है और विचार कर देखिये तो आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता या तद्रूपता कहीं लेने भी नहीं जाना पड़ता, पर वाह्य व्यवहार में अपने को आप कहने से यदि अहंकार की गंध समझिये तो यों समझ लीजिये कि जो काम अपने हाथ से किया जाता है, और जो बात अपनी समझ स्वीकार कर लेती है उसमें पूर्ण निश्चय अवश्य ही हो जाता है, और उसी के विदित करने को हम और आप, तथा वह एवं वे कहते हैं कि 'हम आप कर लेंगे' अर्थात् कोई सन्देह नहीं है कि हमसे वह कार्य सम्पादित हो जायगा, 'हम आप जानते हैं' अर्थात् दूसरे के बतलाने की आवश्यकता नहीं है, इत्यादि।

महाराष्ट्रीय भाषा के 'आपाजी' भी उन्नीस बिस्वा आप्त और आर्य के मिलने से इस रूप में हो गये हैं, तथा कोई माने वा न माने, पर हम मना सकने का साहस रखते हैं कि अरबी के 'अब्ब' (पिता, बोलने में अब्बा) और यूरोपीय भाषाओं के 'पापा' (पिता) 'पोप' (धर्म-पिता) आदि भी इसी आप्त से निकले हैं। हाँ, इसके समझने-समझाने में भी जी ऊबे तो अँगरेजी एबाट (Abot महंत) तो इसके हई हैं, क्योंकि उस बोली में ह्रस्व और दीर्घ दोनों आकार का स्थानापन्न A है, और 'पकार' को बकार से बदल लेना कई भाषाओं की चाल है। रही टी (t) सो वह तो तकार हई है। फिर

क्या न मान लीजियेगा कि 'एबाट' साहब हमारे 'आप' वरंच शुद्ध 'आप्त' से बने हैं।

हमारे प्रान्त में बहुत से उच्च वंश के बालक भी अपने पिता को अप्पा कहते हैं, उसे कोई-कोई लोग समझते हैं कि मुसलमानों के सहवास का फल है, पर यह उनकी समझ ठीक नहीं है, मुसलमान भाइयों के लड़के कहते हैं अब्बा, और हिन्दू-सन्तान के पक्ष में 'बकार' का उच्चारण तनिक भी कठिन नहीं होता, यह अँगरेज़ों की 'तकार' और फ़ारस वालों की 'टकार' नहीं है कि मुँह ही से न निकले, और सदा 'मोती' का 'मोटो' अर्थात् स्थूलाङ्ग स्त्री और खस की टट्टी का 'तत्ती' अर्थात् गरम हो जाय! फिर अब्बा को अप्पा कहना किस नियम से होगा! हाँ, आप्त से आप और 'अप्पा' तथा 'आपा' की सृष्टि हुई है, उसी को अरब वालों ने 'अब्बा' में रूपान्तरित कर लिया होगा, क्योंकि उनकी वर्णमाला में 'पकार' (पे) नहीं होता, सौ-बिस्वा बप्पा, बाप, बापू, बब्बा, बाबा, बाबू आदि भी इसी से निकले हैं, क्योंकि जैसे एशिया की कई बोलियों में 'पकार' को 'बकार' व 'फ़कार' से बदल लेते हैं, जैसे—पादशाह—बादशाह और पारसी—फ़ारसी आदि, वैसे ही कई भाषाओं में शब्द के आदि में बकार भी मिला देते हैं, जैसे—वक्ते-शब—बवक्ते-शब तथा तंग आमद—बतंग आमद इत्यादि, और शब्द के आदि का ह्रस्व अकार का लोप भी हो जाता है; जैसे—अमावस का मावस (सतसई आदि ग्रन्थों में देखो), ह्रस्व आकारान्त शब्दों में अकार के बदले ह्रस्व वा दीर्घ उकार भी हो जाती है, जैसे—एक—एकु, स्वाद—स्वादु, आदि अथच ह्रस्व को दीर्घ, दीर्घ को ह्रस्व अ, इ, उ आदि वृद्धि वा लोप भी हुआ ही करता है, फिर हम क्यों न कहें कि जिन शब्दों में अकार और पकार का संपर्क हो एवं अर्थ से श्रेष्ठता की ध्वनि निकलती हो, वह प्रायः समस्त संसार के शब्द 'आप्त' महाशय वा 'आप' ही के उलट-फेर से बने हैं।

अब तो आप समझ गये न, कि आप क्या हैं? अब भी न

समझो तो हम नहीं कह सकते कि आप समझदारी के कौन हैं! हाँ, आप ही को उचित होगा कि दमड़ी-छदाम की समझ किसी पंसारी के यहाँ से मोल ले आइये, फिर आप ही समझने लगियेगा कि आप "कौन हैं? कहाँ के हैं? कौन के हैं?" यदि यह भी न हो सके और लेख पढ़ के आपे से बाहर हो जाइये, तो हमारा क्या अपराध है? हम केवल जी में कह लेंगे "शाब! आप न समझो तो आपाँ को के पड़ी छै"। ऐं! अब भी नहीं समझे? वाह रे आप!

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) अर्थ बताओ—अनुकरण, स्वाभाविक, द्योतनार्थ, प्रयुक्त, अथच, निरर्थक, अम्बु, सृष्टि, विज्ञता, अधोगामी, सम्बद्ध, उपालम्भ, अन्तर्गत, आप्त, विद्यमान, वाह्य, सम्पादित, रूपान्तरित, लोप, सम्पर्क।

(ख) अर्थान्तर की व्याख्या करो :—पोशाक—शाक, युक्ति—युक्त, व्यवहार—हार, द्योतन—तन, विद्यमान—मान, वरंच—रंच।

(ग) निम्नांकित मुहाविरों का सार्थक प्रयोग करो—मुँह पर धरना, जला भुना, सभी बातों में एक होना, बात के बतंगड़, उलट-फेर होना, दमड़ी छदाम की समझ, आपे से बाहर होना।

२—भाषा सम्बन्धी—

(घ) प्रतापनारायण मिश्र की भाषा पर अपने विचार प्रगट करो।

(ङ) साधारण प्रमाणित करो कि प्रतापनारायण मिश्र व्याकरण के नियमों पर कम ध्यान देते थे।

(च) रचना में विरामों का प्रयोग क्यों अधिक आवश्यक समझा जाता है?

(छ) इस लेख में आने वाले उर्दू शब्दों को हिन्दी में रूपान्तरित करो।

(ज) स्पष्ट भावार्थ समझाओ :—

(अ) इससे अच्छे प्रकार ""...उच्चारण हैं।

(ब) संस्कृत में आप ...... शब्द बद्ध करते हैं ।

(स) विचार कर देखिये .... सम्पादित हो जायगा ।

३—विचार सम्बन्धी—

(झ) इस लेख का सारांश अपनी भाषा में लिखो ।

(ञ) इस लेख की लेखन-शैली में तुम्हें कौन-सी विचित्रता परिलक्षित होती है ?

(ट) 'आप' शब्द के सम्बन्ध में लेखक की सूक्ष्म विवेचना बताओ ।

(ठ) 'आप' कितने रूपों में प्रयुक्त हो सकता है ? प्रत्येक रूप का एक एक उदाहरण दो ।

(ड) इस लेख से विदेशी भाषा के कुछ शब्दों को छाँट कर यह प्रमाणित करो, कि उनमें 'आप' की ही प्रतिच्छाया है ।

४—व्याकरण सम्बन्धी—

(ढ) सविग्रह समास बताओ :—शब्द-शास्त्र-ज्ञान, युक्तियुक्त, स्नेह सम्बद्ध, सदगुण, पुलक-प्रफुल्लित-पूरित गाता ।

(ण) इनके मूल शब्द बताओ, तथा बनने के नियम लिखो—सूचित, स्वाभाविक, मौखिक, नैराश्य, प्रमाणित, पुलकित, लोकाचारी ।

(त) निम्नांकित शब्दों के साथ विभिन्न उपसर्गों को जोड़ कर नवीन शब्द बनाओ :—युक्त, मान, फुल्ल ।

(थ) बताओ कैसी क्रियाएँ हैं—इनके रूप संदिग्ध-भूत, आसन्न भूत, और विधि में लिखो :—समझने-समझाने, समझ लीजिए, उतरिगा ।

(द) विशेषण या अन्य संज्ञाएँ बना कर प्रयुक्त करो :—उठना, आपस, अवश्य ।

(ध) निम्नांकित शब्दों को खड़ी बोली में रूपान्तरित करो—सहजतया, हुई हैं, हमीं कान के, मूँड़-गोंड़ ।

(न) वाक्य-विश्लेषण करो—

(प) सच तो यह है कि ...... बराबर होता है ।

(फ) पर यह निराश-पूर्ण ...... प्यारा है ।

१५—आकाश-गंगा

[लेखक—श्रीयुत रामदास गौड़]

वंश—कायस्थ

जन्मस्थान—जौनपुर

जन्म संवत्—१९३८

मृत्यु संवत्—१९९५

परिचय—आप हिन्दी-साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान् और सुलेखक थे। बचपन ही से आपको रामचरित मानस से अधिक प्रेम था। आपकी माता नियमित रूप से प्रति दिन रामायण का पाठ किया करती थीं। उनके इस जीवन का आप के हृदय पर भी अत्यधिक प्रभाव पड़ा, और आप भी रामायण के अनन्य प्रेमी बन गये। आपने रामायण का योग्यतापूर्ण सम्पादन किया, तथा उसकी सुन्दर और सुविस्तृत भूमिका भी लिखी है। आप अँगरेज़ी, संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी, बँगला, इत्यादि कई भाषाओं के विज्ञाता थे। संवत् १९६५ में आपने प्रयाग के सेन्ट्रल कालेज से रसायन में एम० ए० की परीक्षा पास की। संवत् १९७५ में आप काशी विश्व-विद्यालय में रसायन के प्रोफेसर हो गये। संवत् १९७० में असहयोग का आन्दोलन प्रारंभ हुआ और आपने उसीसे प्रभावित होकर नौकरी छोड़ दी। आप काशी में रहते और स्वतंत्र रूप से साहित्य की सेवा करते थे।

आप बड़े सरल और सादगी-पसन्द व्यक्ति थे। स्त्री शिक्षा के आप बहुत बड़े पक्षपाती थे। स्त्रियों और बालिकाओं के लिये आपने कई उपयोगी पुस्तकें भी लिखी हैं।

कार्य—आप विज्ञान-शास्त्र के विशेष विज्ञाता थे। आप ही के द्वारा हिन्दी में विज्ञान-साहित्य की अभिवृद्धि भी हुई। विज्ञान सम्बन्धी अँगरेज़ी के कठिन शब्दों के लिये आपने हिन्दी शब्दों की रचना भी की। प्रयाग में विज्ञान की उन्नति के लिए विज्ञान-परिषद की स्थापना के सम्बन्ध में आपने अधिक उद्योग किया। आप ही के उद्योग से उक्त परिषद ने 'विज्ञान' नाम का एक मासिक पत्र निकाला था, जो इस समय भी सुचारु

रूप से चल रहा है। बहुत दिनों तक यह पत्र केवल आप ही की देख-रेख में निकलता रहा है। अन्तिम समय में भी इस पत्र के प्रधान संपादकों में आपका नाम था। आपने विज्ञान, ज्योतिष, और हिन्दू धर्म के ऊपर सैकड़ों स्फुट लेख लिखे हैं।

शैली—आपकी शैली बड़ी सरल और सुबोध है। वैज्ञानिक विषयों के लिए जैसी उपयुक्त भाषा आपकी है वैसी किसी दूसरे वैज्ञानिक लेखक की नहीं। आप विज्ञान के गूढ़ तत्वों को भी सरल और सुलझी हुई भाषा में व्यक्त करते थे।

रचनाएँ—१ रामचरित मानस की भूमिका, २ विज्ञान-प्रवेशिका, ३ स्वास्थ्य साधन, ४ भारी भ्रम, ५ रामचरित मानस (सम्पादित)।

अद्भुत दृश्य

तारों भरी रात के स्वच्छ नीले आकाश की शोभा किसने देखी है। यह नित्य का एक ही प्रकार का मनोमोहक दृश्य जगत् के जन्म से आज तक मनुष्य देखता है, परन्तु उसका जी उससे कभी नहीं ऊबा। इस दृश्य को देख-रेख महामूर्ख से लेकर उद्भट विद्वान् तक आश्चर्य-चकित होते रहे हैं। ज्योतिषी अपनी दूर गामिनी दृष्टि से बहुत-कुछ थाह लगाने की कोशिश करते आये। वर्त्तमान युग में बड़े-से बड़े और सूक्ष्म से सूक्ष्म यन्त्रों से काम लेकर भी उन्हें एक ही बात मालूम हुई कि विश्व अनादि, अनन्त है, उसका जानना हमारी शक्ति के बाहर है। इसमें शक नहीं कि उन्होंने यन्त्रों के सहारे अधिकाधिक जाना, पर साथ-ही-साथ उनके अज्ञान की परिधि उनकी जानकारी की अपेक्षा अधिकाधिक विस्तीर्ण होती गयी। उन्होंने विशेष-रूप से यह जान पाया कि हमने जो कुछ जाना है, वह हमारी अनन्त बेजानी हुई बातों के सामने शून्य की बराबरी भी नहीं रखता।

इसी अनन्त आकाश-मण्डल के दृश्यों में सबसे अद्भुत और विस्मयकारी दृश्य 'आकाश गंगा' है। इसे बहुत-से लोग 'डहर' कहते हैं। अँगरेजी में इसका नाम क्षीरायण (मिल्की वे) है।

देखने में यह गिरा हुआ दूध-सा लगता है, जिसमें असंख्य तारे प्राचुर्य्य से पड़े हुए हैं और धारा के किनारे छिटके हैं। धारा से जितनी दूर होते जाते हैं, उतने ही तारे विरल दीखने हैं। इसका प्रवाह उत्तर की ओर से लेकर दक्खिन की ओर गया है। परन्तु आकाश-गंगा देखने में दो धाराओं में गई दीखती है। एक तो आज कल रात्रि के प्रथम प्रहर में दीखती है और दूसरी अन्तिम प्रहर में। दूसरी ईशान से नैऋत्य कोण की ओर जाती हुई दीखती है। उसकी दशा पहली से नहीं मिलती। परन्तु ज्योतिषियों ने इस पर पूरा विचार करके निर्णय किया है कि वास्तव में आकाश-गंगा एक ही है, जो दक्षिण-उत्तर होकर आकाश के दोनों कटाहों में प्रायः गोलाकार घूम गई है और पृथ्वी के घूमते रहने से उसका एक खण्ड एक बार और दूसरा खण्ड दूसरी बार दिखाई पड़ता है। इन्हीं खण्डों में आकाश-मण्डल में हमको दिखाई देनेवाले अधिकांश तारे स्थित हैं।

अनन्त दूरी

देखने में तो असंख्य तारे परस्पर सटे-से लगते हैं, परन्तु यह दृष्टि-भ्रम है। आधुनिक पाश्चात्य ज्योतिर्विदों ने पता लगाया है कि इनमें एक-दूसरे की दूरी अरबों मीलों की हो सकती है; और हमारी तो इनसे इतने मीलों की दूरी है कि उतनी संख्या लिखने में भी नहीं आ सकती। जिन तारों की दूरी ऐसी संख्यातीत है, फिर शब्दों में उसे व्यक्त करने का भी कुछ उपाय है? हाँ, वैज्ञानिकों ने उसके लिए एक युक्ति निकाली है। भौतिक विज्ञानवालों के रश्मिमापक यंत्र के द्वारा यह पता लगता है कि प्रकाश का वेग एक सेकंड में एक लाख छियासी हज़ार मील है अर्थात् सूर्य से प्रकाश हमारे पास जो लगभग सवा नौ करोड़ मील चलकर आता है वह प्रति सेकंड एक लाख छियासी हज़ार मील के वेग से चलकर आता है। इस यात्रा में इसीलिए उसे आठ मिनटों से कुछ अधिक लगते हैं। अब हम सूर्य की दूरी सवा नौ करोड़ मील न कह कर सवा आठ प्रकाश मिनट कहें तो भी कुछ समझ में आने का आधार मिल जाता है।

कहने में लाघव भी होता है। अब मान लीजिए कि किसी तारे की दूरी ऐसी हो कि उससे प्रकाश के आने में आठ मिनटों के बदले आठ घंटे लगते हों या आठ दिन लगते हों या आठ महीने लगते हों या आठ वर्ष ही लगते हों, तो हम सहज ही में उनकी दूरी के परिमाण को प्रकाश के आठ घण्टों, दिनों, मासों या वर्षों में व्यक्त कर सकते हैं। आठ वर्षों में जिस तारे से प्रकाश आता है, उसकी दूरी हम से पौने पाँच नील मीलों के लगभग होगी, परन्तु आठ हज़ार वर्षों में प्रकाश जहाँ से आता होगा, वहाँ की दूरी हम से पौने सैतालिस पद्म मीलों के लगभग होगी परन्तु तारे तो इतनी दूरी पर हैं, कि उनसे प्रकाश के आने में लाखों बरस का समय लग सकता है। तब मीलों की गिनती में तो न उसे ला सकते हैं और न कुछ समझ में ही आ सकता है।

अब मान लो कि कोई तारा इतनी दूरी पर है कि उससे उसकी सृष्टि होने के समय से लेकर अब तक प्रकाश पृथ्वी पर नहीं पहुँचा है और सृष्टि के समय जो चमक उसमें पैदा हुई थी, जो दृश्य उस समय हमारे देखने में आता, वह आज हमको देख पड़े; और मान लो कि प्रकाश पाँच हज़ार वर्षों में वहाँ से यहाँ तक की यात्रा करता है, तो जो चमक और भभक हम आज देखते हैं, वह वस्तुतः आज से पाँच हजार बरस पहले की घटना है। हमने जैसी घटना का उदाहरण लिया है, वैसी घटनाएँ घटती रहती हैं और दूरवीक्षण-यन्त्र से ज्योतिर्विद् ये तमाशे देखा करते हैं।

ज्योतिर्विद् सचमुच त्रिकालज्ञ हैं

आजकल का ज्योतिषी अपने यन्त्र-मन्दिर में बैठा आकाश-मण्डल के तमाशे देखता रहता है। वह जब किसी नये तारे वा नये सूर्य्य का बनना देखता है तो असल में एक नये ब्रह्माण्ड की सृष्टि का तमाशा देखता है। इसी तरह वह कभी-कभी ब्रह्माण्डों के महा प्रलय का तमाशा भी देखता है। इस दूरवीक्षण-यन्त्र के सहारे आज इस वर्तमान काल में अपनी प्रयोग-शाला या मान-मन्दिर में बैठे ही बैठे

एक वैज्ञानिक वे वे दृश्य दूर से देखा करता है, जो हमारे ब्रह्माण्ड के भूत काल में दो-तीन करोड़ बरसों पहले हुए होंगे ; जिनको देखने के लिए कोई मनुष्य मनुष्य के चोले में उस समय मौजूद नहीं हो सकता,—जिन्हें देखने को मार्कण्डे ऋषि-सा चिरजीवी भी समर्थ नहीं हो सकता। वह जब किसी ब्रह्माण्ड के महा प्रलय का दृश्य देखता है, तब वह वस्तुतः हमारे ब्रह्माण्ड के उस भविष्य दृश्य का दिग्दर्शन करता है, जो अब से हिन्दुओं की गणना के अनुसार चार अरब तीस करोड़ बरसों में देख पड़ेगा। जो ऐसे सुदूर भविष्य और इतने सुदूर भूतकाल के तमाशे अपनी आँखों से देख सके और वर्तमान काल की हमारी परिस्थिति न केवल अपने ब्रह्माण्ड में, बल्कि अपने विश्व में समझ सके, उस मनुष्य को हम त्रिकालज्ञ कहें तो एक प्रकार से अनुचित न होगा और दूरबीन को हम त्रिकालदर्शी यन्त्र कहें तो भी उचित ही है। किसी मनुष्य के जीवन की घटनाएँ बताना भी वैसी ही बात है, जैसे ब्रह्माण्ड के त्रिकाल की घटनाएँ बताना। भेद पिण्ड और ब्रह्माण्ड का ही रह जाता है।

अनन्त देश, अनन्त काल, अनन्त विश्व

अनन्त दूरी जिस आकाश के भीतर है वह अनन्त देश है। जिस विश्व में नित्य ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय की कहानी दुहराई जाती है, उसके महा प्रलय वा महोत्पत्ति का काल क्या है, यह अचिन्त्य है, अनन्त है। फिर विश्व भी एक दो हों तो कुछ कहा जाय, विश्व भो तो अनन्त हैं। उनकी आदि न जानने से हम उसे अनादि कह सकते हैं। फिर मध्य का निर्णय किस परिमाण से हो? अर्थात् यह विश्व-विराट् अवश्य ही देश और काल के अतीत और अपरिमित है। अब विश्वों और ब्रह्माण्डों की पुराणवत् नयी कथा सुनिये।

आकाश-गङ्गा के तारे इतनी दूरी पर हैं कि उनकी दूरी प्रकाश-वर्षों में भी गिनना कठिन है। उनकी आपस की दूरी भी ऐसी ही भयानक है। जब सटे हुए तारों की यह दशा है तब उन तारों की

चर्चा ही क्या है, जो आकाश-गङ्गा के बाहर दूर-दूर पर स्थित हैं। आधुनिक ज्योतिर्विद् कहते हैं कि आकाश-गङ्गा एक विश्व है, जिसमें असंख्य ब्रह्माण्ड हैं; और हर एक टिमटिमाता तारा अपने अपने ब्रह्माण्ड का नायक सूर्य्य है, हम जो छोटे-छोटे तारे देखते हैं वे वास्तव में बड़े-बड़े सूर्य्य हैं, जिनमें से अनेकानेक इतने बड़े हैं कि जिनके सामने हमारे सूर्य्य का महापिण्ड एक रेणु के बराबर भी नहीं ठहरता। हम इस तरह असंख्य ब्रह्माण्डों के नायकों के दर्शन करते हैं। हमारे ब्रह्माण्ड की स्थिति इसी आकाश-गङ्गा के मध्य आकाश में है।

एक तारे से दूसरे तक की दूरी अपार है। तात्पर्य यह है कि ब्रह्माण्ड-ब्रह्माण्ड बड़ी-बड़ी दूरियों पर बसे हैं। नायक की परिक्रमा करने वाले ग्रहों को लेकर बड़े वेग से आकाश-देश में निरन्तर चक्कर लगाते रहने वाले ब्रह्माण्ड आपस में टकरा नहीं सकते। दो ब्रह्माण्डों के बीच की दूरी ऐसी भयानक होती है। हमारा ब्रह्माण्ड भी और ब्रह्माण्डों से बिलकुल अलग अनन्त आकाश देश में बड़े वेग से घूम रहा है। इस समय जिस दिशा में चल रहा है वह तो अभिजित् नक्षत्र की दिशा, परन्तु ढङ्ग से मालूम होता है कि यह ब्रह्माण्ड कृत्तिका नक्षत्र की परिक्रमा करता होगा।

देखने में हमारा सूर्य्य, लुब्धक, अगस्त्य, अग्नि आदि अनेक तारे आकाश-गङ्गा से दूर जान पड़ते हैं परन्तु कोई आश्चर्य की बात न होगी यदि ये सभी स्वतन्त्र तारे आकाश-गङ्गा के ही अन्तर्गत हों परन्तु हमारी स्थिति के कारण ही ये आकाश-गङ्गा से पृथक् से लगते हैं। हमारा ब्रह्माण्ड तो आकाश-गङ्गा के मध्य में ही कहीं अनुमित होता है, यद्यपि सूर्य्य आदि पिण्डों की स्थिति देखने से ऐसा जल्दी तो समझ में नहीं आता।

नीहारिकाएँ, विश्वदर्शन

बिलकुल स्वच्छ नीले आकाश में जैसे दूध-सी फैली हुई सफेदी आकाश-गङ्गा में दीखती है, वैसे ही दूध से धब्बे कहीं-कहीं और

भी दीखते हैं। उदाहरण के लिये मृगशिरा नक्षत्र वाले उस भाग को देखिये, जिसमें तीन-तीन तारे एक रेखा में तीर की तरह सीधे पड़ जाते हैं। इनमें से एक का बीच वाला तारा तारा नहीं मालूम होता बल्कि दूध के बड़े से धब्बे सरीखा दीखता है। दूरबीन से देखने पर तो इस अनन्त आकाश में ऐसे हज़ारों-लाखों दूधिये तारा-मण्डल दीखते हैं, जिनका आकार कुण्डली-सा फिरा हुआ लगता है । ज्योतिषियों ने इनका नाम "नीहारिका" रखा है। ये नीहारिकाएँ अनन्त और कल्पनातीत दूरी पर हैं। कहा जाता है कि हमारी आकाश-गङ्गा भी एक नीहारिका है। नीहारिकाएँ कुण्डली के आकार की होती हैं। यह आकाश-गङ्गा कुण्डली के आकार की है। मानो कोई अजगर कुण्डली मार कर लेटा हो। जिन नीहारिकाओं को हम आकाश-गङ्गा से दूर बहुत छोटे आकार में, देखते हैं, बहुत सम्भव है कि उनका विस्तार और आयतन हमारी आकाश-गङ्गा से भी अधिक हो। वर्त्तमान ज्योतिर्विदों का अनुमान है कि एक-एक नीहारिका एक-एक विश्व है, जिसके अन्तर्गत अनन्त ब्रह्माण्ड हैं। दूरवीक्षण-यन्त्र से इस तरह की अनेक नीहारिकाएँ देखने में आई हैं जो एक दूसरे की आड़ में छिप रही हैं। अतः दूरबीन के सहारे हम हज़ारों-लाखों विश्वों का दर्शन कर सकते हैं परन्तु दूरबीन की शक्ति भी परिमित है। ऐसा अनुमान हो सकता है कि इन विश्वों के सिवा असख्य विश्व होंगे और हर एक में असंख्य ब्रह्माण्ड !! आकाश की तो कोई सीमा नहीं है; परन्तु हमारे यन्त्रों की शक्ति तो असीम नहीं है और जिन इन्द्रियों की सहायता के लिए यह यन्त्र हैं, वे तो परिच्छिन्न हैं हीं। हम आकाश-मण्डल में जो इतनी नीहारिकाएँ दूर-दूर पर देख भी पाते हैं तो वास्तव में अपने आकाश-गङ्गा वाले विश्व के भीतर से, अनन्त देश के असीम झरोखों से, अपने विश्व की सीमा के बाहर के अनन्त असीम आकाश-देश में स्थित और विश्वों के दर्शन करते हैं। इसमें हमें कुछ थोड़े-से विश्व, थोड़ी-सी नीहारिकाएँ दीखती हैं। इस विश्व के महा मन्दिर से बाहर निकल कर अपरिच्छिन्न दृष्टि से देखने का साधन कहीं उपलब्ध होता, तो हम अनन्त

विश्वों के दर्शन कर सकते और तब तो हमारी आकाश-गङ्गा जो समस्त व्योममण्डल को घेरे हुए दीखती है, कहीं एक वैसे ही मेघबिन्दु सरीखी दीखती जैसी कि हम मृगशिरा नक्षत्र वाली नीहारिका को देख पाते हैं। और यदि ऐसा सम्भव होता कि हम दो नीहारिकाओं या विश्वों के अनन्त अन्तराल देश में अपने को स्थित पाते, तो उस समय आकाश का दृश्य हमारे लिये नितान्त भिन्न होता। आकाश में एक भी आकाश-गङ्गा न दीखती। जो नक्षत्र जिस प्रकार आज हम देखते हैं, वे तो शायद कहीं देख न पड़ते या असंख्य नीहारिकाओं के नीहार में छिप जाते। साथ ही अनेक नये जाज्वल्यमान नक्षत्र और तारे नये-नये स्थानों में दिखाई पड़ते। सप्तर्षि और ध्रुव का कहीं पता न लगता कि कहाँ गये। शिशुमार-चक्र लुप्त हो जाता। इन्द्रमाता का रङ्ग बदल जाता। दक्ष की सत्ताईसों कन्याएँ अन्तर्हित हो जातीं और चन्द्रमा और सूर्य्य कहीं ढूँढ़े न मिलते। अग्नि ? ओः ! अग्नि का तो कहीं पता न होता ! वह अनन्त शीत होता, जो कल्पना में भी नहीं लाया जा सकता। ठीक वही दशा होती कि —

न तद् भासयते सूर्य्यो न शशांको न पावकः
यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते तद् धाम परम मम।

(गीता)

सचमुच आज वैज्ञानिक भी कहेगा कि उस परम धाम को पहुँचना ही असम्भव है और जो कदाचित् पहुँचा भी तो उसका लौटना तो किसी प्रकार हो ही नहीं सकता।

ऐसी अद्‌भुत अनन्तता, विचित्र अनादिता, और विस्मयकारी अभव्यता जिस विराट् पुरुष के अन्दर है उसके "पादोऽस्य विश्वा भूतानि"—एक चौथाई में ही सारे विश्वों की यह सृष्टि है !!!

नीहारिकाओं की विशेषता

इस सृष्टि में नीहारिकाएँ अत्यन्त विचित्र वस्तु हैं। वह सफ़ेद-सफ़ेद दूधिया-सा पदार्थ, जो बादल या कुहासे-सा फैला दीखता

है, वस्तुतः क्या है? प्रायः सभी नीहारिकाएँ कुण्डली के आकार में लहराते हुए कुण्डली बाँधे साँपों के रूप में क्यों हैं? ये दो प्रश्न बड़े ज़बर्दस्त हैं जो वैज्ञानिकों को बड़े पेंच में डाले हुए हैं। उस दूधिया पदार्थ के सम्बन्ध में तो कई तरह के अनुमान किये गये हैं। जे० जे० टामसन सबसे ज़बर्दस्त वैज्ञानिक समझे जाते हैं। उनका अनुमान है कि यह दूधिया पदार्थ वे सूक्ष्म विद्युत्कण हैं, जिनके संयोग से स्थूल संसार के विविध प्रकार के परमाणु बनते हैं। नीहारिकाओं में प्रकृति अपनी मूल दशा में है, परमाणु बनने की नौबत नहीं आई है। इसी से इस दूधिया पदार्थ में अव्याहतता है। इसके आर-पार रश्मियों के प्रवेश में तनिक भी व्याघात नहीं पड़ता; और यह पदार्थ कितना पसरा हुआ है, कुछ ठिकाना है! आकाश-गङ्गा का दूधिया पदार्थ भी वही है। दूर से अनन्त विस्तार को इकट्ठे घने रूप में देखने से दूध-सा दमक दीखता है, परन्तु पास से विरल फैलाव में यह दमक बिल्कुल नहीं दीखेगा, क्योंकि यह पदार्थ अत्यन्त विरल रूप में फैला हुआ है। हमारा ब्रह्माण्ड भी आकाश-गङ्गा के इसी दूधिया पदार्थ के सागर में कहीं है, परन्तु पास का दूधिया पदार्थ विरल फैलाव में होने से नहीं दीखता। नहीं तो बहुत सम्भव है कि हम भी इसी दूध के सागर में हों।

यही दूधिया पदार्थ अनन्त शक्ति को सञ्चालित करके जब परमाणु बनता है और जब परमाणुओं का प्रचण्ड भ्रमण और सञ्चालन होने लगता है, तब इसी सर्प की कुण्डली के आकार में सतत भ्रमण करते-करते ही पदार्थ में घनता आती है। जितने अधिक और वर्धमान वेग से परमाणुओं में भ्रमण होता है, उतनी ही घनता अधिकाधिक बढ़ती है। इसी तरह क्रम से करोड़ों बरसों में अनेक पिण्ड तैयार हो जाते हैं, जो ठीक उसी तरह चक्कर लगाते हैं, जिस तरह परमाणुओं में विद्युत्कण और अणुओं में परमाणु। इसी तरह नीहारिका के अन्दर ब्रह्माण्ड बन जाते हैं और उसकी अनन्त कुण्डली के किसी सूक्ष्म भाग में वे ब्रह्माण्ड भी चक्कर मारने

लगते हैं। नीहारिका एक स्वतन्त्र विश्व है। ब्रह्माण्ड उसमें असंख्य हैं। अनेक नीहारिकाएँ अभी ब्रह्माण्ड बना रही हैं, अनेक बना चुकी हैं, अनेक बिगाड़ रही हैं। ब्रह्माण्डों की उत्पति और विनाश, दोनों हर नीहारिका के भीतर हो रहे हैं; परन्तु यह कोई नहीं समझ सकता कि कभी नीहारिका का भी आरम्भ या अन्त होता है।

उपसंहार

हमारी आकाश-गङ्गा भी ऐसी ही एक नीहारिका है, जिसमें हमारे जैसे असंख्य ब्रह्माण्ड हैं। अनेक बन चुके हैं। अनेक बन रहे हैं। अनेक भविष्य के गर्भ में निहित हैं। हमारे ब्रह्माण्ड में भी अनेक ग्रह हैं, जो हमारी पृथ्वी सरीखे बड़े-बड़े पिण्ड हैं। कई संसार-रचना की तैयारी में हैं, कई के संसार संसरण कर रहे हैं, कई के संसार अपनी पूर्णायु भोग कर अपनी यात्रा, की सीमा की ओर चल रहे हैं और कई सीमा पर पहुँच कर यात्रा पूरी कर चुके हैं। हमारी धरती ने अभी अपना जीवन आरम्भ किया है। अनेक वैज्ञानिकों के मत से इसके जीवन मय जीवन के कुछ ऊपर दो करोड़ बरस हुए होंगे। हिन्दुओं का भी ऐसा ही मत है। वे कहते हैं कि श्वेतबाराह कल्प के सातवें मन्वंतर का यह अट्ठाइसवाँ कलियुग है, जिसके केवल पाँच हज़ार इकतीस बरस बीते हैं। इस हिसाब से भी दो अरब से कुछ कम बरस बीत चुके हैं।

हमारी गणना केवल यहीं नहीं मेल खाती। सभी जगह हमारी पौराणिक संख्याएँ वैज्ञानिक संख्याओं से मेल खाती हैं। इतनी ही नहीं; विश्व की सृष्टि के सिद्धान्त भी मिलते हैं। कथाओं पर विचार करने से अद्भुत मेल दीखता है। क्षीरसागर, शेषशय्या, महालक्ष्मी, नारायण का शयन, कमल का उद्भव, ब्रह्मा की उत्पत्ति, मधुकैटभ का युद्ध, मेदिनी-निर्माण, मङ्गल की उत्पत्ति इत्यादि-इत्यादि कथाओं का विचित्र समन्वय होता है।

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) अर्थ बताओ :—सूक्ष्म, नैऋत्य, आधुनिक, रश्मि, परिमाण, दूरवीक्षणयंत्र, ज्योतिर्बिंदु, परिस्थिति, उत्पत्ति, नायक, परिक्रमा, अन्तर्गत, आयतन, परिच्छिन्न, अन्तराल, अनादिता, व्याघात, मेदिनी।

(ख) अर्थान्तर की व्याख्या करो :—प्रहर-हर, आधार-धार, काल-काल, उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय, परिक्रमा-क्रम, अन्तर्गत-गत, बाराह राह, रचना-चना।

(ग) पर्यायवाची शब्द बताओ :—आकाश, रात्रि, पृथ्वी, सूर्य, तारे, मेघ।

२—भाषा सम्बन्धी—

(घ) प्रमाणित करो, कि गौड़जी की भाषा वैज्ञानिक विषयों के लिये उपयुक्त होती है।

(ङ) इस लेख के आधार पर यह बताओ, कि गौड़जी किस ढङ्ग की भाषा के पक्षपाती जान पड़ते हैं।

(च) इस लेख में आने वाले उर्दू शब्दों को हिन्दी में रूपान्तरित करो।

(छ) सरल और सुबोध हिन्दी में भाव स्पष्ट करो :—

(अ) वह जब किसी········उचित ही है।

(ब) अनन्त दूरी जिस·········अपरिमित है।

(स) इस विश्व के···········नितान्त भिन्न होता।

३—विचार सम्बन्धी—

(ज) आकाश में तारों भरी रात के दृश्य को देख कर महामूर्ख से लेकर उद्भट विद्वान् तक क्यों आश्चर्य-चकित होते रहते हैं?

(झ) आकाश-गंगा के सम्बन्ध में लेखक के विचारों का सूक्ष्म रूप से स्पष्टीकरण करो।

(ञ) आधुनिक ज्योतिर्विदों ने आकाश-गंगा के सम्बन्ध में कौन सा मत निश्चित किया है ?

(ट) इस लेख का संक्षिप्त सारांश अपनी भाषा में प्रकट करो।

(ठ) संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखो :—अगस्त्य, विराट पुरुष, सप्तर्षि, ध्रुव।

(ड) नीहारिका किसे कहते हैं, उसके सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो।

४—व्याकरण सम्बन्धी—

(ढ) क्या हैं और कैसे बने हैं :—पाश्चात्य, वैज्ञानिक, संचालित, अनादिता, पौराणिक, समन्वित।

(ण) संधि विच्छेद करो :—अधिकाधिक, महोत्पत्ति, निरन्तर, अनन्त, परमाणु।

(त) सविग्रह समास बताओ—मनोमोहक, रश्मिमापक, त्रिकाल, त्रिकालज्ञ, तारामण्डल, परमाणु, कमलोद्भव।

(थ) वाक्य-विश्लेषण करो :—

(प) अब हम सूर्य.........मिल जाता है।

(फ) किसी मनुष्य के.........ब्राह्मण का ही रह जाता है।

(ब) नीहारिका एक.........बिगाड़ रही है।

(द) पदव्याख्या करो :—उत्पत्ति और विनाश, बड़े-बड़े पिण्ड हैं, अद्भुत मेल दीखता है।

१६—हिन्दी-साहित्य और मुसलमान कवि

[लेखक—श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी]

वंश—कायस्थ

निवास स्थानः—खैरागढ़ रियासत

जन्म काल—सन् १८९२ के लगभग

परिचय—बख़्शीजी हिन्दी-साहित्य के सुप्रसिद्ध कहानी लेखक, कवि और समालोचक हैं। हिन्दी, अँग्रेज़ी और बँगला इत्यादि भाषाओं पर आपका पूर्ण रूप से अधिकार है। आपका अध्ययन बहुत उच्च कोटि का है। आपके

गम्भीर अध्ययन की पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने बड़ी प्रशंसा की थी। आप प्रकृति के बड़े सरल और सादगी-पसन्द व्यक्ति हैं।

कार्य—बख़्शीजी हिन्दी के विख्यात समालोचक और गम्भीर विद्वान् हैं। आपकी समालोचनात्मक पुस्तकें हिन्दी में सम्मान की वस्तु समझी जाती हैं। आपने समालोचना और साहित्य पर कई उपयोगी पुस्तकें लिखी हैं। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी जब सरस्वती से अलग होने लगे, तब उसके सम्पादन का भार उन्होंने आप ही को सिपुर्द किया था। आपके सम्पादन काल में सरस्वती की अच्छी उन्नति हुई। आपने विभिन्न विषयों पर सैकड़ों कविताएँ और स्फुट लेख लिखे हैं। आपके लेख हिन्दी-साहित्य की स्थाई सम्पत्ति हैं।

शैली—आपकी शैली बड़ी परिमार्जित और विद्वत्ता पूर्ण है। धारा प्रवाह आपकी भाषा में ख़ूब पाया जाता है। आप संस्कृत के तत्सम शब्दों ही का अधिकांश प्रयोग करते हैं। भाषा बड़ी ओजस्विनी और सजीव होती है।

रचनाएँ—१ हिन्दी साहित्य विमर्श, २ विश्वसाहित्य, ३ प्रायश्चित, ४ पंच पात्र।

मुसलमानों का पहला आक्रमण सन् ६६४ में हुआ। उस समय मुसलमान मुलतान तक ही आकर लौट गये। उनका दूसरा आक्रमण ७११ में हुआ। तब उन्होंने सिन्धु देश पर अधिकार कर लिया था। परन्तु कुछ समय के बाद राजपूतों ने उनको वहाँ से हटा दिया। इसके बाद महमूद ग़ज़नवी का आक्रमण हुआ। सन् ११९३ से मुसलमानों का शासन-युग प्रारम्भ हुआ। उत्तर भारत में उनका साम्राज्य स्थापित हो जाने पर भी दक्षिण में हिन्दू साम्राज्य बना रहा। विजयनगर का पतन होने पर कुछ समय के लिए समग्र भारत पर से हिन्दू-साम्राज्य का लोप हो गया। परन्तु सत्रहवीं सदी में मरहठे प्रबल हुए और अन्त में उन्होंने फिर हिन्दू साम्राज्य की स्थापना की। इसी समय अंग्रेज़ों का प्रभुत्व बढ़ा और कुछ ही समय

में हिन्दू और मुसलमान दोनों को अंग्रेजों का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा।

यद्यपि भारतवर्ष में मुसलमानों का साम्राज्य सन् ११९३ से प्रारम्भ होता है तथापि कितने मुसलमान-साधक और फ़कीर इन आक्रमणकारियों के पहले ही यहाँ आ चुके थे। आठवीं सदी में जब मुसलमानों ने भारत का एक भाग विजय कर लिया तब तो हिन्दुओं और मुसलमानों में घनिष्ठता हो गई। उस समय मुसलमानों का अभ्युदय बढ़ रहा था। बग़दाद विद्या का केन्द्र हो गया था; भारतीय विद्वान् खलीफा के दरबार तक जा पहुँचे। वहाँ उन लोगों की बदौलत संस्कृत के कितने ग्रन्थ-रत्नों का अनुवाद अरबी-भाषा में हुआ। भारतवर्ष में मुसलमानों ने केवल अपनी प्रभुता ही स्थापित नहीं की, किन्तु अपने धर्म का भी प्रचार किया। तभी हिंदू और मुसलमान का विरोध आरम्भ हुआ। इस विरोध को दूर करने का सबसे अधिक प्रयत्न किया कबीर ने। कबीर ने देखा कि भारतवर्ष में हिन्दू और मुसलमान का विरोध बिलकुल अस्वाभाविक है।

> कोई हिन्दू कोई तुरक कहावै एक जमीं पै रहिये।
> वही महादेव वही मुहम्मद ब्रह्मा आदम कहिये॥
> वेद किताब पढ़ैं वे कुतबा वे मौलाना वे पांडे।
> बिगत बिगत कै नाम धरायो यक माटी के भाँडे॥

कबीर हिंदू और मुसलमान दोनों का हाथ पकड़ कर एक ही पथ पर ले जाना चाहते थे। परन्तु दोनों इसका विरोध करते थे। कबीर को उनकी इस मूढ़ता—इस धर्मान्धता—पर आश्चर्य होता था। उन्होंने देखा कि इस विरोधाग्नि में पड़ कर दोनों नष्ट हो जायँगे।

स्वदेश की कल्याण-कामना से प्रेरित हो कबीर उस पथ को खोज निकालना चाहते थे जिस पर हिन्दू और मुसलमान दोनों चल कर अपनी आत्मोन्नति कर सकें। उनका प्रयास व्यर्थ नहीं हुआ। हिन्दू और मुसलमान सम्मिलन की ओर अग्रसर हुए। भाषा के

क्षेत्र में इनका सम्मिलन बहुत पहले हो चुका था। अमीर खुसरो ने एकता की नींव को दृढ़ किया। हिन्दी में काग़ज़-पत्र, शादी-ब्याह, खत-पत्र, आदि शब्द उसी सम्मिलन के सूचक हैं। उसके बाद जायसी ने मुसलमानों को हिन्दी-साहित्य में सौन्दर्य का दर्शन कराया।

"तुरकी अरबी हिन्दवी भाषा जेती आहि।
जामें मारग प्रेम का सबै सराहैं ताहि।"

मलिक मुहम्मद जायसी केवल कवि नहीं थे, साधक भी थे। हिंदू और मुसलमान दोनों उनकी पूजा करते थे। कितने ही लोग उनके शिष्य थे। अतएव यह कहना नहीं होगा कि हिन्दी भाषा में रचना करके उन्होंने मुसलमानों को हिंदू जाति से प्रेम करने की शिक्षा दी। जायसी के धार्मिक विचारों का आभास उनके 'अखरावट' से मिलता है। अपने धर्म में अविचल रहकर भी कोई दूसरे के धर्म को श्रद्धा की दृष्टि से देख सकता है, यही नहीं किन्तु वह उसमें सत्य का यथार्थ और अभिन्न रूप देख सकता है, यह बात जायसी की कृति से प्रकट होती है। हिंदू भी मुसलमानों की तरह ईश्वर की सन्तान हैं, यही नहीं, उनका भी धर्म ईश्वर-प्रदत्त है। अतएव वे हमारी घृणा के पात्र नहीं। जायसी ने जो शिक्षायें दी हैं उनमें से ऐसी कोई शिक्षा नहीं है जिसे कोई हिन्दू स्वीकार न कर सके।

जिस आन्दोलन के प्रवर्त्तक कबीर थे उसकी पुष्टि जायसी के समान मुसलमान साधकों और फ़क़ीरों ने की। भारत में राजकीय सत्ता स्थापित करने के लिए हिंदू और मुसलमान दोनों प्रयत्न करते रहे परन्तु देश में दोनों का स्थान निर्दिष्ट हो चुका था। भारत से मुसलमानों का उतना ही सम्बन्ध हो गया जितना हिन्दुओं का। प्रतिद्वन्द्वी होने पर भी इन दोनों के धर्मों का प्रवेश भारतीय सभ्यता में हो गया। हिन्दी और फ़ारसी से उर्दू की सृष्टि हुई। उसी प्रकार हिंदू और मुसलमान की कला ने मध्य युग में एक नवीन भारतीय कला की सृष्टि की। देश में शान्ति भी स्थापित हुई। कृषकों का कार्य निर्विघ्न हो गया। व्यवसाय और वाणिज्य की वृद्धि होने लगी। देश में नवीन भाव का यथेष्ट प्रचार हो गया। अकबर के राजत्व-काल

में इसका पूरा प्रभाव प्रकट हुआ। उसके शासन काल में जिस साहित्य और कला की सृष्टि हुई उसमें हिंदू और मुसलमान का व्यवधान नहीं था। अकबर के महामन्त्री अबुलफ़जल ने एक हिंदू मन्दिर के लिए जो लेख उत्कीर्ण कराया था उसका भावार्थ यह है— "हे ईश्वर, सभी देव-मन्दिरों में मनुष्य तुम्हीं को खोजते हैं, सभी भाषाओं में मनुष्य तुम्हीं को पुकारते हैं। विश्व-ब्रह्मवाद तुम्हीं हो और मुसलमानान धर्म भी तुम्हीं हो। सभी धर्म एक ही बात कहते हैं कि तुम एक हो, तुम अद्वितीय हो। मुसलमान मसजिदों में तुम्हारी प्रार्थना करते हैं और ईसाई गिर्जाघरों में तुम्हारे लिए घंटा बजाते हैं। एक दिन मैं मसजिद जाता हूँ और एक दिन गिर्जा, पर मन्दिर मन्दिर में मैं तुम्हीं को खोजता हूँ। तुम्हारे शिष्यों के लिए सत्य न तो प्राचीन है और न नवीन।" अबुलफ़जल का यह उद्गार मध्य-युग का नव सन्देश था। हिन्दी में सूरदास और तुलसीदास ने अपने युग की इसी भावना से प्रेरित हो मनुष्य-जीवन में श्रेष्ठ आदर्श दिखलाया। इसी भाव को ग्रहण कर मुसलमानों में रहीम ने कविता लिखी। निम्नलिखित पद्यों से प्रकट हो जाता है कि रहीम ने हिंदू भाव को कितना अपना लिया था।

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू, क्यों न चंचला होय॥
गहि सरनागति राम की, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछु उपाय॥
जो रहीम करीबो हुतो, व्रज को इहै हवाल।
तौ काहे कर पर धर्‍यो, गोवर्धन गोपाल॥

मुगलों के शासन काल में हिन्दी-साहित्य की जो भी वृद्धि हुई उसका कारण यही है कि उस समय मुसलमान भारत को स्वदेश समझने लगे थे। न तो हिन्दुओं ने तत्कालीन राज-भाषा की उपेक्षा की और न मुसलमानों ने हिन्दी-साहित्य की। उस समय वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों ने धार्मिक विरोध को भी हटाने की चेष्टा की।

कितने ही मुसलमान साधक श्रीकृष्ण के उपासक हो गये। इनमें रसखान की भक्ति ने हिन्दी में रस की धारा बहा दी है। उनका निम्नलिखित पद्य बड़ा प्रसिद्ध है।

मानुस हौं तो वही रसखान बसौं मिलि गोकुल गाँव गुवारन।
जो पशु होउँ कहा बसु मेरा चरौं नित नंद की धेनु मझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जो कियो ब्रज छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग होउँ बसेरो करौं वही कालिंदी कूल कदम्ब की डारन॥

मुसलमानों के लिए यह प्रेम कम साहस का काम नहीं था। ताज का यह कथन सर्वथा उचित था—

सुनौ दिलजानी, मेरे दिल की कहानी तुम
दस्त हा बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं।

×   ×   ×

श्यामला सलोना सिर ताज सिर कुल्लेदार
तेरे नेह दाग मैं निदाग ह्वै दहूँगी मैं।

इसी प्रेम से प्रेरित हो कितने ही मुसलमान कवियों ने हिन्दी-साहित्य को अपनी रचनाओं से अलंकृत किया है।

राजनीति के क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमान जाति का विरोध नहीं दूर हुआ। समाज के क्षेत्र में भी दोनों का संघर्षण बना रहा। तो भी साहित्य के क्षेत्र में दोनों ने सत्य को ग्रहण करने में संकोच नहीं किया।

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) अर्थ बताओ :—आक्रमण, साम्राज्य, स्थापना, आधिपत्य, स्वीकार, घनिष्ठता, केन्द्र, अनुवाद, अस्वाभाविक, प्रेरित, प्रयास, सम्मिलन, अभिन्न, उत्कीर्ण, तत्कालीन, अलंकृत।

(ख) अर्थान्तर की व्याख्या करो :—आक्रमण—क्रमण, अग्रसर—सर,

सन्तान — तान, अद्वितीय—द्वितीय, सन्देश—देश, प्रसिद्ध—सिद्ध, संकोच—कोच ।

(ग) पर्यायवाची शब्द बताओ :—अग्नि, पथ, दृष्टि, श्रीकृष्ण ।

२—भाषा सम्बन्धी—

(घ) बख्शी जी के भाषा-सौन्दर्य पर अपने विचार प्रगट करो ।

(ङ) इस लेख के अधार पर यह प्रमाणित करो, कि बख्शी जी संस्कृत के तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग करते हैं ।

(च) इस लेख में आने वाले उर्दू शब्दों को हिन्दी में रूपान्तरित करो ।

(छ) स्पष्ट भावार्थ बताओ :—

(अ) अपने धर्म में·········प्रकट होती है ।

(ब) कमला थिर·········गोपाल ।

(स) हे ईश्वर·······न नवीन ।

३—विचार सम्बन्धी :—

(ज) संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखो—कबीर, अकबर, तुलसीदास, जायसी, ताज ।

(झ) भारत के सामाजिक जीवन के लिए कबीर की कुछ बानियाँ क्यों अधिक आवश्यक हैं ?

(ञ) तुम यह कैसे प्रमाणित कर सकते हो, कि अकबर के शासन काल में विश्व-बन्धुता का अधिक विकास हुआ ?

(ट) अपने विचार प्रगट करो :—

(प) सभी धर्म एक ही बात कहते हैं ।

(फ) सत्य न तो प्राचीन है, और न नवीन ।

(ब) तुम अद्वितीय हो ।

४—व्याकरण सम्बन्धी—

(ठ) समास बताओ—शासन-युग, धर्मान्धता, कल्याण-कामना, आत्मोन्नोति, ईश्वर-प्रदत्त, नव सन्देश ।

(ड) सन्धि-विग्रह करो :—धर्मान्धता, तत्कालीन, विरोधाग्नि ।

(ढ) निम्नांकित शब्द किन शब्दों से बने हैं :—घनिष्ठता, प्रयत्न, स्वदेश, सम्मिलन, अविचल, प्रदत्त।

(ण) वाक्य-विश्लेषण करो :—

(भ) परन्तु सत्रहवीं.........करना पड़ा।

(म) कितने ही.........धारा बहा दी है।

(त) पदव्याख्या करो —बड़ा प्रसिद्ध है, उचित था, दूर हुआ, बना रहा।

१७—पानीपत की तीसरी लड़ाई

[लेखक—राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द]

निवास स्थान—काशी

जन्म संवत्—१८८०

मृत्यु संवत्—१९५२

परिचय :—आपका जन्म बंगाल के प्रसिद्ध जगत सेठ के वंश में हुआ था। आप काशी के सुप्रसिद्ध नागरिक और रईस थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू और फ़ारसी में हुई। इसके पश्चात् आपने संस्कृत और बँगला का अध्ययन किया। शिक्षा समाप्त करके कुछ दिनों तक आपने भरतपुर दरबार में नौकरी की। सम्वत् १९०२ में आपने 'बनारस अखबार' नामक एक पत्र निकाला। सम्वत् १९१३ में आप संयुक्त प्रान्तीय स्कूलों के इन्स-पेक्टर नियुक्त किये गये। आप पहले भारतीय थे, जिसे सर्व प्रथम यह पद प्राप्त हुआ था। सरकार की आप पर बड़ी कृपा-दृष्टि रहती थी। सरकार ने अपनी कृपा प्रकट करने के लिये आपको सी० आई० ई० या सितारे हिन्द की उपाधि दी थी। आप भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समकालीन थे। भारतेन्दु बाबू आपको अपना साहित्य-गुरु मानते थे।

कार्य—आपके द्वारा हिन्दी और हिन्दी गद्य-साहित्य का अधिक कल्याण हुआ। आप जब इन्सपेक्टर नियुक्त किये गये थे, उसके पहले स्कूलों में

हिन्दी के लिये स्थान नहीं था। आपने इसके लिये बड़ा उद्योग किया। आप ही के उद्योग से स्कूलों में हिन्दी को स्थान भी प्राप्त हुआ। आपने स्कूलों में पढ़ाने के लिये हिन्दी पुस्तकें भी लिखी थीं। वर्तमान गद्य-साहित्य की नींव बहुत कुछ आप ही के द्वारा पड़ी थी। आज कल जिस 'हिन्दुस्तानी' भाषा के लिये फिर से प्रयत्न किया जा रहा है, उसका श्रीगणेश आप ही ने किया था। आपने ३५ पुस्तकें लिखी थीं। किन्तु आज कल आपकी पुस्तकें अप्राप्य हैं।

शैली :—आप कई प्रकार की भाषा लिखते थे। जैसे :—ठेठ हिन्दी, शुद्ध हिन्दी और खिचड़ी हिन्दी। आपकी खिचड़ी हिन्दी का स्वरूप ही आजकल हिन्दुस्तानी कहलाता है। आप विषयों के अनुसार ही भाषा का प्रयोग करते थे। आपने अपनी रचना 'गुटके' में ठेठ हिन्दी का, मानवधर्म सार में शुद्ध हिन्दी का, और भूगोल हस्तामलक में खिचड़ी हिन्दी का प्रयोग किया है।

रचनाएँ—१ मानवधर्मसार, २ राजाभोज का सपना, ३ इतिहासतिमिर नाशक, ४ भूगोल हस्तामलक, ५ भाषा का इतिहास, ६ गुटका।

पानीपत की पहली लड़ाई के उपरान्त, अहमदशाह दुर्रानी अपने लड़के तैमूरशाह को पंजाब में छोड़ गया था। पेशवा का भाई रघुनाथराव गाज़िउद्दीन की सहायता करने दिल्ली गया था। उसको जब वहाँ से अवकाश मिला तब उसने पंजाब में भी मरहठी राज्य स्थापित करना उचित समझा। उसके पहुँचते ही तैमूरशाह भाग गया और चार दिन के लिए वहाँ भी मरहठी राज्य का डंका बजा। इस प्रकार रघुनाथराव ने मरहठों का निशान कटक से अटक तक पहुँचा दिया। हिमालय से समुद्र तक इन दिनों इन्हीं का डङ्का बजता था और सारे हिन्दुस्तान पर इन्हीं का हुक्म चलता था। जिसे देखो वही इनकी खुशामद करता था और जो आपत्ति में पड़ता था, वह भी इन्हीं से सहायता माँगता था। रघुनाथराव तो पञ्जाब का राज्य एक मरहठे सरदार को सौंप दक्षिण को चला गया; परन्तु अहमदशाह

दुर्रानी ने यह समाचार पाते ही फिर हिन्दुस्तान पर चढ़ाई कर दी। उसके सिन्धु पार होते ही मरहठे पञ्जाब से हट आये और अहमदशाह आराम के साथ सहारनपुर के पास जमना आ उतरा।

पेशवा को जब यह मालूम हुआ तब उसने बड़ी धूमधाम के साथ एक सेना उससे लड़ने को भेजी। उसका चचेरा भाई सदाशिवराव भाऊ इस सेना का सरदार था, पर वह युद्ध-कला से अपरिचित था। पेशवा का बेटा विश्वासराव भी उसके साथ था। रास्ते में राजपूतों की बहुत सी फ़ौजें भी आ मिलीं और भरतपुर के चूड़ामन जाट के बेटे राजा सूरजमल के साथ तीस हज़ार जाट भी आ पहुँचे। युद्ध के पहले बूढ़े सूरजमल ने भाऊ को यह सलाह दी कि सब असबाब, तोपखाने और पैदल सिपाही भरतपूर के क़िले में रख दिये जायँ और केवल सवारों को लेकर मरहठी युद्ध-प्रथा के अनुसार समय पर शत्रु को मार कर तङ्ग किया जाय। परन्तु भाऊ घमण्ड में डूबा हुआ था; जिससे इस उत्तम सम्मति पर उसने ध्यान न दिया। खिन्न चित्त हो कर सूरजमल ने दिल्ली की छावनी में से अपने डेरे अलग कर लिये और वह अपने राज्य को चला आया। मल्हारराव हुल्कर ने भी यही समझाया, परन्तु उसे यह अपमान-सूचक उत्तर मिला कि हम गड़रियों की बात नहीं मानते।

अहमदशाह दुर्रानी बुलन्दशहर-जिले में गङ्गा के किनारे अनूपशहर नगर के निकट डेरा डाले हुए था। उसने केवल थोड़ी सी फौज दिल्ली की रक्षा के लिए छोड़ रक्खी थी। वह मरहठी फ़ौज से टक्कर न खा सकी। भाऊ दिल्ली में पहुँचा और वहाँ उखाड़-पछाड़ करने लगा। दीवान ख़ास में जो चाँदी की छत थी उसे बिलकुल उखाड़ लिया। घरों और महलों को भी लूट-मार और तोड़-फोड़ से बाक़ी न छोड़ा। वह तो विश्वासराव को दिल्ली के तख़्त पर बिठलाना चाहता था; परन्तु पीछे से यह सलाह ठहरी कि अहमदशाह का काम तमाम हो लेने दो, फिर गद्दी पर बिठलाते रहेंगे।

भाऊ कुञ्जपुरे की ओर गया और अहमदशाह दुर्रानी ने भी अनूपशहर से कूच किया। भाऊ ने अपने मोर्चे पानीपत में लगाये;

इसके आठ सौ सत्तर हज़ार तो सवार थे और दो सौ तोपें, मोर्चे के भीतर तीन लाख मनुष्यों से कम न थे। इनमें से नौ हज़ार सैनिक इब्राहीम गार्दी के आधीन नये ढङ्ग से सिखलाई हुई पल्टनों में थे—अङ्गरेज़ों की देखा देखी यहाँ वाले भी उनके ढङ्ग की पल्टनें रखने लगे। अहमदशाह दुर्रानी के साथ तिरपन हज़ार सवार और अड़तीस हज़ार पैदल सिपाही थे, परन्तु तोपें केवल तीस थीं। इसने अपने मोर्चे जमाये।

रसद की दोनों ओर तकलीफ थी और इस कारण आपस में छेड़-छाड़ होती रहती थी; परन्तु यह हियाव किसी का न होता था कि दूसरे के मोर्चों पर हमला कर दे। अहमदशाह की तरफ हिन्दुस्तानी मुसलमान रईस जा मिले थे। उन्होंने उससे बहुत कहा कि आप मरहठों पर आक्रमण कीजिए; परन्तु उसने यही जवाब दिया कि यह मामला लड़ाई का है और आप लोग युद्ध-कौशल से अपरिचित हैं; और बातों में जो मन में आवे सो कीजिए; परन्तु युद्ध-सम्बन्धी कार्य मेरे भरोसे छोड़ दीजिए।

अहमदशाह ने अपने मोर्चों के आगे एक छोटा सा लाल डेरा लगवा रक्खा था। उसी में वह प्रत:काल नमाज़ पढ़ने को और सन्ध्या समय भजन करने आता था। बाक़ी दिन भर घोड़े पर सवार हो अपनी सेना में घूमा करता था। वह हिन्दुतानी रईसों से कहता था कि आप आराम से पैर फैला कर सोइये; यदि आपका बाल भी बाँका हो जाय तो इसका उत्तरदाता मैं हूँ। तारीफ़ इस बात की है कि उसकी आज्ञा सेना में विधाता के लेख के समान मानी जाती थी। किसका हियाव था कि वह आज्ञा दे और फिर कोई उसका बिना पालन किये साँस भी ले सके।

शुजाउद्दौला अहमदशाह दुर्रानी की ओर जा मिला था और उसी के द्वारा सदाशिवराव भाऊ ने सुलह करने का सन्देश भेजा; परन्तु अहमदशाह ने यही उत्तर दिया कि मैं तो मदद देने को आया

हूँ, सुलह करने के मालिक हिन्दुस्तानी रईस हैं । युद्ध की विकट मूर्ति देख कर ये लोग भी इच्छा प्रकट करने लगे कि सन्धि हो जाय; परन्तु नजीबुद्दौला रुहेले ने न माना । उसने यही कहा कि यदि अहमदशाह दुर्रानी मरहठों का बल तोड़े बिना चला जायगा तो हम सब का फिर पता भी न लगेगा ।

उधर मरहठी सेना में रसद की अत्यन्त कठिनाई पड़ने लगी और लोग भूखों मरने लगे । मरहठों ने भाऊ का डेरा जा घेरा और हाय-पुकार मचाई कि भूखों मरने से तो युद्ध में तुरन्त मर जाना उत्तम है । भाऊ ने वचन दिया कि कल प्रातः काल युद्ध ठनेगा; सब ने पीठ न दिखाने की कसम खाई और वे बीड़ा लेकार बिदा हुए । इसके उपरान्त भाऊ ने शुजाउद्दौला को पत्र लिखा कि प्याला भर गया और एक बूँद भी अधिक डालने को स्थान नहीं है । सन्धि के सम्बन्ध में जो कुछ करना हो, तुरन्त करो, नहीं तो इसी पत्र को अन्तिम सन्देश मानो । पर ऊपर बता ही आये हैं कि नजीबुद्दौला के कारण सन्धि की वार्ता हवा में उड़ गई थी । पत्र लिखना व्यर्थ ही था ।

शुजाउद्दौला का मुन्शी पहर रात रहे इस पत्र को सुना रहा था कि इतने में भेदियों ने आकर मरहठों के तैयार होकर रवाना होने के समाचार सुनाये । शुजाउद्दौला ने उसी समय जाकर अहमदशाह को जगाया और वह भी तुरन्त तैयार होकर अपने डेरे में से निकला । घोड़े पर उसी पल सवार होकर वह मरहठी सेना की ओर चला और उसने अपनी सेना को भी उसी तरफ़ बढ़ने की आज्ञा दी ।

जब अँधेरा दूर हुआ तब एक अलौकिक दृश्य देखने में आया । मरहठों की सारी सेना तोपखाना आगे किये हुए झण्डे उड़ाती, डङ्के बजाती, हर हर "महादेव" की ध्वनि करती जमे पैरों से समुद्र की तरह उमड़ी चली आती थी, परन्तु उनकी तोपों से जो गोले छूटते थे वे अफ़ग़ानों के ऊपर होते हुए पार चले जाते थे, लगते किसी को भी न थे ।

शत्रु के निकट आने पर इब्राहीम गार्दी ने झुक कर भाऊ को सलाम किया और कहा कि जब मैं अपने सिपाहियों की तनख्वाह का तक़ाज़ा करता था, तब आप बहुत बुरा मानते थे, अब आज इनका तमाशा देखिए। यह कह उसने हाथ में झण्डा ले लिया और अपने सिपाहियों को हुक्म दिया कि बन्दूकें चलाना बन्द करो और सङ्गीने चढ़ा शत्रु पर धावा कर दो। रुहेले बेड़े को इनसे बहुत हानि हुई और वे लोग पीछे हट गये। उनके हटने से अहमदशाह दुर्रानी का मन्त्री सामने पड़ गया और उधर से विश्वासराव भाऊ भी चुने हुए शूर लेकर आक्रमण करने को आ गया। मन्त्री की सेना पर कठिन प्रसंग आ पड़ा, मन्त्री का भतीजा उसके समाने ही मारा गया और उसके सिपाही भी तितर-बितर होने लगे। परन्तु मन्त्री बड़ा वीर निकला। वह तुरन्त घोड़े पर से उतर पड़ा और उसने यह पक्का मनसूबा किया कि मर जाना अच्छा है, परन्तु मैदान छोड़ना अच्छा नहीं। उसके मारे जाने में अब कुछ बाक़ी न रहा था, परन्तु इतने में अहमदशाह कुछ ताज़ी सेना लेकर सहायता को आ पहुँचा और इस कारण लड़ाई थम गई।

तो भी मरहठों का भय अफ़गानों पर छाया हुआ था, इस सबब से अपनी सेना को आगे बढ़ने की आज्ञा देते समय अहमदशाह ने यह भी हुक्म दे दिया कि जो जिसे भागते देखे वह उसका सिर काट ले। इसके सिवा उसने एक सेना को जो बाईं बाजू पर थी मोड़ कर मरहठों के बग़ल पर हमला करने को भेज दिया। इस युक्ति ने काम कर दिखाया—भाऊ और विश्वासराव लड़ते ही रहे; परन्तु उनकी सारी सेना सपने के समान हो गई। मैदान में मुर्दों के ढेर के ढेर थे। अफ़गानों ने मरहठों का दस कोस तक पीछा किया। इधर ज़मीदार भी उनके पीछे पड़ गये और किसी प्रकार उनका पिण्ड न छोड़ते थे, जो हाथ पड़ते सो काट दिये जाते। बाईस हज़ार मरहठे क़ैद में भी पड़े और उसमें अच्छे अच्छे सरदार और ऊँचे दर्जे के लोग थे, पर सब के सब गुलाम बनाये गये। इब्राहीम गार्दी क़ैद में पड़ कर मर गया—कहते हैं कि उसके घावों में ज़हर भर दिया

गया था। विश्वासराव की लाश तो मिल गई; परन्तु भाऊ की लाश में सन्देह रहा। इसमें शक नहीं कि इस लड़ाई में सब मिल कर दो लाख से अधिक आदमी मारे गये। इससे बढ़ कर कभी कोई हार किसी सेना को नहीं मिली और इससे बढ़ कर किसी युद्ध में भी शोक नहीं फैला। सारे दक्षिण में मानों अंधकार छा गया। इसके धक्के से मरहठों का पौरुष फिर कभी न उभड़ने पाया। अहमदशाह दुर्रानी को इस युद्ध से कोई लाभ न हुआ; वह भी इतना निर्बल हो गया था कि चुपके से अपने देश को लौट गया और फ़िर उसने हिन्दुस्तान की ओर दृष्टि भी न डाली।

इस प्रकार हिन्दुस्तान पर नवीन साम्राज्य स्थापित करने वाली दो शक्तियाँ, आपस में टकराकर क्षीण हो गईं, और अँग्रेज़ लोगों के प्रताप रूपी सूर्य की किरणों के प्रचंड बल को जो उस समय इस देश के पूर्व में उदय हो रहा था रोकने वाला कोई न रहा।

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) अर्थ बताओ—उपरान्त, स्थापित, कला, अपरिचित, प्रथा, सम्मति, खिन्न, सूचक, आक्रमण, कौशल, उत्तरदाता, सन्धि, अलौकिक, प्रसङ्ग, प्रचण्ड।

(ख) अर्थान्तर की व्याख्या करो—उचित—चित, चचेरा—चेरा, उत्तम—तम, तिरपन—पन, प्रताप—ताप।

(ग) निम्नांकित मुहाविरों का प्रयोग अपने वाक्यों में करो:—डंका, बजना, छापा मारना, टक्कर न खाना, साँस लेना, काम तमाम होना, तितर-बितर होना।

२—भाषा सम्बन्धी—

(घ) 'हिन्दुस्तानी' किसे कहते हैं?

(ङ) राजा शिवप्रसाद जी की भाषा के सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो?

(च) राजा शिवप्रसाद जी से हिन्दी और हिन्दी गद्य-साहित्य का क्या और कैसे कल्याण हुआ ?

(छ) इस लेख में राजा साहब ने किस भाषा का प्रयोग किया है ?

३—विचार सम्बन्धी—

(ज) पानीपत कहाँ है ? उसका ऐतिहासिक महत्व क्यों अधिक बढ़ गया है ?

(झ) पानीपत की पिछली दो लड़ाइयों के सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो ? वे क्यों और किस-किस के बीच में हुई थीं ?

(ञ) पानीपत की तीसरी लड़ाई क्यों हुई ? इसके प्रमुख नायकों का चरित्र चित्रण करो।

(ट) पानीपत की तीसरी लड़ाई का भारत की राजनीतिक स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ा ?

(ठ) संक्षिप्त परिचय लिखो—अहमदशाह दुर्रानी, शुजाउद्दौला, सदा शिवराव भाऊ।

४—व्याकरण सम्बन्धी :—

(ड) समास निर्माण करो—हिन्दुओं का स्थान हो जो, बर्फ़ का घर हो जो, युद्ध की प्रथा, अपमान प्रगट होता हो जिससे, लूट और मार, युद्ध से सम्बन्ध रखने वाला।

(ढ) पद-व्याख्या करो—डंका बजा, बात नहीं मानते, पता न लगेगा, तितर बितर होने लगे।

(ण) वाक्य के भेद सोदाहरण बतलाओ।

(त) वाक्य-विश्लेषण करो :—

(अ) वह हिन्दुस्तानी·········उत्तर-दाता मैं हूँ।

(ब) अहमदशाह दुर्रानी·········न डालीं।

१८—सन्तू

[लेखक—श्रीयुत सुदर्शन]

वंशः—काश्मीरी ब्राह्मण

निवास स्थान—पंजाब प्रान्त

जन्म सम्वत्—१९५२

परिचय :—आप पंजाब प्रांत के रहने वाले हैं। आर्य समाज के सिद्धांतों में आपकी अधिक आस्था है। आप हिन्दी, उर्दू और अँग्रेज़ी के विज्ञाता हैं। अँग्रेज़ी आपने बी० ए० तक पढ़ी है। पहले आप उर्दू में लिखा करते थे। उर्दू में आपकी लिखी हुई कहानियाँ अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखी जाती हैं। लाहौर से प्रकाशित होने वाले 'चन्दन' नामक उर्दू मासिक पत्र का आपने सम्पादन भी किया है। उर्दू ही से आप हिन्दी-साहित्य-संसार में आये। हिन्दी-साहित्य के कहानी लेखकों में आपका विशेष स्थान है। कहानी लेखकों में प्रेमचन्द जी के बाद आप ही का नाम लिया जाता है। आप प्रकृति के बड़े सरल और उदार हैं।

कार्य :—कहानी लेखकों में प्रेमचन्द जी के बाद आप ही ने कहानी-कला का एक आदर्श स्थापित किया है। सामाजिक भावों का विविध प्रकार से चित्रण आपकी कहानियों की विशेषता है। आपने ऐतिहासिक, सामाजिक, और राजनीतिक इत्यादि विषयों पर बहुत सी कहानियाँ लिखी हैं। आपकी कुछ कहानियों की फ़िल्में भी बन चुकी हैं। आपकी कहानियों की फ़िल्में फिल्म-ससार में काफ़ी सुख्याति प्राप्त कर रही हैं। आपने कुछ नाटकों का भी निर्माण किया है। बालोपयोगी साहित्य में भी आपने भाग लिया है।

शैली :—आपकी शैली बड़ी सरल और सुबोध है। कहानियों और उपन्यासों के लिये आपकी शैली बड़ी ही उपयुक्त है। साधारण से साधारण पाठक भी आपके भावों का हृदयंगम कर लेता है। भाषा बड़ी चलताऊ और मुहाविरेदार होती है।

रचनाएँ :—नाटक—१ अंजना, २ आनरेरी मजिस्ट्रेटी (प्रहसन)।

बालोपयोगी—३ फूलवती, सोहराब और रुस्तम। कहानी संग्रह—५ पुष्पलता, ६ सुदर्शन सुधा, ७ तीर्थ-यात्रा।

---

[१]

अतीत भारत के अतीत गौरव-चिह्नों को अपने सुविशाल वक्षस्थल पर धारण कर उज्जयिनी नगरी आज भी अपना मस्तक ऊपर किये खड़ी है। सुभग-सलिला भगवती शिप्रा भूतनाथ भगवान् महाकाल के चरणों को स्पर्श करती हुई अनन्त में मिलने के लिए चली जा रही है। उसका यह क्रम इसी प्रकार अव्याहत चला जाता है। संसार-चक्र भी भविष्यत् को वर्तमान बनाता तथा वर्तमान को अतीत के गर्भ में डालता हुआ अबाधित चला जाता है। शिप्रे! उज्जयिनी की चिर-सङ्गिनी शिप्रे! तुम्हारी इन तरल और उत्ताल तरङ्गों ने अनेक दुखित आत्माओं को शान्ति दी होगी। तुम्हारे इस मधुर कलकल निनाद ने अनेक उत्साह-शून्य आत्माओं में कार्यकारिणी शक्ति का सञ्चार किया होगा। तुम्हारे इस वृक्षाच्छादित निर्जन कूल पर अनेक संसारविरत महानुभावों ने बैठकर उस अनन्त का साक्षात्कार किया होगा। सरल तरले शिप्रे! ग्रीष्म-ऋतु में किसी-न-किसी दिन महाराज भर्तृहरि अवश्य तुम्हारे तट पर आये होंगे। सान्ध्यप्रकाश का दृश्य उन्होंने वहीं से देखा होगा; और फिर देखा होगा चन्द्रालोकित नैश गगन।

एक-एक करके दस बज गये। देखते-देखते सब दीपक बुझ गये। कोलाहल शान्त हो गया। उज्जयिनी प्रशान्ति की प्रतिमूर्ति बन गई। उस स्तब्ध नगरी के भव्य मस्तक पर भगवान् रजनी-नाथ उदित हो गये। क्या संकुचित गलियों में, क्या राजमार्ग पर, सब कहीं, गृहा-वलियाँ चुपचाप खड़ी थीं। सब अपनी-अपनी सुख-शय्या पर सो रहे थे। पर दूर कोई अपने कलकण्ठ से गा रहा था—

"सोओ सुख-निंदिया प्यारे ललन······"

एक कमरे में दीपक जल रहा था। एक शुभ्र पलंग पर एक सप्तदशवर्षीय रुग्ण युवक लेटा हुआ था। उसका मुख मुरझाया हुआ

तथा शरीर अत्यधिक कृश था। उसकी विशाल आँखें अन्दर धँस गई थीं। सिरहाने एक और युवक बैठा था। रोगी का सिर युवक की गोद में था। रोगी ने कहा, "दादा, पानी। गला सूखा जाता है। पानी, देखते क्या हो?"

युवक ने बड़े ही मीठे और करुण स्वर से कहा, "भैया, सन्तू, पहले यह दवा पी लो, फिर तुम्हें जल देंगे।" सन्तू बोला, "विमल दादा, मैं दवा अब न लूँगा। पानी।" बिमल ने कहा, "क्यों भैया, ऐसा हठ क्यों करते हो?" सन्तू शान्ति से कहने लगा, "विमल दादा, अब तो 'औषधं जाह्नवी तोयं वैद्यो नारायणो हरिः।'

विमल कुछ न बोला। सन्तू ने आँखें मूँद लीं। फिर आखें खोलकर विमल की ओर करुण दृष्टि से देखने लगा। विमल को यह दृष्टिपात बड़ा हृदय-भेदक जान पड़ा। उसने बड़ी कठिनता से अपने आँसुओं को रोका।

सन्तू फिर कहने लगा, "दादा, आप दुराशा की आशा किये बैठे हैं। मेरी यह बीमारी साधारण नहीं। आप.................. अरे! आप रोते हैं?" विमल बालकों के सदृश रोने लगा। कमला पास ही खड़ी थी। सन्तू, बोला, "भाभी, देख तो भैया को न जाने क्या हो गया है?"

कमला ने इसके पहले कभी विमल की आँखों में आँसू न देखे थे। आज उसने देखा कि विमल के दृढ़ हृदय ने धैर्य का दिवाला निकाल दिया।

वह विमल से बोली, "यह क्या? यदि आप उनके सामने यों बच्चों के-से आँसू बहावेंगे तो.........."

विमल बोला, "नहीं कमला, रोता कहाँ हूँ?"

विमल ने अपने आँसू पोंछ डाले।

सन्तू ने कहा, "अच्छा लाओ, यदि मेरे दवा न पीने से आपको कुछ कष्ट होता हो तो पी लूँ।"

विमल ने दवा की कटोरी उसके ओठ से लगा दी। वह दवा पी गया।

फिर वह बोला, "अब तो पानी दो।"

विमल ने कमला को गरम किया हुआ पानी लाने को इशारा किया। कमला ने विमल के हाथ में एक गिलास दे दिया। उसने सन्तू से कहा, "लो।" सन्तू ने एक घूँट पीकर मुँह फेर लिया।

"अरे! भाई यह तो गरम है। ठण्डा लाओ।"

कमला बोली, "लाला, आप समझदार होकर ऐसी बातें करते हैं। अभी यही पी लो।"

विमल बोला, "भैया, ठण्ढा जल सुबह देंगे।"

यह सुनकर सन्तू मानों किसी आन्तरिक भाव से प्रेरित हो कहने लगा :—

"कब दादा? सुबह? पर किसे?"

यह कह कर वह चुप हो गया। उसके चेहर पर थोड़ी सी मुसकुराहट दिखाई दी। इन्हीं शब्दों को सुनकर और उस भाव भरी मुसकान को देखकर विमल सिहर उठा। सन्तू! क्या प्रतःकाल के पूर्व ही तुम किसी महान् अज्ञेय पथ के पथिक हो जाओगे? क्या सचमुच तुम इस मुसकराहट से यह जता रहे हो कि अभागे, तूने तो शीतोदक से मेरी तृष्णा तक न बुझाई!

[२]

"टन्, टन्, टन्"—विमल ने चौंककर घड़ी की ओर देखा। तीन बजाकर मिनट की सुई आगे चली गई। सन्तू की आँख कुछ लग गई थी। विमल कमरे के बाहर आया। उसने देखा कि निद्रा देवी सारे जगत् पर अपना मोह-जाल फैलाये हुए हैं। शीतल, मन्द समीरण बह रहा है। माता प्रकृति प्राणी-मात्र को थपकियाँ दे-देकर सुला रही है। चन्द्रदेव ने सहचरी रजनी को अपनी कौमुदी का स्वच्छ पट पहना दिया है; अपने करों से गोपाल मन्दिर तथा

महाकाल-मन्दिर के उच्च शिखरों को स्पर्श करके मानों हँस रहे हैं। सहचरी यामिनी घुल-घुलकर चन्द्र से बातें कर रही है। तारिकाएँ इस प्रेमालाप को सुनकर खिली पड़ती हैं। कैसा सुन्दर शान्त समय है! पर उत्तप्त हृदय को शान्ति कहाँ? कभी-कभी पहरे वाले "जागते रहना" कहकर चिल्ला उठते हैं। पास वाले इमली के पेड़ पर दिवान्ध देवता कभी-कभी अपनी कर्कश बोली से इस स्तब्धता को भंग कर देते हैं। विमल इधर-उधर शून्य दृष्टि से देखने लगा। याद आता है बहुत दिन नहीं हुए जब विमल रात को इसी तरह आकाश की ओर मुँह किये देख रहा था। आज उसका प्राणों से प्यारा भाई मृत्यु-शय्या पर पड़ा हुआ था। उस दिन वह नैराश्यपूर्ण अन्धकार में भटक रहा था। और आज? वह घने अन्धकार में एक क्षीण ज्योति को देख रहा था। आज वह बड़ी दुविधा में था। उसे उस जीवन-ज्योति के बुझने की बड़ी आशंका थी। उसने अपने-आप पूछा, "अगर ज्योति बुझ गई तो?" ओफ़! कैसा भयानक प्रश्न है। इसका उत्तर उसे न मिला। वे दिन रोज़े के थे। एक फकीर दूर पर गा उठा—

"चुन-चुन-मिट्टी महल बनाया, कोई कहे घर मेरा है।
ना घर मेरा न घर तेरा, चिड़िया रैन बसेरा है॥"

विमल ने इसे सुना या नहीं सो हम नहीं जानते। पीछे से किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रख दिया। इस कोमल कर-स्पर्श से विमल चौंक उठा। देखा कि कमला मुँह लटकाये खड़ी है।

विमल ने पूछा, "क्यों कमला?"

कमला ने धीरे से कहा—"वे न जाने क्या बर्रा रहे हैं।" विमल बिना कुछ कहे वहाँ से चल दिया। कमरे में आकर देखा कि सन्तू नींद में कुछ बर्रा रहा है। वह झट उसके पास जाकर बैठ गया। सन्तू नींद में कह रहा था,

"......मेरा...का......म...देश...से......वा......रह......भ... ग...नू"

विमल ने पुकारा, "सन्तू !"

सन्तू चौंक उठा।

विमल ने पूछा, "सन्तू ! क्या बरीते थे ?"

सन्तू चुप रहा। वह विमल के मुख की ओर देखने लगा। कुछ देर बाद सन्तू को हिचकियाँ आने लगीं। कमला ने यह देखा। उसने दौड़कर नौकर से कहा—"डाक्टर को बुला लाओ।" नौकर आज्ञा-पालन करने दौड़ा।

थोड़ी देर तक किसी तरह आँखों द्वारा अपने भाव प्रकट करते हुए सन्तू बोला, "दादा, अब मैं चलने पर हूँ, किन्तु एक बात कहता हूँ। आपको मेरे जीवन का कार्य-भार अपने ऊपर लेना होगा।"

यह कहकर वह विमल की ओर देखने लगा। विमल चुप था। सन्तू फिर बोला, "मुझे अत्यन्त दुःख है कि मैं इस कार्य को पूर्ण किये बिना ही जाता हूँ। यदि आप उसे पूर्ण करने का वचन दें तो मैं सुख से प्रयाण कर सकूँ।"

विमल चुप रहा। उसने अपने निर्बल हृदय पर हाथ रखा। वह ज़ोर से धड़क रहा था। सामने देखा कि छोटे भाई सन्तू का कार्य एक विशाल पर्वत के सदृश है। विमल ने अपने हृदय से पूछा, "निर्बल क्या तुम इस इतने बड़े अनुष्ठान के साधन में सफल हो सकोगे ?"

कुछ उत्तर न मिला। विमल को इस प्रकार मौन देखकर सन्तू उत्तेजित हो उठा।

वह बोला, "विमल दादा, तो क्या मुझको इस प्रकार निराश ही जाना पड़ेगा ? अच्छा यह भी ठीक ही है। यदि इसी प्रकार प्रबल पश्चात्ताप की अग्नि में जलते हुए मैं अपने प्राण-विसर्जन कर सकूँ तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं अपने इस कार्य को जन्मान्तर में अवश्य पूर्ण कर सकूँगा। विमल दादा, आप इसका भार अपने ऊपर न लें अब…मु…झे…जाने…दें।"

विमल अपने अल्प वयस्क भाई के इस अद्भुत उत्साह को देखकर प्रारम्भिक उत्साह से उत्तेजित हो उठा।

वह बोला, 'भैया सन्तू ! तेरा कार्य मैं करूँगा।"

सन्तू लड़खड़ाती जबान से कहने लगा, नहीं दादा…… प्रणाम………मेरा……का……र्य……मे……रे……साथ…… भाभी……दादा……देख……ना……प्र……म।" ……… (एक हिचकी) और बस !!!

कमला चीख मार कर गिर पड़ी। चीखें सुनकर डाक्टर बाबू उलटे पैर लौट गये। विमल के नीचे से पृथ्वी खिसक गई। सर्वत्र अन्धकार !

[३]

सन्तू इस संसार में नहीं। उसे गये बहुत दिन हो गये। किन्तु सृष्टि के सब कार्य ज्यों-के-त्यों चले जा रहे हैं। सूर्योदय होता है, सूर्यास्त होता है; दिन आता है, रात जाती है। शीतला शिप्रा भी कलकल नाद करती हुई उसी प्रकार आठों प्रहर बहती चली जा रही है। उज्जैन-निवासियों के सारे कार्य आनन्द से चल रहे हैं। महाकालेश्वर के मन्दिर में "हरोॐम् हर" की ध्वनि अब भी प्रातः-सायं उसी प्रकार कर्णगोचर होती है। सन्ध्या के समय आर० एम० रेलवे भी निश्चित रूप से स्टेशन पर आ जाती है। सन्तू के बिना कोई कार्य रुका-सा दिखाई नहीं देता।

सायंकाल का समय है। अस्ताचल-सन्निकटवर्ती भगवान् अंशुमाली अपने आरक्त करों से उज्जयिनी नगरी के उच्च सौध-शिखरों का स्पर्श कर रहे हैं। विमल इस समय म्युनिसिपल पार्क में एक बेंच पर बैठा है। वह आकाश की ओर देख रहा है। उसने देखा कि आकाश अनन्त है, और मैं भी अनन्त के गर्भ में स्थित हूँ। सन्तू की आत्मा भी इसी अनन्त के गर्भ में स्थित है। फिर मैं सन्तू को क्यों नहीं पाता ? हाँ, अवश्य पाऊँगा। किन्तु कब ? अनन्त के गर्भ में अनन्त वस्तुएँ

हैं। सन्तू भी उन अनन्त वस्तुओं में से एक है। मैं भी एक हूँ। अतः मैं एक इन अनन्त में से उस एक को किस प्रकार ढूँढ़ सकता हूँ? क्या करूँ? इसके लिए मुझे भी अनन्त होना पड़ेगा। बस! तब सन्तू और मैं एक हो जाऊँगा। फिर सन्तू को ढूँढ़ने की आवश्यकता ही क्या?

इतने में उसका ध्यान टूट गया। पास ही देखा कि "चना ज़ोर गरम" की आवाज़ लग रही है।

विमल उठ कर घर गया। सिर-दर्द का बहाना करके वह बिना भोजन किये ही पलंग पर पड़ गया। कमला पास बैठ कर धीरे-धीरे सिर दबाने लगी। इसी दशा में विमल को नींद आ गई। निद्रादेवी ने भी उसे विचार-तरङ्गों से मुक्त न किया। वह स्वप्न देखने लगा। मानों वह एक दुर्गम वन में चला जा रहा है। आकाश में सघन मेघ आ-आकर घिरने लगे। ठण्ढी हवा खूब ज़ोरों से चलने लगी। देखते-देखते आकाश मेघों से व्याप्त हो गया। धीरे-धीरे अन्धकार और घना होता गया। अब मूसलधार वर्षा आरम्भ हो गई। अँधेरा यहाँ तक बढ़ा कि हाथ न सूझने लगा। इतने में बिजली चमकी। उसके प्रकाश में देखा कि सन्तू उस मूसलाधार पानी में बाल-स्वभाव-जन्य किलोलें कर रहा है। उसने यह भी देखा कि वह ख़ूब ठण्ढा जल पी रहा है। विमल नींद में बोल उठा—

"सन्तू, यह क्या? पानी में मत खेलो। बीमार हो जाओगे।" सन्तू ने मुसकुरा कर कहा—"अभागे विमल दादा, तुमने तो ठण्ढे जल से मेरी प्यास न बुझाई।"

इसके बाद बिमल अपना हृदय मसोस कर आगे बढ़ा। वह एक बार ज़ोर से पुकारने लगा—

"सन्तू! तुम कहाँ हो? सन्तू! तुम कहाँ हो?"

पर उसे झंझा-वायु से क्षुब्ध अरण्य में केवल यही प्रतिध्वनि सुनाई पड़ी, "सन्तू! तुम कहाँ हो?"

अब मानों विमल इस जंगल से पार होने की चेष्टा करने लगा। धीरे-धीरे बादल फटने लगे। भगवान् शर्वरीनाथ ने अपना सुन्दर मुख फिर दिखा दिया। अब विमल ने देखा, मानों निर्जन वन में एक पहाड़ के नीचे दो नदियों का सङ्गम है। वहाँ एक सुन्दर बाटिका है। उस बाटिका में एक कुटीर भी है। एक ओर एक नदी, कदली-कुञ्ज में क्रीड़ा करती हुई, सुन्दर शुभ्र स्फटिक-शिलाओं से टकराती हुई, वृक्षों की टहनियों से छेड़छाड़ करती हुई, दूसरी नदी में अपनी वक्र धारा को मिलाती हुई, उसके वक्षस्थल पर विश्राम लेती हुई दृगोचर होती है। उस शान्ति-कुटीर में एक युवा सन्यासी बैठा है। विमल ने इस पुष्प-बाटिका के भीतर जाना चाहा। इससे उसके हृद्गत भावों को जान कर ही मानों संन्यासी बोला—

"विमल दादा! यह पवित्र स्थान आरम्भ-शूरों के लिए नहीं। अभागे विमल! तुमने केवल आरम्भ-शौर्य के वशीभूत होकर मेरा यह महत्तम अनुष्ठान पूरा करने का प्रण किया था। जाओ। अपने दायित्व-भार को समझो!"

विमल ने चौंक कर कहा, "ओफ़! सन्तू!!"

विमल की आँख खुल गई। उसने सिरहाने कमला को बैठे देखा। वह उठ कर बैठ गया।

सारा शरीर पसीने से तर था। कमला ने मीठे स्वर से पूछा—"क्या है?"

विमल ने काँपती हुई भर्राई आवाज़ से कहा, "कमला! यदि हृदय इञ्जन का बायलर होता तो भक से फट जाता!!!

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) अर्थ बताओ—सलिल, स्पर्श, निनाद, दृश्य, प्रतिमूर्ति, शुभ्र, भेदक, आन्तरिक, तृष्णा, शिखरों, दिवान्ध, प्रयाण सदृश विसर्जन, नाद, कल, अंशुमाली, आरक्त, मुक्त, तरंग, दुर्गम व्यास स्फटिक-शिला, वक्षस्थल, हृद्गत अनुष्ठान, दायित्व।

(ख) अर्थान्तर की व्याख्या करो :—संसार-सार, अत्यधिक—धिक, साधारण—रण, समीरण—रण, दुबिधा—बिधा,—विसर्जन जन, पश्चात्ताप—ताप।

(ग) पर्यायवाची शब्द बताओ—चन्द्र, गगन, रजनी, शर्वरीनाथ, उदक, पर्वत, अग्नि, दिन।

(घ) निम्नांकित मुहाविरों के स्पष्ट अर्थ लिखो— मुख मुरझाना, आँख मूँदना, धैर्य का दिवाला निकालना, मुह फेरना, नीचे से पृथ्वी खिसकना।

२—भाषा सम्बन्धी—

(ङ) इस कहानी के भाषा-सौष्ठव पर अपने विचार प्रगट करो।

(च) इस कहानी की भाषा के आधार पर यह बताओ, कि सुदर्शन जी किस ढंग की भाषा के पक्षपाती हैं।

(छ) इस कहानी में यदि उर्दू के कुछ शब्दों का प्रयोग हुआ हो तो उन्हें हिन्दी में रूपान्तरित करो।

(ज) सरल हिन्दी में भाव स्पष्ट करो—

(अ) शिप्रे !············नैश गगन।

(ब) शीतल मन्द··········लिखी पड़ती है।

(स) चुन-चुन मिट्टी·······बसेरा है।

३—विचार सम्बन्धी—

(झ) प्रमाणित करो—

(प) मैं भी अनन्त के गर्भ में स्थित हूँ।

(फ) अनन्त के गर्भ में अनन्त वस्तुएँ हैं।

(ञ) इस वाक्य से किस स्थिति का ज्ञान होता है। विस्तार पूर्वक समझाओ—कमला, यदि हृदय इंजन का बायलर होता तो भक् से फट जाता।

(ट) शिप्रा के अतीत जीवन का लेखक ने जो चित्र खींचा है, उसे अपने शब्दों में प्रकट करो।

(ठ) कहानी-कला की दृष्टि से यह कहानी कैसी है ? इसके कला-सौन्दर्य पर अपने विचार प्रकट करो।

(ड) इस कहानी के कथानक से तुम्हारे हृदय में किस प्रकार के भावों का उदय होता है ?

४—व्याकरण सम्बन्धी—

(ढ) सविग्रह समास बताओ—सुभग-सलिला, संसार-चक्र, चिरसंगिनी, कल निनाद, उत्साह शून्य, संसार-विरत, सान्ध्य प्रकाश, सुख-शय्या, हृदय-भेदक, मन्द समीरण, बाल-स्वभाव-जन्य, आरम्भ-शूर।

(ण) सन्धि-विग्रह करो—अनन्त, वृक्षाच्छादित, निर्जन, चन्द्रालोकित, गृहावलियाँ, दुराशा, शीतोदक, प्रेमालाप, दिवान्ध, निर्बल, दृग्गोचर।

(त) क्या हैं और कैसे बने हैं :—संगिनी, सान्ध्य, नैराश्य, आन्तरिक, तरंगित, प्रारम्भिक, शौर्य।

(थ) वाक्य विश्लेषण करो—

(य) सन्तू ! क्या प्रातःकाल·········न बुझाई।

(र) यदि इसी प्रकार······पूर्ण कर सकूँगा।

(द) पदव्याख्या करो—दिन आता है, आठों, कुटीर, छेड़छाड़ निर्जन वन।

१६—भगवान श्रीकृष्ण

[लेखक—श्रीयुत पं० पद्मसिंह शर्मा]

वंश—ब्राह्मण

निवास स्थान—बिजनौर जिलान्तर्गत नयका नगला गाँव

जन्म संवत्—१९३३

मृत्यु संवत्—१९८९

परिचय :—आप हिन्दी-साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान्, सुलेखक और

समालोचक थे। संस्कृत, उर्दू और फ़ारसी पर आपका पूर्ण रूप से अधिपत्य था। बाल्यावस्था में आपको संस्कृत, उर्दू और फ़ारसी की शिक्षा भी मिली थी। आपकी अध्ययन शक्ति बड़ी प्रबल थी। पुस्तकों के पढ़ने और मनन करने का आपको व्यसन-सा हो गया था। आपकी स्मरण-शक्ति बड़ी तीव्र थी। संस्कृत के सैकड़ों श्लोक, उर्दू और फ़ारसी के अनेक लाजवाब शेर सदैव आपके कण्ठ पर रहते थे। आप इन श्लोकों और शेरों का अपनी रचनाओं में उपयुक्त स्थानों पर प्रयोग भी किया करते थे। आपके प्रत्येक निबन्ध में कोई न कोई श्लोक या शेर उदाहरण स्वरूप अवश्य पाया जाता है। आपकी प्रकृति बड़ी सरल और उदार थी। स्वाभिमान का आप अधिक ध्यान रखते थे।

कार्य :—शर्मा जी का सम्पूर्ण जीवन हिन्दी साहित्य की सेवा ही करते करते व्यतीत हुआ। आप 'सत्यवादी', 'परोपकारी', 'अनाथ रक्षक' 'भारतोदय' इत्यादि पत्रों के सम्पादक रहे। ज्वालापुर-महाविद्यालय में आपने अध्यापन कार्य भी किया था। साहित्य-संसार में समालोचना की एक नवीन शैली की आपने सृष्टि की। बिहारी सतसई पर आपने एक बहुत ही सुन्दर आलोचनात्मक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से आपको बारह सौ रुपये का मंगलाप्रसाद पारितोषिक भी प्राप्त हो चुका है।

शैली :—आपकी शैली बड़ी सजीव और ओजस्विनी है। आप अपनी शैली के हिन्दी में एक लेखक थे। आपकी शैली में आपकी अन्तरात्मा बोलती रहती थी। आप उर्दू के चुभते हुए शब्दों के द्वारा अपनी भाषा को एक अनूठे ढंग से अलंकृत कर दिया करते थे। संस्कृत और उर्दू शब्दों का संमिश्रण आपकी शैली में ख़ूब पाया जाता है। व्यंग्य-पूर्ण भावों को प्रकट करने में आपकी भाषा लाजवाब है।

रचनाएँ :—१ पद्मपराग (निबन्ध संग्रह), २ बिहारी सतसई की भूमिका (आलोचना), ३ बिहारी सतसई पर संजीवनी भाष्य (टीका), ४ गद्य गौरव (वर्तमान साहित्यकारों के लेखों का संग्रह)।

पाँच हज़ार वर्ष बीते भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द इस धराधाम पर अवतीर्ण हुए थे। जन्माष्टमी का शुभ पर्व प्रति वर्ष हमें इस चिरस्मरणीय घटना की याद दिलाता है। आर्यजाति बड़ी श्रद्धा-भक्ति से इस परम पावन पर्व को मनाती है। विश्व की उस अलौकिक विभूति के गुण-कीर्त्तन से करोड़ों आर्यजन अपने हृदयों को पवित्र बनाते हैं। अपनी वर्त्तमान अधोगति में, निराशा के इस भयानक अन्धकार में, उस दिव्य ज्योति को ध्यान की दृष्टि से देखकर सन्तोष लाभ करते हैं। आज दुःखदावानल से दग्ध भारत भूमि घनश्याम की अमृत-वर्षा की बाट जोहती है। दुःशासन-निपीड़ित प्रजा-द्रौपदी रक्षा के लिये कातर स्वर में पुकारती है। धर्म अपनी दुर्गति पर सर धुनता हुआ 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति' की याद दिलाकर प्रतिज्ञा भंग की 'नालिश' कर रहा है। जाति जननी अत्याचार-कंस के कष्टकारागार में पड़ी दिन काट रही है, गौएँ अपने 'गोपाल' की याद में प्राण दे रही हैं, जान गँवा रही हैं। इस प्रकार भगवान् के जन्म दिन का शुभ अवसर भी हमें अपनी मौत का मर्सिया ही सुनाने को मजबूर कर रहा है। आनन्द-बधाई के दिन भी अपना ही दुखड़ा रो रहे हैं, विधि की बिडम्बना से 'प्रभाती' के समय 'विहाग' अलापना पड़ रहा है। संसार की अनेक जातियाँ क्षुद्र और बहुधा कल्पित आदर्शों के सहारे उन्नति के शिखर पर आरूढ़ हो गई हैं और हो रही हैं। उत्तम आदर्श उन्नति का प्रधान अवलम्ब है। अवनति के गर्त में पतित जाति के लिए तो आदर्श ही उद्धार-रज्जु हैं। आर्य-जाति के लिए आदर्शों का अभाव नहीं है। सब प्रकार के, एक-से-एक बढ़कर, आदर्श सामने हैं। संसार की अन्य किसी जाति ने इतने आदर्श नहीं पाये, फिर भी—इतने महत्त्वशाली आदर्श पाकर भी—आर्य-जाति क्यों नहीं उठती! यही नहीं, कभी-कभी तो आदर्शवाद' ही दुर्दशा का कारण बन जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण संसार-भर के आदर्शों में सर्वांग सम्पूर्ण आदर्श हैं। इसी कारण हिन्दू उन्हें सोलह-कला-सम्पूर्ण अवतार,

'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' मानते हैं। अवतार न मानने वाले भी उन्हें आदर्श योगिराज, कर्मयोगी, सर्व श्रेष्ठ महापुरुष कहते हैं। मनुष्य-जीवन को सार्थक बनाने के लिए जो आदर्श अपेक्षित हैं, वह सब स्पष्ट रूप में, प्रचुर परिमाण में श्रीकृष्ण चरित में विद्यमान हैं। ध्यानी, ज्ञानी, योगी, कर्मयोगी, नीति-धुरन्धर नेता और महारथी योद्धा, जिस दृष्टि से देखिये, जिस कसौटी पर कसिये, श्रीकृष्ण अद्वितीय ही प्रतीत होंगे। संस्कृत भाषा का साहित्य कृष्ण-चरित की महिमा से भरा पड़ा है। पर दुर्भाग्य से हम उसके तत्त्व को हृदयंगम नहीं करते। हम 'आदर्श' का अनुकरण करना नहीं चाहते, उलटा उसे अपने पीछे घसीटना चाहते हैं और यही हमारी अधोगति का कारण है। यदि हम कर्मयोगी भगवान् कृष्ण के आदर्श का अनुकरण करते तो आज इस दयनीय दशा में न होते। कृष्ण चरित्र के सर्व श्रेष्ठ लेखक श्रीबंकिमचन्द्र ने एक जगह खिन्न होकर लिखा है—

"जब से हम हिन्दू अपने आदर्श को भूल गये और हमने कृष्णचरित्र को अवनत कर लिया तब से हमारी सामाजिक अवनति होने लगी। जयदेव (गीतगोविन्द-निर्माता) के कृष्ण की नकल करने में सब लग गये पर 'महाभारत के' कृष्ण की कोई याद भी नहीं करता है।"

× × ×

"सनातन-धर्म द्वेषी कहा करते हैं कि भगवच्चरित्र की कलुषित कल्पना करने के कारण ही भारतवर्ष में पाप का स्रोत बढ़ गया है। इसका प्रतिवाद कर किसी को कभी जय प्राप्त करते नहीं देखा है। मैं श्रीकृष्ण को स्वयम् भगवान् मानता हूँ और उन पर विश्वास करता हूँ, अँग्रेजी शिक्षा से मेरा यह विश्वास और दृढ़ हो गया है। पुराणों और इतिहास में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के चरित्र का वास्तव में कैसा वर्णन है, यह जानने के लिए मैंने जहाँ तक बना इतिहास और पुराणों का मन्थन किया। इसका फल यह हुआ कि श्रीकृष्णचन्द्र के विषय में जो पाप-कथाएँ प्रचलित हैं वे अमूलक जान पड़ीं।

उपन्यासकारों ने श्रीकृष्ण के विषय में जो मनगढ़न्त बातें लिखी हैं उन्हें निकाल देने पर जो कुछ बचता है वह अति विशुद्ध, परम पवित्र, अतिशय महान् मालूम हुआ है। मुझे यह भी मालूम होगया है कि ऐसा सर्व-गुणान्वित और सर्व पाप-रहित आदर्श चरित और कहीं नहीं है। न किसी देश के इतिहास में और न किसी काव्य में।"

श्रीकृष्ण-चरित का मनन करनेवालों को श्रीबंकिमचन्द्र की उक्त सम्मतियों पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्ण के चरित्र के रहस्य को अच्छी तरह समझकर उसके आधार पर यदि हम अपने जाति-जीवन का निर्माण करें तो सारे संकट दूर हो जायँ। उदाहरण के तौर पर नेताओं को लीजिये। आजकल हमारे देश में नेताओं की बाढ़ आई हुई है, जिसे देखिये वही 'सार्वभौम नेता' नहीं तो 'आल-इण्डिया लीडर' है। इस बाढ़ को देखकर चिन्ता के स्वर में कहना पड़ता है—

लीडरों की धूम है और फालोअर कोई नहीं।
सब तो जनरल हैं यहाँ, आखिर सिपाही कौन है॥

पर उनमें कितने हैं, जिन्होंने आदर्श नेता श्रीकृष्ण के चरित्र से शिक्षा ग्रहण की है? नेता नितान्त निर्भय, परम निष्पक्ष और विचारों का शुद्ध होना चाहिये, ऐसा कि संसार की कोई विपत्ति या प्रलोभन उसे किसी दशा में भी अपने व्रत से विचलित न कर सके।

महाभारत के युद्ध की तैयारियाँ हो चुकी हैं, सन्धि के सारे प्रयत्न निष्फल हो चुके हैं, धर्मराज युधिष्ठिर का सदय हृदय युद्ध के अवश्यम्भावी दुष्परिणाम को सोचकर विचलित हो रहा है, इस दशा में भी वह सन्धि के लिये व्याकुल हैं। बड़ी ही कठिन समस्या उपस्थित है। श्रीकृष्ण स्वयं सन्धि के पक्ष में थे। सन्धि के प्रस्ताव को लेकर उन्होंने स्वयं ही दूत बन कर जाना उचित समझा। दुर्योधन जैसे स्वार्थान्ध, कपट-कुशल और 'जीते जुआरी के' दरबार में ऐसे अवसर पर दूत बनकर जाना जान से हाथ धोना, दहकती हुई

आग में कूदना था। श्रीकृष्ण के दूत बन कर जाने के प्रस्ताव पर सहसा कोई सहमत न हुआ। दुर्योधन की कुटिलता और क्रूरता के विचार से श्रीकृष्ण का वहाँ जाना किसी ने उचित न समझा, इस पर वाद-विवाद हुआ। उद्योग-पर्व का वह प्रकरण 'भगवद्‌यानपर्व' बड़ा अद्‌भुत और हृदयहारी है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण के सन्धि-प्रस्ताव को लेकर जाने का वर्णन है। श्रीकृष्ण जानते थे कि सन्धि के प्रस्ताव में सफलता न होगी, दुर्योधन किसी की मानने वाला जीव नहीं है, यात्रा आपद्‌जनक है, प्राण संकट की सम्भावना है, परन्तु कर्तव्यानुरोध से जान पर खेलकर भी उन्होंने वहाँ जाना ही उचित समझा।

दुर्योधन को जब मालूम हुआ कि श्री कृष्ण आ रहे हैं, तो उसने श्रीकृष्ण को साम, दाम, दण्ड भेद द्वारा जाल में फँसाने का कोई उपाय उठा न रक्खा। मार्ग में जगह-जगह उनके स्वागत का धूम-धाम से प्रबन्ध किया गया। रास्ते की सड़कें खूब सजाई गईं। दुर्योधन जानता था कि सब कुछ श्रीकृष्ण के हाथ में है, जो वह चाहेंगे वही होगा, उनकी आज्ञा से पाण्डव अपना सर्वस्व त्याग कर सकते हैं, श्रीकृष्ण को क़ाबू में कर लिया जाय तो बिना युद्ध के ही विजय हो सकती है, श्रीकृष्ण के बल-बूते पर ही पाण्डव युद्ध के लिए सन्नद्ध हो रहे हैं। निदान दुर्योधन ने श्रीकृष्ण को फँसाने की प्राणपण से चेष्टा की। पर 'अच्युत' श्रीकृष्ण अपने लक्ष्य से कब चूकने वाले थे। सन्धि का प्रस्ताव स्वीकृत न हुआ। दुर्योधन, कर्ण, शकुनि आदि अपने साथियों के साथ सभा से उठ कर चला गया। जब उसने साम-दाम से काम बनते न देखा तो आवश्यक दण्ड देने—क़ैद कर लेने का षड्‌यन्त्र रचा, उन्हें अपने घर पर निमन्त्रित किया। दुर्योधन की इस दुरभि-सन्धि को विदुर आदि दूरदर्शी ताड़ गये, उन्होंने श्रीकृष्ण को वहाँ जाने से रोका। श्रीकृष्ण स्वयं भी सब कुछ समझते थे, पर वह जिस काम को आये थे, उसके लिए एक बार फिर प्राणपण से प्रयत्न करना ही उन्होंने उचित समझा। वह दुर्योधन के घर पहुँचे और निर्भयता-पूर्वक सन्धि का औचित्य समझाया। पाण्डवों की निर्दोषिता और

दुर्योधन का अन्याय प्रमाणित किया, पर दुर्योधन किसी तरह न माना। श्रीकृष्ण उसे फटकार कर चलने लगे, दुर्योधन ने भोजन के लिए आग्रह किया, इस पर जो उचित उत्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने दिया वह उन्हीं के योग्य था। कहा कि—

सम्प्रीति-भोज्यान्यन्नानिह्यापद्भोज्यानि वा पुनः।
न च सम्प्रीयसे, राजन् न चैवापद्गता वयम् ॥

अर्थात् या तो प्रीति के कारण किसी के यहाँ भोजन किया जाता है, या फिर विपत्ति में—दुर्भिक्षादि संकट में। तुम हमसे प्रेम नहीं करते और हम पर कोई ऐसी आपत्ति भी नहीं आई है, ऐसी दशा में तुम्हारा भोजन कैसे स्वीकार करें?

इस प्रत्याख्यान से क्रुद्ध होकर दुर्योधन ने उन्हें घेर कर पकड़ना चाहा, पर भगवान् श्रीकृष्ण के अलौकिक तेज और दिव्य पराक्रम ने उसे परास्त कर दिया। वह अपनी धृष्टता पर लज्जित होकर रह गया।

हमारे लीडर लोग भगवान् के इस आचरण से शिक्षा ग्रहण करें तो उनका और लोक का कल्याण हो।

पाण्डव और कौरव दोनों ही श्रीकृष्ण के सम्बन्धी थे, दोनों ही उन्हें अपने पक्ष में लाने के लिए समान रूप से प्रयत्नशील थे। 'लोक-संग्रह' के तत्त्व से भी भगवान् अनभिज्ञ न थे, पर उन्होंने सर्वप्रियता के मोह में पड़ कर धर्म को अधर्म नहीं बताया। निरपराध को अपराधी बता कर अपनी 'समदर्शिता' या उदारता का परिचय नहीं दिया। श्रीकृष्ण अपने प्राणों का मोह छोड़ कर दुर्योधन को समझाने गये और भयानक संकट के भय से भी कर्त्तव्य-पराङ्मुख न हुए।

आर्य जाति के लीडर और शिक्षित युवक श्रीकृष्ण-चरित को अपना आदर्श मान कर यदि अपने चरित्र का निर्माण करें तो वे देश और जाति का उद्धार करने में समर्थ हो सकेंगे। परमात्मा ऐसा ही करे।

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) अर्थ बताओ—अवतीर्ण, चिरस्मरणीय, पावन, विभूति, अधोगति, निपीड़ित, कारागार, विडम्बना, आरूढ़, रज्जु, अपेक्षित, प्रचुर, परिमाण, अनुकरण, अमूलक, नितान्त, कुटिलता, प्रकरण, प्रस्ताव, दुरभिसन्धि, प्राण पण, आग्रह, प्रत्याख्यान, अनभिज्ञ, कर्तव्य परांगमुख ।

(ख) अर्थान्तर की व्याख्या करो—पावन-वन, प्रभाती-भाती, प्रधान-धान, अनुकरण-करण, अवसर-सर, दुर्योधन-धन, आग्रह-ग्रह ।

(ग) निम्नांकित शब्दों के विशेष अर्थ बताओ—ध्यानी, ज्ञानी, योगी, कर्मयोगी, नेता, महारथी, महापुरुष ।

(घ) निम्नांकित मुहाविरों के अर्थ लिख कर उनका अपने वाक्यों में प्रयोग करो :—बाट जोहना, सर धुनना, दिन काटना, विहाग अलापना, जान से हाथ धोना ।

२—भाषा सम्बन्धी—

(ङ) पं० पद्मसिंह शर्मा जी की भाषा की विशेषता बताओ ।

(च) इस लेख के आधार पर यह प्रमाणित करो, कि पं० पद्मसिंह शर्मा की रचनाओं में संस्कृत और उर्दू शब्दों का संमिश्रण पाया जाता है ।

(छ) इस लेख में आनेवाले उर्दू शब्दों को हिन्दी में रूपान्तरित करो ।

(ज) निम्नांकित अंशों के भावार्थ लिखो :—

(अ) जन्माष्टमी का·······जान गवाँ रही हैं ।

(ब) उद्योग पर्व का······उचित समझा ।

(झ) नीचे लिखे हुए कथनों में यदि कोई अलंकार हो तो बताओ :—

(प) अपनी वर्तमान अधोगति में निराशा के भयानक अन्धकार

में, उस दिव्य ज्योति को ध्यान की दृष्टि से देख कर सन्तोष लाभ करते हैं।

(फ) अवनति के गर्त में पतित जाति के लिए तो आदर्श ही उद्धार-रज्जू है।

३—विचार सम्बन्धी—

(ञ) श्रीकृष्ण जी कौन थे, उनके सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो ?

(ट) निम्नांकित शब्दों पर विचार करते हुए श्रीकृष्णचन्द्र के जीवन-चरित्र पर प्रकाश डालो :—योगी, कर्मयोगी, महारथी, योद्धा।

(ठ) श्रीकृष्णजी के सम्बन्ध में लेखक ने जो मत प्रगट किया है, उसका सारांश अपनी भाषा में लिखो।

(ड) श्रीकृष्ण जी के चरित्र से तुम कौन-कौन सी शिक्षा ग्रहण कर सकते हो।

(ढ) निम्नांकित वाक्य—अंशों पर अपने विचार प्रगट करो :—

(ब) उत्तम आदर्श उन्नति का प्रधान अवलम्ब है।

(भ) अवनति के गर्त में पतित जाति के लिए आदर्श ही उद्धार-रज्जु है।

४—व्याकरण सम्बन्धी—

(ण) सविग्रह समास बताओ—श्रद्धा-भक्ति, दिव्य ज्योति, अमृत-वर्षा, दुर्गति, उद्धार-रज्जु, सोलह-कला सम्पूर्ण, सर्वपाप-रहित, सन्धि-प्रस्ताव।

(त) क्या हैं और कैसे बने हैं :—पीड़ित, अपेक्षित, कर्मयोगी, सामाजिक, कलुषित, विचलित, निमंत्रित।

(थ) संधि-विच्छेद करो, और उनके नियम लिखो :—अधोगति, सर्वांग, गुणान्वित, निष्पक्ष, कर्तव्यानुरोध, प्रत्याख्यान।

(द) पदव्याख्या करो—सन्तोष, धुनता, हुआ, अपने प्राणपण से, अपराधी, परास्त कर दिया।

२०—सभ्यता का विकास

[लेखक—श्रीयुत श्यामसुन्दर दास]

वंश—खत्री

जन्मस्थान—काशी

जन्म सवत्—१९२८

परिचय :—आप हिन्दी-साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान्, लेखक और समालोचक हैं। आपका अध्ययन अत्यन्त गंभीर है। आपने अपने कुछ मित्रों के सहयोग से काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना करके अपने को अधिक कीर्तिशाली बना लिया। काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की महत्वपूर्ण उन्नति आप ही के सतत उद्योग और परिश्रम का फल है। काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के लिए आपने अपना सम्पूर्ण जीवन ही दे डाला है। हिन्दी-साहित्य के निर्माण और प्रचार के सम्बन्ध में आपका उद्योग स्तुत्य है। आपकी साहित्यिक-सेवाओं पर मुग्ध होकर हिन्दी-भाषी जनता ने आपको पंचम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का सभापति बनाया था। सरकार की दृष्टि में आप बड़े माननीय और कीर्ति-भाजन हैं। सरकार की ओर से आपको 'रायबहादुर' की उपाधि भी प्राप्त है।

कार्यः—आपने अंगरेज़ी में बी० ए० की परीक्षा पास की। शिक्षा समाप्त करने के बाद आप सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल में प्रधान अध्यापक के पद पर नियुक्त हुये। तत्पश्चात् काश्मीर चले गये। काश्मीर से वापस आने पर आप लखनऊ में एक स्कूल के प्रधान अध्यापक हुये। कुछ दिनों के बाद आप हिन्दू विश्व-विद्यालय में चले गये, और वहाँ हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष के पद पर नियुक्त किये गये। आज भी आप इस पद पर वर्तमान हैं। हिन्दू विश्वविद्यालय में आपकी बड़ी प्रतिष्ठा है। आपने अपनी साहित्यिक-सेवाओं से लोगों को विमुग्ध कर लिया है। आपकी गंभीर रचनाएँ बी० ए० और एम० ए० की हिन्दी परीक्षा में भी रक्खी गई हैं।

शैली:—आप की शैली परिमार्जित और भाषा सुलझी हुई है। आप

शुद्ध हिन्दी लिखना अधिक पसन्द करते हैं। आपकी रचनाओं में उर्दू शब्दों का प्राय: अभाव है। आप यों तो अपने भावों को स्पष्टता से व्यक्त करते हैं, किन्तु कहीं-कहीं विषय-गंभीरता के कारण उसमें दुरूहता भी आ जाती है।

रचनाएँ :—सम्पादित—१ रामचरित मानस, २ पृथ्वीराज रासो, ३ हिन्दी शब्द सागर। साहित्य और आलोचना—४ हिन्दी-कोविद रत्नमाला, ५ साहित्य लोचन, ६ हिन्दी भाषा और साहित्य, ७ गोस्वामी तुलसीदास, ८ भाषा-विज्ञान।

ईश्वर की सृष्टि विचित्रताओं से भरी हुई है। जितना ही इसे देखते जाइए, इसका अन्वेषण करते जाइए, इसकी छान बीन करते जाइये, उतनी ही नई शृङ्खलायें विचित्रता की मिलती जायेंगी। कहाँ एक छोटा सा बीज और कहाँ उससे उत्पन्न एक विशाल वृक्ष, कहाँ एक विन्दु मात्र पदार्थ और कहाँ उससे उत्पन्न मनुष्य। दोनों में कितना अंतर, और फिर दोनों में कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। ज़रा सोचिये तो सही, एक छोटे से बीज के गर्भ में क्या-क्या भरा हुआ है। उस नाम मात्र के पदार्थ में एक बड़े से बड़े वृक्ष को उत्पन्न करने की शक्ति है, जो समय पाकर पत्र, पुष्प, फल से सम्पन्न हो वैसे ही अगणित बीज उत्पन्न करने में समर्थ होता है, जैसे बीज से उसकी स्वयं उत्पत्ति हुई थी। कैसे विन्दुमात्र पदार्थ से मनुष्य का शरीर बनता है, कैसे क्रम-क्रम से नवजात बालक के अंग पुष्ट होते जाते हैं, उसमें नई शक्ति आती जाती है, उसके मस्तिष्क का विकास होता जाता है, उसमें भावनाएँ उत्पन्न होती जाती हैं और समय पाकर वह उस शक्ति से सम्पन्न हो जाता है, जिससे वह अपनी ही सी सृष्टि की वृद्धि करता जाय। फिर एक ही प्रणाली से उत्पन्न अनेक प्राणियों की भिन्नता कैसी आश्चर्यजनक है। कोई बलवान है, तो कोई विचारवान। कोई न्यायशील है तो कोई अत्याचारी। कोई दयामय है तो कोई क्रूरातिक्रूर। कोई सदाचारी है तो कोई दुराचरी कोई

संसार की माया में लिप्त है तो कोई परलोक-चिन्ता में रत । पर क्या इन विशेषताओं के बीच कोई सामान्य धर्म्म भी है या नहीं, विचार कर देखिये । सब बातें विचित्र आश्चर्य-जनक और कौतूहल-वर्द्धक होने पर भी किसी शासक द्वारा निर्धारित नियमावली से बद्ध हैं। सब अपने-अपने नियमानुसार उत्पन्न होते, बढ़ते, पुष्ट होते और अन्त में उस अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं, जिसे हम मृत्यु कहते हैं।

पर यही उनकी समाप्ति नहीं है । वे सृष्टि के कार्य-साधन में निरन्तर तत्पर हैं। मर कर भी वे सृष्टि-निर्माण में योग देते हैं। यों ही वे जीते-मरते चले जाते हैं । इन्हीं सब बातों की जाँच विकासवाद का विषय है। यह शास्त्र हमको इस बात की छान-बीन में प्रवृत्त करता है और बतलाता है कि कैसे संसार की सब बातों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में अभिव्यक्ति हुइ, कैसे क्रम-क्रम से उनकी उन्नति हुई; और किस प्रकार उनकी संकुलता बढ़ती गइ। जैसे संसार का भूतात्मक अथवा जीवात्मक उत्पत्ति के सम्बन्ध में विकासवाद के निश्चित नियम पूर्ण रूप से घटते हैं, वैसे ही वे मनुष्य के सामाजिक जीवन के उन्नति-क्रम आदि को अपने अधीन रखते हैं। यदि हम सामाजिक जीवन के इतिहास पर ध्यान देते हैं, तो हमें विदित होता है कि पहले मनुष्य असभ्य व जंगली अवस्था में थे। वे झुंडों में घूमा करते थे; और उनके जीवन का एक मात्र उद्देश्य उदर की पूर्ति था, जिनका साधन वे जानवरों के शिकार से करते थे। क्रमशः शिकार में पकड़े हुए जानवरों की संख्या आवश्यकता से अधिक होने के कारण उनको बाँध रखना पड़ा। इसका लाभ उन्हें भूख लगने पर स्पष्ट विदित हो गया और वहीं से मानो उनके पशु-पालन-विधान का बीजारोपण हुआ। धीरे-धीरे वे पशु-पालन के लाभों को समझने लगे और चारे आदि के आयोजन में प्रवृत्त हुए। साथ ही पशुओं को साथ लिये-लिये घूमने में उन्हें कष्ट दिखलाई पड़ने लगे और वे एक नियत स्थान पर रह कर जीवन-निर्वाह का उपाय करने लगे। अब वृत्ति की ओर उनका ध्यान गया। कृषि-

कर्म होने लगे, गाँव बसने लगे, पशुओं और भूभागों पर अधिकार की चर्चा चल पड़ी, लोहारों और बढ़इयों की संख्यायें बढ़ गईं। आपस में लेन-देन होने लगा। एक वस्तु देकर, दूसरी आवश्यक वस्तु प्राप्त करने का उद्योग हुआ और यहीं मानो व्यापार की नींव पड़ी। धीरे-धीरे इन गाँवों के अधिपति हुये, जिन्हें अपने अधिकार को बढ़ाने, अपनी सम्पत्ति को वृद्धि देने तथा अपने बल को पुष्ट करने की लालसा उत्पन्न हुई। सारांश यह है कि आवश्यकतानुसार उनके रहन-सहन, भाव विचार सब में परिवर्तन हो चला।

जो सामाजिक जीवन पहले था, वह अब न रहा। अब उसका रूप ही बदल गया। अब नये विधान आ उपस्थित हुये। नई आवश्यकताओं ने नई चीज़ों के बनाने के उपाय निकाले, जब किसी चीज़ की आवश्यकता आ उपस्थित होती है तब मस्तिष्क-शक्ति का विकास होने लगा। सामाजिक जीवन के परिवर्तन का दूसरा नाम असभ्यावस्था से सभ्यावस्था को प्राप्त होना है; अर्थात् ज्यों-ज्यों सामाजिक जीवन का विकास, विस्तार और उसकी संकुलता बढ़ती गई त्यों-त्यों सभ्यता देवी का साम्राज्य स्थापित होता गया। जहाँ पहले असभ्यता वा जङ्गलीपन ही में मनुष्य सन्तुष्ट रहते थे वहाँ उन्हें सभ्यता-पूर्वक रहना पसंद आने लगा। सभ्यता सामाजिक जीवन में उस स्थिति का नाम है, जब मनुष्य को अपने सुख और चैन के साथ-साथ दूसरों के स्वत्वों और अधिकारों का भी ज्ञान हो जाता है। आदर्श सभ्यता वह है, जिसमें मनुष्य का यह स्थिर सिद्धान्त हो जाय कि 'जितना किसी काम के करने का अधिकार मुझे है, उतना ही दूसरे को भी है, और उसे इस सिद्धान्त पर दृढ़ रखने के लिये किसी बाहरी अंकुश की आवश्यकता न रह जाय। यह भाव जिस जाति में जितना ही अधिक पाया जाता है, उतना ही अधिक वह जाति सभ्य समझी जाती है। इस अवस्था की प्राप्ति बिना मस्तिष्क का विकास नहीं हो सकता अथवा यह कहना चाहिये कि सभ्यता की उन्नति और मस्तिष्क की उन्नति साथ ही साथ होती है। एक दूसरे का अन्यान्याश्रय-सम्बन्ध है। एक का दूसरे के बिना आगे बढ़

जाना या पीछे पड़ जाना असम्भव है। दोनों साथ-साथ चलते हैं। मस्तिष्क के विकास में साहित्य का स्थान बड़े महत्व का है।

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) अर्थ बताओः—सृष्टि, अन्वेषण, शृङ्खला, घनिष्ठ, सम्पन्न, अगणित, नवजात, पृष्ठ, मस्तिष्क, विकास, प्रणाली, लिप्त, सामान्य निर्धारित, प्रवृत्त, साधन, परिवर्तन, संकुलता, आदर्श।

(ख) अर्थान्तर की व्याख्या करो—विचित्र-चित्र, अनेक-नेक, अभिव्यक्ति-व्यक्ति, निश्चित-चित, उद्देश-देश, आयोजन-योजन, अंकुश-कुश, उन्नति-नत।

(ग) पर्यायवाची शब्द बताओ—सृष्टि, अवस्था, जंगल।

२—भाषा सम्बन्धी—

(घ) बाबू श्यामसुन्दरदास किस ढंग की भाषा के पक्षपाती हैं?

(ङ) बाबू श्यामसुन्दरदास की भाषा में कहीं-कहीं दुरूहता क्यों आ गई है?

(च) इस लेख में आने वाले उर्दू शब्दों को हिन्दी में रूपान्तरित करो।

(छ) बाबू श्यानसुन्दरदास की भाषा-विशेषता पर अपने विचार प्रगट करो।

(ज) निम्नांकित अंशों के भावार्थ स्पष्ट करोः—

(अ) वे सृष्टि के······अधीन रखते हैं।

(ब) सामाजिक जीवन·········होता गया।

३—विचार सम्बन्धी—

(झ) इस लेख का सारांश अपनी भाषा में प्रगट करो।

(ञ) सभ्यता से क्या तात्पर्य समझते हो? मानव-जगत में उसका किस प्रकार विकास हुआ?

(ट) मानव-जगत की आदिम अवस्थाओं के सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो ?

(ठ) निम्नांकित वाक्य-अंशों पर अपने विचार प्रगट करो—

(प) सभ्यता सामाजिक जीवन में उस स्थिति का नाम है, जब मनुष्य को अपने सुख और चैन के साथ-साथ दूसरों के स्वत्वों और अधिकारों का भी ज्ञान हो जाता है।

(फ) आदर्श सभ्यता वह है, जिसमें मनुष्य का यह स्थिर सिद्धान्त हो जाय कि जितना किसी काम के करने का अधिकार मुझे है उतना ही दूसरे को भी है।

४—व्याकरण सम्बन्धी—

(ड) सविग्रह समास बताओः—पत्र-पुष्प, नव-जात, सदाचारी, आश्चर्य-जनक, नियमानुसार, उन्नति-क्रम, पशु पालन-विधान, जीवन-निर्वाह।

(ढ) सन्धि विच्छेद करोः—नियमावली, निरन्तर, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, भूतात्मक. बीजारोपण, सभ्यावस्था अन्यान्याश्रय।

(ण) निम्नांकित शब्दों से भाववाचक तथा गुणवाचक संज्ञाएँ बनाओः—सभ्य, विचित्र, समाज।

(त) वाक्य-विश्लेषण करो :—

(य) यदि हम सामाजिक······उदर की पूर्ति था।

(र) धीरे-धीरे······उत्पन्न हुई।

(थ) पदव्याख्या करो—जिन्हें, विचार, चीज़ों के, विकास होने लगा।

२१—तुलसीदास

[लेखक—पं० रामचन्द्र शुक्ल]

वंश—ब्राह्मण

जन्म स्थान—बस्ती जिलान्तर्गत अगोना नामक गाँव

जन्म संवत्—१९४१

मृत्यु संवत्—१९८७

परिचयः—शुक्ल जी बस्ती ज़िले के अगोना नामक गाँव में उत्पन्न हुये थे, किन्तु आप अधिक दिनों तक मिर्ज़ापुर में रहे हैं। आपके कुटुम्बी इस समय भी मिर्ज़ापुर में निवास करते हैं। आप हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध, विद्वान्, लेखक और समालोचक थे। आप निबन्ध साहित्य में अपनी एक विशेषता रखते हैं। उनमें मनन, चिन्तन और अध्ययन की प्रचुर मात्रा में सामग्री मौजूद रहती है। आप विषयों का जिस प्रकार वैज्ञानिक विवेचन करते थे, उसकी बड़े-बड़े साहित्य-महारथी तक प्रशंसा किया करते हैं। निबन्ध लेखक के अतिरिक्त आप उच्च कोटि के समालोचक और कवि भी थे। आपकी साहित्यिक समालोचनाएँ अपने ढंग की बड़ी अनूठी होती थीं। सूर, तुलसी और जायसी इत्यादि कवियों पर आपने बड़ी विस्तृत और गंभीर समालोचनाएँ लिखी हैं। आपकी कविताओं में करुण रस का अच्छा संचार पाया जाता है। प्रकृति वर्णन भी आपका बड़ा अच्छा है।

कार्यः—आप एफ० ए० तक की शिक्षा समाप्त करके कुछ दिनों तक अध्यापक का कार्य करते रहे। तत्पश्चात् संवत् १९६५ में आप काशी की नागरी प्रचारिणी सभा में चले गये। वहाँ आपने हिन्दी-शब्द-सागर, और नागरी-प्रचारिणी पत्रिका का सम्पादन किया। आप की विद्वत्ता देखकर हिन्दू-विश्वविद्यालय ने आपको अपने यहाँ अध्यापक नियुक्त किया। अन्तिम समय में भी आप हिन्दू-विश्व-विद्यालय में अध्यापन का कार्य करते रहे हैं। आपने विभिन्न विषयों पर बहुत से स्फुट लेख और कविताएँ लिखी हैं। आपने कई मौलिक ग्रन्थ भी लिखे हैं। आपके लिखे हुए 'हिन्दी साहित्य

का इतिहास' नामक सुन्दर ग्रन्थ पर 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' ने आपको पाँच सौ रुपये का पुरस्कार भी दिया था।

शैली:—शुक्ल जी हिन्दी-साहित्य के गंभीर विद्वान् थे। आपकी विद्वत्ता के अनुरूप आपकी शैली भी बहुत गंभीर है। भाषा कुछ क्लिष्ट अवश्य है, किन्तु उसमें शब्दों का गठन और परिमार्जन ख़ूब पाया जाता है। आप संस्कृत शब्दों का अधिकतर उपयोग करते थे। आपकी रचनाओं में उर्दू शब्दों का प्रायः अभाव सा है।

मुख्य रचनाएँ:—अनुवादित—१ आदर्श जीवन, शशांक, ३ विश्व प्रपंच, कविता—४ बुद्ध चरित। समालोचना—५ गोस्वामी तुलसीदास, ६ भ्रमर गीतसार, ७ जायसी ग्रन्थावली, ८ काव्य में रहस्यवाद। इतिहास—९ हिन्दी साहित्य का इतिहास। निबन्ध संग्रह—१० विचारवीथी

हम्मीर के समय से चारणों का वीरगाथा-काल समाप्त होते ही हिन्दी-कविता का प्रवाह राजकीय क्षेत्र से हटकर भक्ति-पथ और प्रेम-पथ की ओर पड़ा। देश में मुसलमान-साम्राज्य के पूर्णतया प्रतिष्ठित हो जाने पर वीरोत्साह के सम्यक् संचार के लिये वह स्वतंत्र क्षेत्र न रह गया। देश का ध्यान अपने पुरुषार्थ और बल-पराक्रम की ओर से हटकर भगवान् की शक्ति और दया-दाक्षिण्य की ओर गया। देश का वह नैराश्य-काल था, जिसमें भगवान् के सिवा और कोई सहारा नहीं दिखाई देता था। रामानन्द और बल्लभाचार्य ने जिस भक्ति-रस का प्रभूत संचय किया, कबीर और सूर आदि की वाग्धारा ने उसका संचार जनता के बीच किया। साथ ही क़ुतबन्, जायसी आदि मुसलमान कवियों ने अपनी प्रबन्ध-रचना द्वारा प्रेम-पथ की मनोहरता दिखाकर लोगों को लुभाया। इस भक्ति और प्रेम के रंग में देश ने अपना दुःख भुलाया, उसका मन बहला।

भक्तों के भी दो वर्ग थे। एक तो भक्ति के प्राचीन लोक-धर्माश्रित स्वरूप को लेकर चला था; अर्थात् प्राचीन भागवत-संप्रदाय के

नवीन विकास का ही अनुयायी था और दूसरा लोकधर्म से उदासीन तथा समाज-व्यवस्था और ज्ञान-विज्ञान का विरोधी था। यह द्वितीय वर्ग जिस घोर नैराश्य की विषम स्थिति में उत्पन्न हुआ, उसी सामंजस्य-साधन में संतुष्ट रहा। उसे भक्ति का उतना ही अंश ग्रहण करने का साहस हुआ, जितने की मुसलमानों के यहाँ भी जगह थी। मुसलमानों के बीच रहकर इस वर्ग के महात्माओं का भगवान् के उस रूप पर जनता की भक्ति को ले जाने का उत्साह न हुआ, जो अत्याचारियों का दमन करने वाला और दुष्टों का विनाश कर धर्म को स्थापित करने वाला है। इससे उन्हें भारतीय भक्ति-मार्ग के विरुद्ध ईश्वर के सगुण रूप के स्थान पर निर्गुण रूप ग्रहण करना पड़ा जिसे भक्ति का विषय बनाने में उन्हें बड़ी कठिनाई हुई।

प्रथम वर्ग के प्राचीन परंपरावले भक्त वेद-शास्त्रज्ञ तत्त्वदर्शी आचार्यों द्वारा प्रवर्तित संप्रदायों के अनुयायी थे। उनकी भक्ति का आधार भगवान् का लोक-धर्म-रक्षक और लोकरंजक स्वरूप था। इस भक्ति का स्वरूप नैराश्यमय नहीं है; इसमें उस शक्ति का बीज है, जो किसी जाति को फिर उठा कर खड़ा कर सकता है। सूर और तुलसी ने इसी भक्ति के सुधारस से सींच कर मुरझाते हुए हिन्दू-जीवन को फिर से हरा किया। पहले भगवान् का हँसता-खेलता रूप दिखा कर सूरदास ने हिन्दू जाति की नैराश्य-जनित खिन्नता हटाई, जिससे जीवन में प्रफुल्लता आ गई। पीछे तुलसीदास जी ने भगवान् का लोक व्यापार-व्यापी मंगलमय रूप दिखाकर आशा और शक्ति का अपूर्व संचार किया। अब हिन्दू जाति निराश नहीं है।

घोर नैराश्य के समय हिन्दू जाति ने जिस भक्ति का आश्रय लिया, उसी की शक्ति से उसकी रक्षा हुई। भक्ति के सच्चे उद्गार ने ही हमारी भाषा को प्रौढ़ता प्रदान की और मानव-जीवन की सरलता दिखाई। इस भक्ति के विकास के साथ ही साथ इसकी अभिव्यंजना करने-वाली वाणी का विकास भी स्वाभाविक था। अतः सूर और तुलसी के समय हिंदी-कविता की जो समृद्धि दिखाई देती है, उसका कारण शाही दरबार की क़द्रदानी नहीं है, बल्कि शाही दरबार की

क़द्रदानी का कारण वह समृद्धि है। उस समृद्धि-काल के कारण हैं सूर-तुलसी; और सूर-तुलसी का उत्पादक है इस भक्ति का क्रमशः विकास, जिसके अवलंबन थे राम और कृष्ण। लोक-मानस के समक्ष राम और कृष्ण जब से फिर से स्पष्ट करके रखे गये, तभी से वह उनके एक-एक स्वरूप का साक्षात्कार करता हुआ उसकी व्यंजना में लग गया, यहाँ तक कि सूरदास तक आते-आते भगवान् की लोकरंजन-कारिणी प्रफुल्लता की व्यंजना हो गई। अन्त में उनकी अखिल जीवनवृत्ति-व्यापिनी कला को अभिव्यक्त करने वाली वाणी का मनोहर स्फुरण तुलसी के रूप में हुआ।

इस दिव्यवाणी का यह मंजु घोष घर-घर क्या, एक-एक हिन्दू के हृदय तक पहुँच गया कि भगवान् दूर नहीं हैं, तुम्हारे जीवन में मिले हुए हैं। यही वाणी हिन्दू जाति को नया जीवन दान दे सकती थी। उस समय यह कहना कि ईश्वर सबसे दूर है, निर्गुण है, निरंजन है; साधारण जनता को और भी नैराश्य के गड्ढे में ढकेलता। ईश्वर बिना पैर के चल सकता है, बिना हाथ के मार सकता है, और सहारा दे सकता है, इतना और जोड़ने से भी मनुष्य की वासना को पूरा आधार नहीं मिल सकता। जब भगवान् मनुष्य के पैरों से दीन-दुखियों की पुकार पर दौड़ कर आते दिखाई दें, और उनका हाथ मनुष्य के हाथ के रूप में दुष्टों का दमन करता और पीड़ितों को सहारा देता दिखाई दे, उनकी आँख मनुष्य की आँखें होकर आँसू गिराती दिखाई दें, तभी मनुष्य के भावों की पूर्ण तृप्ति हो सकती है; और लोकधर्म का स्वरूप प्रत्यक्ष हो सकता है। जहाँ हमें दिन-दिन बढ़ता हुआ अत्याचार दिखाई पड़ा कि हम उस समय की प्रतीक्षा करने लगेंगे जब वह "रावणत्व" की सीमा पर पहुँचेगा और "रामत्व" का आविर्भाव होगा। तुलसी के मानस से रामचरित की जो शील-शक्ति-सौंदर्यमयी स्वच्छ धारा निकली, उसने जीवन की प्रत्येक स्थिति के भीतर पहुँच कर भगवान् के स्वरूप का प्रतिबिंब झलका दिया। रामचरित की इसी जीवन-व्यापकता ने तुलसी की वाणी को राजा, रंक, धनी, दरिद्र, मूर्ख, पंडित सब के हृदय और कंठ में सब

दिन के लिए बता दिया। किसी श्रेणी का हिंदू हो, वह अपने प्रत्येक जीवन में राम को साथ पाता है—सम्पत्ति में, विपत्ति में, घर में, वन में, रणक्षेत्र में, आनंदोत्सव में; जहाँ देखिये, वहाँ राम। गोस्वामी जी ने उत्तरापथ के समस्त हिन्दू-जीवन को राम-मय कर दिया। गोस्वामी जी के वचनों में हृदय को स्पर्श करने की जो शक्ति है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी वाणी की प्रेरणा से आज हिन्दू-जनता अवसर के अनुसार सौंदर्य पर मुग्ध होती है, महत्त्व पर श्रद्धा करती है, शील की ओर प्रवृत होती है, सन्मार्ग पर पैर रखती है, विपत्ति में धैर्य धारण करती है, कठिन कर्म में उत्साहित होती है, दया से आर्द्र होती है, बुराई पर ग्लानि करती है, शिष्टता का अवलम्बन करती है; और मानव-जीवन के महत्त्व का अनुभव करती है।

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) स्पष्ट अर्थ बताओ:—प्रवाह, पूर्णतया, स्वतंत्र, प्रभूत, संचय, संचार, पथ, सामंजस्य, निर्गुण, परम्परा, जनित, आश्रय, उद्गार अभिव्यंजना, समृद्धि, उत्पादक, साक्षात्कार, लोक-रंजन, अभिव्यक्त स्फुरण, मञ्जु, आविर्भाव, शिष्टता।

(ख) अर्थान्तर की व्याख्या करो: रामानन्द—नन्द, प्राचीन—चीन, दमन—मन, भारतीय—तीय, जनित—नित, मानस—नस, स्फुरण—रण, प्रत्यक्ष—यक्ष, उत्साहित—हित।

(ग) निम्नांकित शब्दों के अर्थ-विशेष प्रकट करो:—निर्गुण, सगुण, भक्ति

२—भाषा सम्बन्धी—

(घ) शुक्लजी के भाषा-सौन्दर्य पर अपने विचार प्रगट करो।

(ङ) तुम यह कैसे कह सकते हो कि शुक्लजी की रचनाओं में प्रायः उर्दू शब्दों का अभाव रहता है।

(च) इस लेख के किसी स्थल में यदि उर्दू के शब्द आये हों तो उन्हें हिन्दी में रूपान्तरित करो।

(छ) निम्नांकित अंशों का भाव स्पष्ट करो :—

(अ) प्रथम वर्ग······हरा किया।

(ब) घोर नैराश्य·········समृद्धि है।

(स) लोक मानस·········रूप में हुआ।

३—विचार सम्बन्धी—

(ज) इस लेख का सारांश अपनी भाषा में प्रगट करो।

(झ) मुसलमानों के शासन-काल में लोगों का ध्यान भक्ति की ओर क्यों अधिक आकृष्ट हो उठा था ?

(ञ) गोस्वामी तुलसीदासजी और अन्यान्य साधकों की भक्ति में क्या अन्तर है ?

(ट) इस लेख के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवन का महत्व बतलाओ।

(ठ) रामचरित मानस के सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो ? उसके महत्व पर एक छोटा सा किन्तु विचार-पूर्ण निबन्ध लिखो।

४—व्याकरण सम्बन्धी—

(ड) सविग्रह समास बताओः—बल पराक्रम, नैराश्य-काल, प्रेम पथ, लोक-धर्माश्रित, सामंजस्य साधन, लोक-धर्म-रक्षक, नैराश्य-जनित, लोकरंजन-कारिणी, जीवनवृत्ति व्यापिनी, शील-शक्ति-सौन्दर्यमयी।

(ढ) सन्धि-विच्छेद करोः—वीरोत्साह, वाग्धारा, धर्माश्रित, अत्याचार, निर्गुण, अन्यत्र, आनन्दोत्सव, सन्मार्ग।

(ण) क्या है और कैसे बने हैं:—प्रतिष्ठित, दाक्षिण्य, आश्रित, उदासीन, भारतीय, नैराश्य, तृप्ति, उत्साहित।

(त) वाक्य-विश्लेषण करोः—

(स) रामानन्द·········बीच किया।

(द) उसे भक्ति का·········करने वाला है।

(थ) पदव्याख्या करोः—जाति को, खिन्नता, सरसता, दिखाई, तुलसी के रूप में हुआ, गड्ढे में ढकेलता।

२२—अजातशत्रु

[लेखक—श्रीयुत जयशंकर प्रसाद]

वंश—वैश्य

जन्मस्थान—बनारस

जन्म संवत्—१८४६

मृत्यु संवत्—१९९४

परिचयः—आप हिन्दी-साहित्य के युग प्रवर्तक कवि, कहानी-लेखक, उपन्यासकार और नाटककार थे। हिन्दी में वर्तमान नवीन कविता की जो लहर चल पड़ी है, आप ही उसके आचार्य माने जाते हैं। कविता के प्रति बाल्यावस्था ही से आपका प्रेम था। आपने संस्कृत, अँग्रेज़ी, और फ़ारसी की शिक्षा अपने घर पर ही प्राप्त की। यद्यपि सत्रह वर्ष की अवस्था ही में आपके ऊपर गृहस्थी का सम्पूर्ण भार आ पड़ा, किन्तु फिर भी आपकी सुकुमार कविता की वेलि दिनों दिन बढ़ती गई, और थोड़े ही दिनों में उसने समस्त हिन्दी-साहित्य-संसार को चमत्कृत-सा कर दिया। आप हिन्दी जगत में कविता, कहानी, और नाटक के क्षेत्र में अद्वितीय थे। आपकी कविताएँ बड़ी मार्मिक और हृदय को आन्दोलित करने वाली हैं। नाटकीय क्षेत्र में तो आप सा प्रभावशाली और सफल लेखक हिन्दी-साहित्य में कोई दूसरा दृष्टि नहीं आता। आपने अमूल्य नाटकों की रचना करके हिन्दी-साहित्य को एक बहुमूल्य सम्पत्ति प्रदान की। आपकी छोटी-छोटी कहानियाँ भी बड़ी भावमयी और हृदय ग्राहिणी हैं। उपन्यास-कला में आप सिद्धहस्त से थे। आप प्रकृति के बड़े उदार, हँस-मुख, और प्रसन्न चित्त थे।

कार्यः—आपने अध्ययन में अपना बहुत सा समय व्यतीत किया था। हिन्दी लेखकों में भारत की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का आपने विशेष रूप से अध्ययन किया था। आपके इस प्रगाढ़ अध्ययन का परिचय आपके नाटकों से भली भाँति मिल जाता है। आपने अनेक मौलिक रचनाएँ करके हिन्दी-साहित्य के भण्डार को 'धनी' बनाया। आपके नाटक हिन्दी

साहित्य की बहुमूल्य सम्पत्ति हैं। 'तितली' नाम का एक उपन्यास भी आपने बहुत ही सुन्दर लिखा है। 'आँसू' नाम की आपकी कविता की पुस्तक साहित्य की एक सम्पत्ति सी है। आपकी कहानियों के कई संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं।

शैली:—आपकी भाषा में उर्दू शब्दावली का सम्पूर्ण रूप से अभाव है। संस्कृत शब्दों की दुरूहता भी उसमें अधिक नहीं पाई जाती। साधारणतः भाषा भाव के ही अनुरूप और विशुद्ध है। आपके कथनोपकथन की शैली बहुत ही मनोवैज्ञानिक है। भावों के साथ ही साथ आप की भाषा भी आगे चलती हुई दिखाई देती है। आपकी रचनाओं में मुहाविरों की न्यूनता है। आपकी भाषा में ओज, मधुरता और चमत्कारिता का सराहनीय संयोग पाया जाता है।

मुख्य रचनाएँ; नाटक—१ चन्द्रगुप्त मौर्य, २ ध्रुवस्वामिनी, ३ विशाख, ४ अजातशत्रु, ५ स्कन्दगुप्त, ६ राज्यश्री, ७ जनमेजय का नाग यज्ञ, ८ एक घूँट, ९ कामना। कविता—१० आँसू, ११ चित्राधार, १२ लहर, १३ कानन-कुसुम, १४ झरना, १५ महाराणा महत्व, १६ प्रेम-पथिक। महाकाव्य—१७ कामायनी। आपकी मृत्यु के पश्चात् हिन्दी-साहित्य सम्मेलन ने आपके पुत्र को आपके इस महाकाव्य पर १२ सौ रुपयेका मंगला प्रसाद पारितोषिक प्रदान किया था। कहानी-संग्रह—१८ प्रति-ध्वनि, १९ आकाश-दीप, २० आँधी। उपन्यास—२१ तितली, २२ कंकाल।

पुरुष-पात्र

बिम्बसार—मगध सम्राट्
अजातशत्रु (कुणीक)—मगध का राजकुमार
प्रसेनजित—कोशल का राजा
गौतम—बुद्धदेव
देवदत्त (भिक्षु)—गौतम बुद्ध का प्रतिद्वन्द्वी
समुद्रदत्त—देवदत्त का शिष्य
जीवक—मगध का राजवैद्य
सुदत्त—कोशल का कोशाध्यक्ष
लुब्धक—शिकारी

स्त्री-पात्र

वासवी—मगध सम्राट् की बड़ी रानी (प्रसेनजित की बहिन)

छलना—मगध सम्राट् की छोटी रानी और राजमाता

पद्मावती—मगध की राजकुमारी (अजातशत्रु की सौतेली बहिन)

१

स्थान—प्रकोष्ठ

[राजकुमार अजातशत्रु, पद्मावती, समुद्रदत्त और शिकारी लुब्धक]

अजात०—क्यों रे लुब्धक! आज तू मृगशावक नहीं लाया! मेरा चित्रक अब किससे खेलेगा?

समुद्र०—कुमार! यह बड़ा दुष्ट हो गया है। आज कई दिनों से यह मेरी बात सुनता ही नहीं।

लुब्धक—कुमार! हम तो आज्ञाकारी अनुचर हैं। आज हमने जब एक मृगशावक को पकड़ा तो उसकी माता ने ऐसी करुणा-भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा कि उसे छोड़ देते ही बना। अपराध क्षमा हो।

अजात०—हाँ, तो फिर मैं तुम्हारी चमड़ी उधेड़ता हूँ। समुद्र! ला तो मेरा कोड़ा।

समुद्र०—(कोड़ा लाकर देता है)—लीजिए। इसकी अच्छी पूजा कीजिए।

पद्मा०—(कोड़ा पकड़ कर)—भाई कुणीक! तुम इतने दिनों में ही बड़े निष्ठुर हो गये। भला क्यों मारते हो?

अजात०—उसने मेरी आज्ञा क्यों नहीं मानी?

पद्मा०—उसे मैंने ही मना किया था, उसका क्या अपराध?

समुद्र०—(धीरे से)—तभी तो आज-कल उसको गर्व हो गया है। किसी की बात नहीं सुनता।

अजात०—तो इस प्रकार तुम उसे मेरा अपमान करना सिखाती हो !

पद्मा०—यह मेरा कर्तव्य है कि तुमको अभिशापों से बचाऊँ और अच्छी बातें सिखाऊँ। जा रे लुब्धक, जा, चला जा। कुमार जब मृगया खेलने जावें तो उनकी सेवा करना। निरीह जीवों को पकड़ कर निर्दयता सिखाने में सहायक न होना।

अजात०—यह तुम्हारी बढ़ाबढ़ी मैं सहन नहीं कर सकता।

पद्मा०—मानवी सृष्टि करुणा के लिए है, यों तो क्रूरता के निदर्शन हिंस्र पशु, जगत् में क्या कम हैं ?

समुद्र०—देवी ! करुणा और स्नेह के लिए तो स्त्रियाँ जगत् में हुई हैं, किन्तु पुरुष भी क्या वही हो जायँ ?

पद्मा०—चुप रहो समुद्र ! क्या क्रूरता ही पुरुषार्थ का परिचय है ? ऐसी चाटूक्तियाँ भावी शासक को अच्छा नहीं बनातीं।

(छलना का प्रवेश)

छलना—पद्मावती ! यह तुम्हारा अविचार है। कुणीक का हृदय छोटी-छोटी बातों में तोड़ देना, उसे डरा देना, उसकी मानसिक उन्नति में बाधा देना है।

पद्मा०—माँ, यह क्या कह रही हो ! कुणीक मेरा भाई है, मेरे सुखों की आशा है, मैं उसे कर्तव्य क्यों न बताऊँ ? क्या उसे चाटुकारों की चाल में फँसते देखूँ और कुछ न कहूँ।

छलना—तो क्या तुम उसे बोदा और डरपोक बनाना चाहती हो ? क्या निर्बल हाथों से कोई राजदण्ड ग्रहण कर सकता है ?

पद्मा०—माँ, क्या कठोर और क्रूर हाथों से ही राज्य सुशोभित होता है ? ऐसा विषवृक्ष लगाना क्या ठीक होगा ? अभी कुणीक किशोर है; यही समय सुशिक्षा का है। बच्चों का हृदय कोमल थाला है, चाहे इसमें कटीली झाड़ी लगा दो, चाहे फूलों के पौधे।

अजात०—फिर तुमने मेरी आज्ञा क्यों भंग होने दी ? क्या दूसरे अनुचर इसी प्रकार मेरी आज्ञा का तिरस्कार करने का साहस न करेंगे ?

छलना—यह कैसी बात ?

अजात०—मेरे चित्रक के लिए जो मृग आता था, उसे ले आने के लिए लुब्धक रोक दिया गया। आज वह कैसे खेलेगा ?

छलना—पद्मा ! क्या तू इसकी मंगल-कामना करती है ! इसे अहिंसा सिखाती है, जो भिक्षुकों की भोंड़ी सीख है। जो राजा होगा, जिसे शासन करना होगा, उसे भिखमंगों का पाठ नहीं पढ़ाया जाता। राजा का परम धर्म न्याय है, वह दण्ड के आधार पर है। क्या तुझे नहीं मालूम कि वह भी हिंसामूलक है ?

पद्मा०—माँ ! क्षमा हो। मेरी समझ में तो मनुष्य होना राजा होने से अच्छा है।

छलना—तू कुटिलता की मूर्ति है। कुणीक को अयोग्य शासक बना कर उसका राज्य आत्मसात् करने के लिए कौशाम्बी से आई है।

पद्मा०—माँ बहुत हुआ, अन्यथा तिरस्कार न करो, मैं आज ही चली जाऊँगी।

(वासवी का प्रवेश)

वासवी—वत्स कुणीक ! कई दिनों से तुमको देखा नहीं। मेरे मन्दिर में इधर क्यों नहीं आए ? कुशल तो है ?

(कुणीक के ऊपर हाथ फेरती है)

अजात०—नहीं माँ, मैं तुम्हारे यहाँ न आऊँगा, जब तक पद्मा घर न जायगी।

वासवी—क्यों ! पद्मा तो तुम्हारी बहिन है। उसने क्या अपराध किया है ? वह तो बड़ी सीधी लड़की है !

छलना—(क्रोध से)—वह सीधी और तुम सीधी ! आज से कभी कुणीक तुम्हारे पास न जाने पावेगा और तुम भी यदि भलाई चाहो तो प्रलोभन न देना।

वासवी—छलना ! बहिन !! यह क्या कह रही हो ? मेरा वत्स कुणीक ! प्यारा कुणीक ! हा भगवान् ! मैं उसे देखने न पाऊँगी ? मेरा क्या अपराध—

अजात०—यह पद्मा, बार बार मुझे अपदस्थ किया चाहती है, और जिस बात को मैं कहता हूँ, उसे ही रोक देती है।

वासवी—यह मैं क्या देख रही हूँ ? छलना ! यह गृह-विद्रोह की आग तू क्यों जलाया चाहती है। राजपरिवार में क्या सुख अपेक्षित नहीं है—

बच्चे बच्चों से खेलें, हो स्नेह बढ़ा उनके मन में,
कुल-लक्ष्मी हों मुदित, भरा हो मंगल उनके जीवन,
बन्धु वर्ग हों सम्मानित, हों सेवक सुखी प्रणत अनुचर,
शान्तिपूर्ण हो स्वामी का मन, तो स्पृहणीय न हो क्यों घर ?

छलना—यह जिनको खाने को नहीं मिलता उन्हें चाहिए। जो प्रभु हैं, जिन्हें पर्याप्त है, उन्हें किसी की क्या चिन्ता—जो व्यर्थ अपनी आत्मा को दबावें।

वासवी—क्या तुम मेरा भी अपमान किया चाहती हो ? पद्मा तो जैसी मेरी, वैसी तुम्हारी, उसे कहने का तुम्हें अधिकार है। किन्तु तुम तो मुझसे छोटी हो; शील और विनय का यह दुष्ट उदाहरण सिखा कर बच्चों की क्यों हानि कर रही हो ?

छलना—(स्वगत)—मैं छोटी हूँ, यह अभिमान तुम्हारा अभी गया नहीं !—(प्रकट)—मैं छोटी हूँ, या बड़ी, किन्तु राजमाता हूँ। अजात को शिक्षा देने का मुझे अधिकार है। उसे राजा होना है। वह भिखमंगों का—जो अकर्मण्य हो कर, राज्य छोड़ कर दरिद्र हो गये हैं—उपदेश नहीं ग्रहण करने पावेगा।

पद्मा०—माँ, अब चलो ! यहाँ से चलो। नहीं तो मैं ही जाती हूँ।

वासवी—चलती हूँ बेटी। किन्तु छलना सावधान। यह असत्य गर्व मानव-समाज का बड़ा भारी शत्रु है।

(पद्मा और वासवी जाती है)

(पट-परिवर्तन)

२

स्थान—राजकीय प्रकोष्ठ

[महाराज बिम्बसार एकाकी बैठे हुए आप-ही आप कुछ विचार कर रहे हैं]।

बिम्बसार—आह, जीवन की क्षणभंगुरता देख कर भी मानव कितनी गहरी नींव देना चाहता है। वह व्यर्थ महत्त्व की आकांक्षा में मरता है; अपना नीचा, किन्तु सुदृढ़ परिस्थिति में उसे संतोष नहीं होता। नीचे से ऊँचे चढ़ना ही चाहता है। चाहे फिर गिरे तो भी क्या।

छलना—(प्रवेश करके)—और नीचे के लोग वहीं रहें! वे मानो कुछ अधिकार नही रखते? ऊपर वालों का यह क्या अन्याय नहीं है?

बिम्बसार—(चौंक कर)—कौन छलना?

छलना—हाँ, महाराज मैं ही हूँ।

बिम्बसार—तुम्हारी बात मैं नहीं समझ सका।

छलना—साधारण जीवों में भी उन्नति की चेष्टा दिखाई देती है। महाराज! इसकी बड़ी चाह है। महत्त्व का यह अर्थ नहीं है कि सब को क्षुद्र समझे।

बिम्बसार—तब।

छलना—यही कि मैं छोटी हूँ, इसीलिए पटरानी नहीं हो सकी और वासवी मुझे इसी बात पर अपदस्थ किया चाहती है।

बिम्बसार—छलना! यह क्या! तुम तो राजमाता हो। देवी वासवी के लिए थोड़ा-सा भी सम्मान कर लेना तुम्हें विशेष नीचा नहीं बना सकता—उन्होंने कभी तुम्हारी अवहेलना भी तो नहीं की।

छलना—मैं इन भुलावों में नहीं आ सकती। महाराज! मेरी धमनियों में लिच्छिवी रक्त बड़ी शीघ्रता से दौड़ता है। यह नीरव

अपमान, यह सांकेतिक घृणा, मुझे सहन नहीं, और जब कि खुल कर कुणीक का अपकार किया जा रहा है तब तो—

बिम्बसार—ठहरो ! तुम्हारा यह अभियोग अन्याय-पूर्ण है। क्या इसी कारण बेटी पद्मावती तो नहीं चली गई? क्या इसी कारण तो कुणीक मेरी आज्ञा सुनने में आनाकानी करने नहीं लगा है ? यह कैसा उत्पात मचाया चाहती हो ?

छलना—मैं उत्पात रोकना चाहती हूँ। आपको कुणीक के युव-राज्याभिषेक की घोषणा आज ही करनी पड़ेगी।

वासवी—(प्रवेश करके)—नाथ, मैं भी इसमें सहमत हूँ। मैं चाहती हूँ कि यह उत्सव देख कर और आपकी आज्ञा लेकर मैं कोशल जाऊँ। सुदत्त आज आया है, भाई ने मुझे बुलाया है।

बिम्बसार—कौन, देवी वासवी !

वासवी—हाँ महाराज।

कञ्चुकी—(प्रवेश करके)—महाराज ! जय हो ! भगवान् तथागत गौतम आ रहे हैं।

बिम्बसार—सादर लिवा लाओ—(कञ्चुकी का प्रस्थान) छलना हृदय का आवेग कम करो, महाश्रमण के सामने दुर्बलता न प्रकट होने पावे—

(अजात को साथ लिए हुए गौतम का प्रवेश)
(सब नमस्कार करते हैं)

गौतम—कल्याण हो ! शान्ति मिले !!

बिम्बसार—भगवान्, आपने पधार कर मुझे अनुगृहीत किया।

गौतम—राजन् ! कोई किसी को अनुगृहीत नहीं करता। विश्व भर में यदि कुछ कर सकती है तो वह करुणा है, जो प्राणी मात्र में समदृष्टि रखती है।

बिम्बसार—भगवान् की शान्त वाणी की धारा प्रलय की नरकाग्नि को भी बुझा देगी। मैं कृतार्थ हुआ—

छलना—(नीचा सिर करके)—यदि आज्ञा हो तो मैं जाऊँ ?

गौतम—रानी ! तुम्हारे पति और देश के सम्राट् के रहते मुझे कोई अधिकार नहीं है कि तुम्हें आज्ञा दूँ। तुम इन्हीं से आज्ञा ले सकती हो।

बिम्बसार—(घूम कर देखते हुये)—हाँ, छलने ! तुम जा सकती हो ! किन्तु कुणीक को न ले जाना—क्योंकि तुम्हारा मार्ग टेढ़ा है।

(छलना का क्रोध से प्रस्थान)

गौतम—यह तो मैं पहले से ही समझता था, किन्तु छोटी रानी के साथ अन्य लोगों को भी बिचार से काम लेना चाहिए।

बिम्बसार—भगवान् ! हमारा क्या अविचार आपने देखा ?

गौतम—शीतल वाणी—मधुर व्यवहार—से क्या वन्य पशु भी वश में नहीं हो जाते ? राजन्, संसार भर के उपद्रवों का मूल व्यंग है। हृदय में जितना यह घुसता है, उतनी कटार नहीं। वाक्-संयम विश्वमैत्री की पहली सीढ़ी है। अस्तु, अब मैं तुम से एक काम की बात कहा चाहता हूँ। क्या तुम मानोगे ?

बिम्बसार—अवश्य।

गौतम—तुम आज ही अजातशत्रु को युवराज बना दो और इस भीषण भोग से कुछ विश्राम लो। क्यों कुमार ! तुम राज्य का कार्य मन्त्रि-परिषद् की सहायता से चला सकोगे ?

अजात०—क्यों नहीं, पिता जी यदि आज्ञा दें।

गौतम—यह बोझ, जहाँ तक शीघ्र हो, यदि एक अधिकारी व्यक्ति को सौंप दिया जाय तो मानव को प्रसन्न ही होना चाहिए। क्योंकि राजन्, इससे कभी न कभी तुम हटाये जाओगे; जैसा कि विश्व भर का नियम है। फिर, यदि तुम उदारता से उसे भोग कर छोड़ दो तो इसमें क्या दुःख—

बिम्बसार—योग्यता होनी चाहिए महाराज! यह बड़ा गुरुतर कार्य है। नवीन रक्त राज्य-श्री को सदैव तलवार के दर्पण में देखा चाहता है।

गौतम—(हँस कर)—ठीक है। किन्तु काम करने के पहले तो किसी ने भी आज तक विश्वस्त प्रमाण नहीं दिया कि वह कार्य के योग्य है। यह बहाना तुम्हारी राज्याधिकार की आकांक्षा प्रकट कर रहा है। राजन्! समझ लो, इस गृह-विवाद और आन्तरिक झगड़ों से विश्राम लो।

(पट-परिवर्तन)

[३]

स्थान—कोशल में श्रावस्ती की राजसभा

[प्रसेनजित सिंहासन पर और अमात्य अनुचर गण यथा स्थान बैठे हैं]

प्रसेनजित—क्या यह सच है? सुदत्त, तुमने आज मुझे एक बड़ी आश्चर्य-जनक बात सुनाई है। क्या सचमुच अजातशत्रु ने अपने पिता को सिंहासन से उतार कर उनका तिरस्कार किया है?

सुदत्त—पृथ्वीनाथ! यह उतना ही सत्य है, जितना कि श्रीमान् का इस समय सिंहासन पर विराजना सत्य है। मगध-नरेश से एक षड्यन्त्र द्वारा सिंहासन छीन लिया गया।

(दौवारिक आता है)

दौवारिक—महाराज की जय हो। मगध से जीवक आये हैं।

प्रसेन०—जाओ, लिवा लाओ।

(दौवारिक जाता है और जीवक को लिवा लाता)

जीवक—जय हो कोशल-नरेश की!

प्रसेन०—कुशल तो है जीवक! तुम्हारे महाराज की तो सब

बातें हम सुन चुके हैं, उन्हें दुहराने की कोई आवश्यकता नहीं; हाँ, कोई नया समाचार हो तो कहो।

जीवक—दयालु देव, कोई नया समाचार नहीं है। केवल अपमान की यन्त्रणा ही महादेवी वासवी को दुखित कर सकती है, और कुछ नहीं।

प्रसेन०—तुम लोगों ने तो राजकुमार को अच्छी शिक्षा दी। अस्तु, देवी वासवी को अपमान भोगने की आवश्यकता नहीं। उन्हें अपने सपत्नी-पुत्र के भिक्षान्न पर जीवन-निर्वाह नहीं करना होगा। मंत्री! काशी की प्रजा के नाम एक पत्र लिखो कि वह अजात को राज-कर न देकर वासवी को अपना कर प्रदान करे। क्योंकि उसे मैंने वासवी को दिया है, सपत्नी-पुत्र का उस पर कोई अधिकार नहीं है।

जीवक—महाराज! देवी वासवी ने कुशल पूछा है और कहा है कि इस अवस्था में मैं आर्यपुत्र को छोड़कर नहीं आ सकती, इसलिए भाई कुछ अन्यथा न समझें।

प्रसेन०—जीवक यह तुम क्या कहते हो! कोशल-कुमारी दशरथ नन्दिनी शान्ता का उदाहरण उसके समक्ष है। दरिद्र ऋषि के साथ वह दिव्य जीवन व्यतीत कर सकती थी। क्या वासवी किसी दूसरे कोशल की राजकुमारी है? कुल-शील पालन ही तो आर्य्यललनाओं का परमोज्ज्वल आभूषण है। स्त्रियों का वही धन मुख्य है। अच्छा, जाओ विश्राम करो।

(जीवक का प्रस्थान)

(पट परिवर्त्तन)

४

स्थान—महाराज बिम्बसार का गृह

(बिम्बसार और वासवी)

बिम्ब०—कोमल पत्तियों को, जो अपनी डाली में निरीह लटका करती हैं, प्रभञ्जन क्यों झिंझोड़ता है?

वासवी—उसकी गति है, वह किसी को कहता नहीं कि तुम मेरे मार्ग में अड़ो, जो साहस करता है, उसे हिलना पड़ता है। नाथ! समय भी इसी तरह चला जा रहा है, उसके लिए पहाड़ और पत्ती बराबर है।

बिम्ब०—फिर उसकी गति तो सम नहीं है। ऐसा क्यों?

वासवी—यही समझाने के लिए बड़े बड़े दर्शनिकों ने कई तरह की व्याख्याएँ की हैं, फिर भी प्रत्येक नियमों में अपवाद लगा दिये हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि वह अपवाद नियम पर हैं या नियामक पर। सम्भवतः उसे ही लोग बवंडर कहते हैं।

बिम्बसार—तब तो देवि! प्रत्येक असम्भावित घटना के मूल में यही बवंडर है। सच तो यह है कि विश्व भर में स्थान स्थान पर वात्याचक्र हैं, जल में उसे भँवर कहते हैं, स्थल पर उसे बवंडर कहते हैं, राज्य में विप्लव, समाज में उच्छृङ्खलता और धर्म में पाप कहते हैं। चाहे इन्हें नियमों का अपवाद कहो चाहे बवंडर—यही न?

(छलना का प्रवेश)

बिम्बसार—यह लो हम लोग तो बवंडर की बातें करते थे, तुम यहाँ कैसे पहुँच गईं! राजमाता महादेवी को इस दरिद्र कुटीर में क्या आवश्यकता हुई?

छलना—मैं बवंडर हूँ—इसीलिए जहाँ मैं चाहती हूँ, असम्भावित रूप से चली आती हूँ और देखना चाहती हूँ कि इस प्रवाह में कितनी सामर्थ्य है—इसमें आवर्त्त उत्पन्न कर सकती हूँ कि नहीं।

वासवी—छलना! बहिन! तुमको क्या हो गया है?

छलना—प्रमाद—और क्या! अभी सन्तोष नहीं हुआ, इतने उपद्रव करा चुकी हो, और भी कुछ शेष है?

वासवी—क्यों अजात तो अच्छी तरह है? कुशल तो है?

छलना—क्या चाहती हो? समुद्रदत्त तो काशी में मारा ही गया। कोशल और मगध में युद्ध का उपद्रव हो रहा है। अजात भी उसमें गया है। साम्राज्य भर में आतङ्क है।

बिम्बसार—युद्ध में क्या हुआ ?—(मुँह फिरा कर)—अथवा मुझे क्या ?

५

स्थान—मगध में राजकीय भवन

(छलना और देवदत्त)

छलना—धूर्त्त ! तेरी प्रवञ्चना से मैं इस दशा को प्राप्त हुई, पुत्र बन्दी होकर विदेश को गया और पति को मैंने स्वयं बन्दी बनाया। पाखण्ड, तूने ही यह चक्र रचा है।

देवदत्त—नारी ! क्या तुझे राजशक्ति का घमण्ड हो गया है, जो हम परिव्राजकों से इस तरह की बातें करती है ? तेरी राज-लिप्सा और महत्त्वाकांक्षा ने ही तुझ से सब कुछ कराया, तू दूसरे पर क्यों दोषारोपण करती है, क्या मुझे ही राज भोगना है ?

छलना—पाखण्ड ! जब तूने धर्म के नाम पर उत्तेजित करके मुझे कुशिक्षा दी तब मैं भूल में थी। गौतम को कलंकित करने के लिए कौन श्रावस्ती गया था और किसने मतवाला हाथी दौड़ा कर उनके प्राण लेने की चेष्टा की थी ? ओह ! मैं किस भ्रान्ति में थी। जी चाहता है कि इस नरपिशाच मूर्ति को अभी मिट्टी में मिला दूँ।

प्रतिहारी—(प्रवेश करके)—महादेवी की जय हो। क्या आज्ञा है ?

छलना—अभी इस मुड़िए को बन्दी बनाओ और वासवी को पकड़ लाओ !

(प्रतिहारी इंगित करता है, देवदत्त बन्दी होता है)

देवदत्त—इसका फल तुझे मिलेगा।

छलना—घायल बाघिनी को भय दिखाता है ! आषाढ़ की पहाड़ी नदी को हाथों से रोक लेना चाहता है ! देवदत्त ! ध्यान रखना,

इस अवस्था में नारी क्या नहीं कर सकती है! अब तेरा अभिशाप मुझे नहीं डरा सकता। तू अपने कर्म भोगने के लिए प्रस्तुत हो जा।

(वासवी का प्रवेश)

छलना—अब तो तुम्हारा हृदय संतुष्ट हुआ?

वासवी—क्या कहती हो छलना? अजात बन्दी हो गया तो मुझे सुख मिला, यह बात कैसे तुम्हारे मुख से निकली? क्या वह मेरा पुत्र नहीं है?

छलना—मीठे मुँह की डायन! अब तेरी बातों से मैं ठंढी नहीं होने की! ओह इतना साहस, इतनी कूट चातुरी! आज मैं उसी हृदय को निकाल लूँगी, जिसमें यह सब भरा था। वासवी, सावधान! मैं भूखी सिंहनी हो रही हूँ।

वासवी—छलना! उसका मुझे डर नहीं है। यदि तुम्हें इससे कोई सुख मिले तो तुम करो। किन्तु एक बात और विचार लो—क्या कोशल के लोग जब मेरी यह अवस्था सुनेंगे तो अजात को शीघ्र मुक्त कर देने के बदले कोई दूसरा काण्ड न उपस्थित करेंगे?

छलना—तब क्या होगा?

वासवी—जो होगा वह तो भविष्य के गर्भ में है, किन्तु मुझे एक बार कोशल अनिच्छा-पूर्वक भी जाना ही होगा और अजात को ले आने की चेष्टा करनी होगी।

छलना—यह और भी अच्छी रही—जो हाथ का है उसे भी जाने दूँ। क्यों वासवी! पद्मावती को पढ़ा रही हो?

वासवी—बहिन छलना! मुझे तुम्हारी बुद्धि पर खेद होता है। क्या मैं अपने प्राण को डरती हूँ; या सुख-भोग के लिए जा रही हूँ? ऐसी अवस्था में आर्यपुत्र को मैं छोड़ कर चली जाऊँगी, ऐसा भी तुम्हें अब विश्वास है? मेरा उद्देश्य केवल विवाद मिटाने का है।

छलना—इसका प्रमाण?

वासवी—प्रमाण आर्यपुत्र हैं। छलना, चौंको मत। तुम भी उन्हीं की परिणीता पत्नी हो, तब भी, तुम्हारे विश्वास के लिए मैं उन्हें तुम्हारी देख-रेख में छोड़े जाऊँगी। हाँ, इतनी प्रार्थना है कि उन्हें कोई कष्ट न होने पावे, और क्या कहूँ, वे ही तुम्हारे भी पति हैं। और देवदत्त को मुक्त कर दो। चाहे इसने कितना भी हम लोगों का अनिष्ट-चिन्तन किया है फिर भी परिव्राजक मार्जनीय है।

छलना—(प्रहरियों से) छोड़ दो इसको, फिर काला मुख मगध में न दिखावे (प्रहरी छोड़ते हैं, देवदत्त जाता है)।

वासवी—देखो, राज्य में आतङ्क न फैलने पावे! दृढ़ होकर मगध का शासन करना! और प्यारी छलना! यदि हो सके तो आर्यपुत्र की सेवा करके नारी-जन्म सार्थक कर लेना।

छलना—वासवी! बहिन!—(रोने लगती है)—मेरा कुणीक मुझे दे दो, मैं भीख माँगती हूँ। मैं नहीं जानती थी कि निसर्ग से इतनी करुणा और इतना स्नेह सन्तान के लिए, इस हृदय में सञ्चित था। यदि जानती होती तो इस निष्ठुरता का स्वाँग न करती।

वासवी—रानी! यही जो जानती कि नारी का हृदय कोमलता का पालना है, दया का उद्गम है, शीतलता की छाया है और अनन्य भक्ति-का आदर्श है, तो पुरुषार्थ का ढोंग क्यों करती। रो मत, बहिन! मैं जाती हूँ, तू यही समझ कि कुणीक ननिहाल गया है।

छलना—तुम जानो। (पट-परिवर्तन)

६

कोशल के बन्दी-गृह में अजातशत्रु बैठा है

(वासवी और प्रसेनजित का प्रवेश)

प्रसेन०—क्यों कुणीक, अब क्या इच्छा है?

वासवी—न न, भाई! खोल दो। इसे मैं इस तरह देखकर बात नहीं कर सकती हूँ। मेरा बच्चा कुणीक...

प्रसेन०—बहिन ! जैसा कहो ।

(खोल देता है, वासवी अंक में ले लेती है)

अजात०—कौन ! विमाता । नहीं तुम मेरी माँ हो ! माँ ! इतनी ठंढी गोद तो मेरी माँ की भी नहीं है । आज मैंने जननी की शीतलता का अनुभव किया । मैंने तुम्हारा बड़ा अपमान किया है, माँ ! क्या तुम क्षमा करोगी ?

वासवी—वत्स कुणीक ! वह अपमान भी क्या अब मुझे स्मरण है । तुम्हारी माता, तुम्हारी माँ नहीं है, मैं तुम्हारी माँ हूँ । वह तो डायन है, उसने मेरे सुकुमार बच्चे को बंदी-गृह में भेज दिया ! भाई मैं इसे शीघ्र मगध के सिंहासन पर भेजना चाहती हूँ, तुम इसके जाने का प्रबन्ध कर दो ।

अजात०—नहीं माँ, अब कुछ दिन उस विषैली वायु से अलग रहने दो । तुम्हारी शीतल छाया का विश्राम मुझ से अभी नहीं छोड़ा जायगा ।

(घुटने टेक देता है, वासवी अभय का हाथ रखती है)

(पट परिवर्तन)

७

स्थान-महाराज बिम्बसार का कुटीर

(बिम्बसार लेटे हुए हैं)

बिम्बसार—(उठकर आप ही आप)—यदि मैं सम्राट् न होकर किसी विनम्र लता के कोमल किसलयों के झुरमुट में एक अधखिला फूल होता और संसार की दृष्टि मुझ पर न पड़ती—पवन की किसी लहर को सुरभित करके धीरे से उस थाले में चू पड़ता—तो इतना भीषण चीत्कार इस विश्व में न मचता । भगवान् असंख्य ठोकरें खा कर लुढ़कते हुए जड़ ग्रहपिण्डों से भी तो इस चैतन्य मानव की बुरी गत है । धक्के-पर-धक्के खाकर भी यह निर्लज्ज, सभा से नहीं

निकलना चाहता। कैसी विचित्रता है। अहा! वासवी भी नहीं है। कब तक आवेगी!

जीवक—(प्रवेश करके)—सम्राट्!

बिम्बसार—चुप! यदि मेरा नाम न जानते हो तो मनुष्य कह कर पुकारो। यह भयानक सम्बोधन मुझे न चाहिए।

जीवक--कई रथ द्वार पर आए हैं और राजकुमार कुणीक भी आ रहे हैं।

बिम्बसार—कुणीक कौन! मेरा पुत्र, या मगध का सम्राट् अजातशत्रु?

अजात०—(प्रवेश करके)—पिता! आपका पुत्र, यह कुणीक सेवा में प्रस्तुत है।—(पैर पकड़ता है)

बिम्बसार—नहीं, नहीं, मगधराज अजातशत्रु को सिंहासन की मर्यादा नहीं भंग करनी चाहिए। मेरे दुर्बल चरण—आह, छोड़ दो।

अजात०—नहीं पिता! पुत्र का यही सिंहासन है। आपने झूठा सोने का सिंहासन देकर मुझे इस सत्य अधिकार से वञ्चित किया। अवाध्य पुत्र को भी कौन क्षमा करता है?

बिम्बसार—पिता! किन्तु वह पुत्र को क्षमा करता है; सम्राट् को क्षमा करने का अधिकार पिता को कहाँ!

अजात०—नहीं पिता, मुझे भ्रम हो गया था। मुझे अच्छी शिक्षा नहीं मिली थी। मिला था केवल जंगलीपन की स्वतन्त्रता का अभिमान। अपने को विश्व-भर से स्वतंत्र जीव समझने का झूठा आत्मसम्मान।

बिम्बसार—वह भी तो तुम्हारे गुरुजन की ही दी हुई शिक्षा थी। तुम्हारी माँ थी—राजमाता!

अजात०—वह केवल मेरी माँ थी—एक सम्पूर्ण अंग का आधा

भाग; उसमें पिता की छाया न थी—पिता ! इसलिए आधी शिक्षा अपूर्ण ही होगी।

छलना—(प्रवेश करके चरण पकड़ती है)—नाथ ! मुझे निश्चय हुआ कि वह मेरी उद्दण्डता थी। वह मेरी कूट-चातुरी थी, दम्भ का प्रकोप था। नारी-जीवन के स्वर्ग से मैं वञ्चित कर दी गई। ईंट-पत्थरों के महल रूपी बन्दी-गृह में मैं अपने को धन्य समझने लगी थी। दण्डनायक ! मेरे शासक ! क्यों न उसी समय शील और विनय भङ्ग करने के अपराध में मुझे आपने दण्ड दिया ! क्षमा करके, सहन करके, जो आपने इस परिणाम की यन्त्रणा के गर्त में मुझे डाल दिया है, वह मैं भोग चुकी। अब उबारिये।

बिम्बसार—दण्ड देना मेरी सामर्थ्य के बाहर था। अब देखें कि क्षमा करना भी मेरी सामर्थ्य में है कि नहीं !

वासवी—(प्रवेश करके)—आर्यपुत्र ! अब मैंने इसको दण्ड दे दिया है, यह मातृत्व पद से च्युत की गई है, अब इसको आपके पौत्र की धात्री का पद मिला है। एक राजमाता को इतना बड़ा दण्ड कम नहीं है; अब आपको क्षमा करना ही होगा।

बिम्बसार—वासवी ! तुम मानवी हो कि देवी ?

वासवी—बता दूँ ! मैं मगध के सम्राट् की राजमहिषी हूँ। और यह छलना मगध के राजपौत्र की धाई है, और यह कुणीक मेरा बच्चा इस मगध का युवराज है और आपको भी........

बिम्बसार—मैं अच्छी तरह अपने को जानता हूँ वासवी !

वासवी—क्या ?

बिम्बसार—कि मैं मनुष्य हूँ और इन मायाविनी स्त्रियों के हाथ का खिलौना हूँ।

वासवी—तब तो महाराज मैं जैसा कहती हूँ वैसा ही कीजिये; नहीं तो आपको लेकर मैं नहीं खेलूँगी।

बिम्बसार—तो तुम्हारी विजय हुई वासवी ! क्यों अजात ! पुत्र होने पर पिता के स्नेह का गौरव तुम्हें विदित हुआ—कैसी उलटी बात हुई !

(कुणीक लज्जित होकर सिर झुका लेता है)

पद्मा०—(प्रवेश करके)—पिताजी, मुझे बहुत दिनों से आपने कुछ नहीं दिया है, पौत्र होने के उपलक्ष्य में तो मुझे कुछ अभी दीजिये, नहीं तो मैं उपद्रव मचाकर इस कुटी को खोद डालूँगी।

बिम्बसार—बेटी पद्मा ! अहा तू भी आ गई !

पद्मा०—हाँ पिता जी ! बहू भी आई है। क्या मैं यहीं ले आऊँ।

वासवी—चल पगली ! मेरी सोने सी बहू ! इस तरह क्या जहाँ तहाँ जायगी—जिसे देखना हो वहीं चले।

बिम्बसार—तुम सब ने तो आकर मुझे आश्चर्य में डाल दिया। प्रसन्नता से मेरा जी घबरा उठा है !

पद्मा०—तो फिर मुझे पुरस्कार दीजिये।

बिम्बसार—क्या लेगी ?

पद्मा०—पहले छोटी माँ को, भइया को क्षमा कर दीजिये, क्योंकि इनकी याचना पहले की है; फिर......

बिम्बसार—अच्छा री पद्मा ! देखूँगा तेरी दुष्टता। उठो वत्स अजात ! जो पिता है वह क्या कभी भी पुत्र को क्षमा—केवल क्षमा—माँगने पर भी नहीं देगा ! तुम्हारे लिए यह कोश सदैव खुला है। उठो छलना, तुम भी।

(अजातशत्रु को गले लगाता है)

पद्मा०—तब मेरी बारी।

बिम्बसार—हाँ कह भी......

पद्मा०—बस चल कर मगध के नवीन राजकुमार को एक स्नेह चुम्बन आशीर्वाद के साथ दीजिए।

बिम्बसार—तो फिर शीघ्र चलो—(उठकर गिर पड़ता है)—ओह ! इतना सुख एक साथ मैं सहन नहीं कर सकूँगा। तुम सब बहुत बिलम्ब कर के आए ! (काँपता है)।

(गौतम का प्रवेश, अभय हाथ उठाते हैं)

(आलोक के साथ जवनिका पतन)

प्रश्नावली

१—शब्द सम्बन्धी—

(क) स्पष्ट अर्थ बताओ :—अनुचर, अभिशाप, निदर्शन चाटूक्तियाँ, तिरस्कार, अहिंसा, हिंसामूलक, आत्मसात, अन्यथा, प्रलोभन, अपदस्थ, प्रणत, पर्याप्त, अकर्मण्य, परिस्थिति, धमनी, सांकेतिक, अभियोग, अनुगृहीत, विश्वस्त, निरीह, अपवाद, उच्छृंखल, वात्याचक्र, आतंक, प्रस्तुत, परिणीता।

(ख) अर्थान्तर की व्याख्या करो—कुटिलता—लता, पर्याप्त—आप्त, अभियोग—योग, उपद्रव—द्रव, उदारता—रत, प्रभञ्जन—भञ्जन।

(ग) निम्नांकित शब्दों के अर्थ-विशेष पर प्रकाश डालो :—
कौशाम्बी, तथागत, महाश्रमण, विप्लव, साम्राज्य।

२—भाषा सम्बन्धी—

(घ) श्रीयुत जयशंकरप्रसाद के भाषा-सौंदर्य पर अपने विचार प्रगट करो।

(ङ) बाबू जयशंकरप्रसाद किस ढंग की शैली के पक्षपाती जान पड़ते हैं ?

(च) बाबू जयशंकर प्रसाद मुहाविरों का बहुत कम प्रयोग करते हैं, किन्तु फिर भी उनकी भाषा में लचरपन नहीं आने पाता। इसका कारण क्या है ?

(छ) इस नाटक के किसी स्थल में यदि उर्दू शब्द आये हों तो उन्हें हिन्दी में रूपान्तरित करो।

(ज) सरल हिन्दी में भाव स्पष्ट करो !—

(अ) यदि मैं सम्राट्……बुरी गत है।

(ब) नाथ ! मुझे……अब उबारिये।

३—विचार सम्बन्धी—

(झ) इस नाट्य-कथानक को कहानी के रूप में लिखो।

(ञ) नाटक किसे कहते हैं ? उसकी विशेषताओं पर विचार करते हुये यह बताओ, कि लेखक को इसमें कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है ?

(ट) अजातशत्रु कौन था ? उसके सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो ?

(ठ) इस नाट्य अंश के पात्रों के चरित्र की विवेचना करो; और अहिंसा की भावना को दृष्टि में रखते हुये यह बताओ, कि किसका चरित्र अधिक सुन्दर है, और क्यों ?

(ड) संक्षिप्त परिचय दो :—गौतम, बिम्बसार, प्रसेनजित, जीवक।

(ढ) निम्नांकित वाक्य अंशों की सार्थकता सिद्ध करने के लिए विस्तृत प्रकाश डालो :—

(प) राजा का परम धर्म न्याय है।

(फ) मनुष्य होना राजा होने से अच्छा है।

(ब) वाक् संयम विश्व मैत्री की पहली सीढ़ी है।

४—व्याकरण सम्बन्धी—

(ण) सविग्रह समास बताओ :—मृगशावक, विषवृक्ष, सुशिक्षा, मानव-समाज, राज्याभिषेक, समदृष्टि, नरकाग्नि, मंत्रि-परिषद, राज्याधिकार परमोज्ज्वल, महत्वाकांक्षा।

(त) इनके मूल शब्द बताओ और बनने के नियम लिखो:—निर्दयता, शासित, शिक्षित, तिरस्कृत, अपेक्षित, सांकेतिक, अनुगृहीत, आन्तरिक, नन्दिनी, उत्तेजित, मार्जनीय, पुरस्कृत।

(थ) कर्त्ता के आगे उसकी विभक्ति 'ने' किस अवस्था में आती है और किसमें नहीं आती।

(द) वाक्य-विश्लेषण करो :—

(भ) पद्मावती ! यह·········वाधा देना है।

(म) यह बोझ·········नियम है।

(य) अब मैंने·········क्षमा करना ही होगा।

(ध) पदव्याख्या करो—मायाविनी, सामर्थ्य के, हाथ का खिलौना हूँ, बहू भी आई है, आश्चर्य में।

टिप्पणी

१—बाँकीदास

पृष्ठ २—डिंगल भाषा—राजपूताने की वह भाषा, जिसमें भाट और चारण वंशावली लिखते हैं। ओजस्विनी—वीरता, इत्यादि के भावों से भरी हुई। मर्मज्ञ—किसी बात के गूढ़ रहस्य को जानने वाला। सामान्य—साधारण।

पृष्ठ ३—आश्रय-दाता—सहारा देने वाले। निर्भीकता—निडर होने का भाव। पारितोषिक—इनाम। उपाधि—पदवी। स्थूल—मोटा। बिरुद—यश। आशु कवि—वह कवि जो तत्क्षण कविता कर सके। ज्ञाता—जानकार।

पृष्ठ ४—चित्ताकर्षक—चित्त को खींचने वाली। उपयुक्त—उचित। इतिहास-वेत्ता—इतिहास जानने वाला। आग्रह—हठ।

पृष्ठ ५—अवगुणों—बुराइयों। स्वीकार—मंजूर।

पृष्ठ ६—ज्ञात—मालूम। षड्यंत्र—भीतरी जाल। स्मरण—याद।

पृष्ठ ७—हस्तगत—हाथ में आया हुआ। अनुनय—विनती।

पृष्ठ ८—युक्त—सहित। उत्कृष्ट—श्रेष्ठ। उल्लिखित—लिखा हुआ।

२—दीनों पर प्रेम

पृष्ठ ११—आस्तिक—ईश्वर में विश्वास करने वाला। तिरस्कार—अपमान। शुश्रूषा—सेवा। अद्वितीय—बेजोड़।

पृष्ठ १२—अतुल—जिसकी तौल या अन्दाज़ न हो सके, अर्थात् बहुत ज़्यादा। आतिथ्य—अतिथि का सत्कार। वतन—घर।

पृष्ठ १३—बेबस—लाचार। अनुयायी—पीछे चलने वाला। पद दलित—पैरों से कुचली हुई। दीदार—दर्शन।

पृष्ठ १४—मर्मभेदिनी—हृदय पर आघात पहुँचाने वाली। आह्वान—बुलावा। क़ाफ़िर—ईश्वर को न मानने वाला।

३—चरित्र-पालन

पृष्ठ १७—उर्वरा—उपजाऊ। त्रिगुणात्मक—सत, रज और तम, तीनों गुणों से युक्त। यावज्जीवन—ज़िन्दगी भर। विकार—दोष।

पृष्ठ १८—चिरस्थायी—बहुत दिनों तक रहने वाला। सन्दल—चन्दन। सन्नद्ध—तैयार। निग्रह—रोक।

पृष्ठ १९—च्युत—गिरा हुआ। आढ्य—धनी। पैग़म्बर—मनुष्यों के पास ईश्वर का सन्देश लेकर आने वाला। रसूल—ईश्वर का दूत। आप्त—किसी विषय को ठीक तौर पर जानने वाला। शिष्ट—अच्छे स्वभाव वाला। दुर्लभ—कठिन। असि-धाराव्रत—वह जो तलवार की धार पर चलने के समान अत्यन्त कठोर हो।

पृष्ठ २०—अन्तर्भाव—भीतरी समावेश। प्रवीण—चतुर। अभ्यन्तर—भीतरी। उत्तरोत्तर—एक के बाद एक। निःसत्व—अधिकार रहित।

४—शरीर की बनावट

पृष्ठ २३—प्रधान—मुख्य। मस्तिष्क—दिमाग़। संस्थान—ठहराव। विभक्त—बँटा हुआ।

पृष्ठ २४—उत्पादक—पैदा करने वाला।

पृष्ठ २५—ग्रन्थि—गाँठ। अन्न प्रणाली—वह नली, जिसके द्वारा पेट में अन्न पहुँचता है।

पृष्ठ २६—अस्थि—हड्डी। पेशियाँ—शरीर के भीतर माँस की गाँठें।

पृष्ठ २७—महराब—द्वार के ऊपर का अर्द्ध मण्डलाकार बनाया हुआ भाग। सन्धि—मेल। करतल—हथेली। निम्न—नीचे।

पृष्ठ २८—पारंगत—पूरा जानकार। शरीर-छेदन-शास्त्र-विशारद—वह मनुष्य जो शरीर की चीर-फाड़ की विद्या में पण्डित हो।

पृष्ठ २९—एकीकरण—मिलाकर एक करना। धमनी—नाड़ी।

पृष्ठ ३०—सम्पर्क—लगाव। छिद्र—छेद।

५—अमावस्या की रात्रि

पृष्ठ ३४—श्वेत—सफ़ेद। मुखारविन्द—कमल के समान मुख। कटाक्ष—व्यंग्य।

पृष्ठ ३५—पराजित—हारा हुआ।

पृष्ठ ३६—स्मारक—याद दिलाने वाला। विडम्बना—किसी को चिढ़ाने या बनाने के लिए उसकी नक़ल उतारना। दीपमालिका—दिवाली। क्षीण—कमज़ोर।

पृष्ठ ३७—मतानुसार—मत के मुताबिक। निकट—पास।

पृष्ठ ३८—कटाक्षयुत—व्यंग्य के सहित। व्यस्त—काम में लगा हुआ। पाहुनी—मेहमान। रुष्ट—नाराज़। निस्तब्ध—जो हिलता-डुलता न हो।

पृष्ठ ३९—अहंकार—घमंड। प्रज्वलित—जलता हुआ। विनीत—नम्र। अनुग्रह—कृपा।

पृष्ठ ४०—कांक्षा—इच्छा। प्रफुल्लित—आनन्दित। अन्तःकरण—मन।

पृष्ठ ४१—लोथ—लाश। समक्ष—सामने।

पृष्ठ ४२—तीव्र—तेज़। आभा—चमक। मनसा—मन सम्बन्धी। वाचा—वचन सम्बन्धी। कर्मणा—कर्म सम्बन्धी।

पृष्ठ ४३—करुणोत्पादक—करुणा उत्पन्न करने वाली। शोणित—रक्त।

पृष्ठ ४४—दीर्घ निद्रा का रोग—वह रोग, जिसके कारण मनुष्य अधिक देर तक सोया करता है। सम्मुख—सामने। पुरस्कार—इनाम।

६—मन की दौड़

पृष्ठ ४७—अदृश्य—जो दिखाई न दे।

पृष्ठ ४८—सुषुप्ति—घोर निद्रा। अभिषेक—छिड़काव। सम्मिलन—मिलाप। अभ्रस्पर्शी—आकाश को छूने वाले। परिपूरित—भरा हुआ। अट्टालिका—कोठा। सहयोग—साथ।

पृष्ठ ४६—उत्ताल—ऊँची । सद्यजात—जो बहुत शीघ्र ही पैदा हुआ हो। निरापद—विपत्ति रहित ।

पृष्ठ ५०—अधिष्ठाता—मुखिया ।

७—गोपियों की भगवद्भक्ति

पृष्ठ ५१—औद्धत्य—ढिठाई । लोल—चंचल । आच्छादित—ढँका हुआ। निशानायक—चन्द्रमा। बिम्ब—मण्डल । अरुण—लाल ।

पृष्ठ ५३—सर्वत्र—सब जगह । लोकोत्तर—अलौकिक । अक्षुण्ण—बिना टूटा हुआ। एकत्र—इकट्ठा। निष्करुण—कठोर ।

पृष्ठ ५५—रंजित—रँगा हुआ। कुसुमित—फूला हुआ। रवि-नन्दिनी—यमुना जी। दुर्भग—अभागा। निन्द्य—निन्दा करने के योग्य। आक्रोश—गाली देना। अत्युष्ण—बहुत ही गरम । निर्व्याज—छल रहित ।

पृष्ठ ५६—पावन—पवित्र। मुमुक्षु—मुक्ति का अभिलाषी। संवरण—दूर करना। पद्म—कमल । परुष—कठोर ।

पृष्ठ ५७—परमाराध्य—अत्यन्त पूजनीय। कृतकृत—सफल मनोरथ।

पृष्ठ ५८—प्रणोदित—प्रेरित । सर्वथा—हमेशा । दुर्भावना—बुरा विचार ।

पृष्ठ ५६—लांछन—कलंक। सान्निध्य—समीपता । प्रणमन—प्रणाम करना। गरिमा—यश ।

पृष्ठ ६०—दुस्त्यज—दुख से त्यागने योग्य। परम्परा—एक के पीछे दूसरा। कंटकित—पुलकित ।

८—सृष्टि की उत्पत्ति

पृष्ठ ६३—सूक्ष्म—बारीक। विवेचना-पूर्वक—तर्क वितर्क सहित ।

पृष्ठ ६४—परिणत—बदला हुआ। वाष्प-पुंज—भाप समूह ।

पृष्ठ ६५—तदुपरान्त—उसके पश्चात् ।

पृष्ठ ६६—भूगर्भ— पृथ्वी का भीतरी भाग । तरंगों—लहरों ।

पृष्ठ ६७—अपेक्षा कृत—मुक़ाबिले में । तरल—बहने वाला । निरीक्षण—जाँच पड़ताल । स्फोट—फूटना ।

पृष्ठ ६८—आधुनिक—आज कल के । सर्व व्यापिनी—प्रत्येक स्थान में रहने वाली । प्रत्यक्ष—प्रगट । भौतिक—पंच भूत सम्बन्धी । नितान्त—सर्वथा । ह्रास—नाश । अल्पजीवी—थोड़े समय तक जीने वाला ।

९—कसौली

पृष्ठ ७१—व्यग्र—व्याकुल । सम्पर्क—लगाव । रमणीय—सुन्दर । आर्थिक—धन सम्बन्धी । अहि—सर्प । विद्युत् व्यजन—बिजली का पंखा । वितान—मण्डप ।

पृष्ठ ७३—अनल—आग । अनिल—हवा । उच्छ्वास—ऊपर को खिंची हुई साँस । श्वान—कुत्ता । रौद्र रस—काव्य के नौ रसों में से एक रस । इसमें क्रोध को प्रगट करने वाले शब्दों और चेष्टाओं का वर्णन किया जाता है । अनुभाव—महिमा ।

पृष्ठ ७२—प्रायश्चित—पापों को दूर करने वाला कृत्य । अभियुक्त—अपराधी ।

पृष्ठ ७४—विक्षिप्तता—पागलपन । असाध्य—कठिन । मोक्षप्रद—मुक्ति प्रदान करने वाला । आतप—गर्मी । शैल शिखर—पर्वत की चोटी ।

पृष्ठ ७५—अरुणोदय—सवेरे का समय । शलाका—तीर ।

पृष्ठ ७६—अनुगृहीत—कृतज्ञ । आर्द्रता—गीलापन । सन्देश वाहक—सन्देश पहुँचाने वाला । रमणीक—सुन्दर । स्वाभाविक—प्राकृतिक । कक्षा—श्रेणी ।

पृष्ठ ७७—गवेषणा—खोज । अनुपयुक्त—अनुचित ।

पृष्ठ ७८—निर्माण—बनाना । रुधिर—रक्त ।

पृष्ठ ७६—प्रजनन—सन्तान उत्पन्न करने का काम। अशक्त—कमज़ोर। निर्माण-विधि—बनाने का ढंग। पृथक्—अलग। प्रविष्ट—घुसा हुआ। उपस्थिति—मौजूदगी।

पृष्ठ ८०—सर्प-दंशित—सर्प का काटा हुआ। सुरक्षित—बचा हुआ।

पृष्ठ ८१—वृद्धि—बढ़ती। अनुसंधान—पता लगाना। संलग्न—लगा हुआ।

१०—हरिश्चन्द्र की सत्यवादिता

पृष्ठ ८४—भस्म—राख।

पृष्ठ ८५—अभिमंत्रित—मंत्र द्वारा संस्कार किया हुआ। मार्जन—क्षमा। रवि—सूर्य। तम—अँधेरा। उन्मूलन—उखाड़ना।

पृष्ठ ८६—रोर—शोर। दुःस्वप्न—बुरे स्वप्न। भीरु—डरपोक।

पृष्ठ ८७—शुभाशुभ—अच्छा और बुरा। रुष्ट—नाराज़। अज्ञात—जो मालूम न हो। कार्याधीश—कार्य के मालिक।

पृष्ठ ८८—क्षत्रियाधम—क्षत्रियों में नीच। त्रैलोक्य—तीनों लोक। स्मरण—याद। कृपाण—तलवार। पुंज—समूह।

पृष्ठ ८९—आगमन—आना। सहस्र—हज़ार।

पृष्ठ ९०—दारा—स्त्री। सुअन—बेटा। बच—वचन।

११—पैने छुरे

पृष्ठ ९३—पैने—तेज़। गृह—घर। गृहिणी—स्त्री। उत्तेजना—जोश। प्रवृत्त—किसी बात की ओर झुका हुआ। रुचिर—सुन्दर। प्रवृत्ति—मन का लगाव। विषम—कठिन।

पृष्ठ ९४—रक्त वर्ण—लाल रंग का। परिचारिका—दासी। अभिप्राय—मतलब।

पृष्ठ ९५—जैयद्दु—बड़ा ।

पृष्ठ ९६—जागृत—जगा हुआ । ध्वनि—आवाज़ । चन्द्राकार—चन्द्रमा की भाँति बनावट । प्रतीक्षा—जोह । निरामिष—जो माँस न खाता हो ।

पृष्ठ ९७—आकृति—मूर्ति । प्रतीत—मालूम । तरंगों—लहरों । वाह्य—बाहरी । अन्तरिक्ष—आकाश ।

पृष्ठ ९८—प्रोत्साहन—साहस दिलाना । हतोत्साह—साहस हीन । अकर्मण्यता—आलसपन । उष्णता—गर्मी । विकराल—भयंकर ।

पृष्ठ ९९—संचित—इकट्ठा की हुई । वेदना—पीड़ा । परिधि—घेरा ।

पृष्ठ १००—विश्राम—आराम । निकट—पास ।

पृष्ठ १०१—लालायित—ललचाया हुआ । अनहोनी—न होने वाली । स्नायु—शरीर के भीतर की वह नसें, जिससे पीड़ा और स्पर्श आदि का ज्ञान होता है ।

पृष्ठ १०२—उपरान्त—पश्चात् । मृतप्राय—मरे हुये के समान । बाराह—शूकर ।

पृष्ठ १०३—दशन—दाँत । धरणी—पृथ्वी । धृत—पकड़ा हुआ ।

१२—हीरा और कोयला

पृष्ठ १०६—अनुयायी—पीछे चलने वाला । असुर—राक्षस । सहोदर—एक ही माता के उदर से उत्पन्न सन्तान ।

पृष्ठ १०७—कृत्रिम—बनावटी । आभूषण—गहना ।

पृष्ठ १०८—विनिमय—एक वस्तु लेकर उसके बदले में दूसरी वस्तु देना । उत्कर्ष—बढ़ती । विभूति—ऐश्वर्य । निर्दिष्ट—कायम किया हुआ । अनुज—छोटा भाई । पार-दर्शी—चतुर ।

पृष्ठ १०९—आलोक—प्रकाश ।

१३—क्षमता की विवेचना

पृष्ठ ११२—नैतिक—नीति सम्बन्धी। प्रभुत्व—अधिकार। अनुकूल—मुताबिक। व्यतीत—बीता हुआ। उपर्युक्त—उपर के।

पृष्ठ ११३—स्थिति—दशा। शोचनीय—चिन्ता के योग्य।

पृष्ठ ११४—विस्मित—आश्चर्य में आया हुआ। अवलोकन—देखना।

पृष्ठ ११५—सुगमता—सरलता। पारस्परिक सहकारिता—आपस की सहायता। न्यून—कम। मग्न—डूबा हुआ। परिणाम—फल।

पृष्ठ ११६—क्वचित्—शायद ही कोई। साम्राज्य—बहुत बड़ा राज्य।

पृष्ठ ११७—व्यवस्था—प्रबन्ध। विलक्षण—अनोखी।

पृष्ठ ११८—क्षमता—योग्यता। अवधारण—निश्चय।

१४—आप

पृष्ठ १२१—वाचक—बताने वाला।

पृष्ठ १२२—हवस—लालच। अनुकरण—नकल। अपभ्रंश—बिगड़ा हुआ। द्योतनार्थ—प्रकट करने के लिए।

पृष्ठ १२३—निरर्थक—बेकार। विज्ञता—चतुराई। अधोगामी—नीचे जाने वाला। मौखिक—ज़बानी।

पृष्ठ १२४—स्नेह सम्बद्ध—प्रेम में बँधा हुआ। आशय—मतलब। उपालम्भ—उलाहना। सर्वदा—सदैव। प्रफुल्लित—फूला हुआ। गात—शरीर।

पृष्ठ १२५—विद्यमान—मौजूद। तद्रूपता—समानता। स्थानापन्न—दूसरे के स्थान पर अस्थायी रूप से काम करने वाला।

पृष्ठ १२६—सहवास—साथ। स्थूलांग—मोटे अंग वाला। अथच—और। समस्त—सब।

१५—आकाश-गंगा

पृष्ठ १३०—स्वच्छ—साफ़। उद्भट—बहुत बड़ा। दूर गामिनी—बहुत दूर तक देखने वाली।

पृष्ठ १३१—पश्चात्य—पश्चिमी। संख्यातीत—संख्या से परे। रश्मि—किरण। व्यक्त—प्रगट। विस्तीर्ण—बहुत बड़ा। प्राचुर्य—अधिकता। विरल—जो घना न हो।

पृष्ठ १३२—दूरवीक्षण यंत्र—वह यंत्र जिससे सुदूर की वस्तुएँ भी देखी जाती हैं।

पृष्ठ १३३—चिरजीवी—बहुत दिनों तक जीवित रहने वाला। दिग्दर्शन—वह जो, उदाहरण स्वरूप दिखलाया जाय। त्रिकालज्ञ—तीनों कालों की बात जानने वाला। अचिन्त्य—जिसका अनुमान न हो सके। अपरिमित—असीम। विश्व—संसार।

पृष्ठ १३४—रेणु—धूलि। परिक्रमा—चारों ओर घूमना।

पृष्ठ १३५—अनुमित—अनुमान किया हुआ। आयतन—ठहरने की जगह। अपरिच्छिन्न—जिसका विभाग न हो सके। उपलब्ध—प्राप्त।

पृष्ठ १३६—जाज्वल्यमान—प्रकाशमान। अन्तर्हित—छिपी हुई। विस्मय-कारी—आश्चर्य-युक्त।

पृष्ठ १३७—अव्याहतता—सत्यता। व्याघात—विघ्न। संचालन—चलाने की क्रिया।

पृष्ठ १३८—निहित—रक्खा हुआ। संसरण—चलना। मेदिनी—पृथ्वी। समन्वय—मिलन।

१६—हिन्दी-साहित्य और मुसलमान कवि

पृष्ठ १४२—आक्रमण—चढ़ाई। प्रारम्भ—आरंभ। आधिपत्य—स्वामित्व। विरोधाग्नि—वैर की आग। सम्मिलन—मिलन। अग्रसर—आगे बढ़ना। सौन्दर्य—सुन्दरता।

पृष्ठ १४३—अविचल—स्थिर । आभास—छाया । प्रदत्त—दी हुई । प्रवर्त्तक—चलाने वाले । प्रतिद्वन्दी—मुकाविले का लड़ने वाला ।

पृष्ठ १४४—व्यवधान—भेद । प्राचीन—पुराना । कमला—लक्ष्मी ।

पृष्ठ १४५—उपासक—पूजा करने वाले । धेनु—गाय । पुरन्दर—इन्द्र । कालिन्दी—यमुना । कूल—किनारा । अलंकृत—सुशोभित । संघर्षण—रगड़ ।

१७—पानीपत की तीसरी लड़ाई

पृष्ठ १४६—कला—विद्या । सम्मति—सलाह ।

पृष्ठ १५०—हियाव—साहस । कौशल—चतुराई ।

पृष्ठ १५१—विधाता—ब्रह्मा । सन्धि—मेल । अन्तिम—आखिरी ।

पृष्ठ १५२—अलौकिक—अनोखा । प्रसंग—अवसर ।

पृष्ठ १५३—नवीन—नया । प्रचण्ड—बहुत तेज ।

१८—सन्तू

पृष्ठ १५६—अतीत—बीता हुआ । सुभग सलिला—सुन्दर जल वाली । अव्याहत—बेरोक । निदान—शब्द । कल—सुन्दर । वृक्षाच्छादित—वृक्षों से ढँका हुआ । चन्द्रालोकित—चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशित । नैश—निराशा । संकुचित—सँकरी । भव्य—सुन्दर । रजनीनाथ—चन्द्र । रुग्ण—रोगी ।

पृष्ठ १५७—कृश—दुबला-पतला । सदृश—समान ।

पृष्ठ १५८—आन्तरिक—भीतरी । प्रेरित—भेजा हुआ । अज्ञेय—जो समझ में न आ सके । समीरण—हवा ! कौमुदी—चाँदनी ।

पृष्ठ १५६—यामिनी—रात । उत्तप्त—जला हुआ ।

पृष्ठ १६०—रैन—रात । प्रयाण करना—कूँच करना । अनुष्ठान—काम का आरम्भ । प्राण विसर्जन—प्राण देना ।

पृष्ठ १६१—अल्प वयस्क—थोड़ी उम्र का। सर्वत्र—सब जगह। कर्णगोचर—सुनाई देना। अंशुमाली—सूर्य। आरक्त—लाल। सौध—भवन।

पृष्ठ १६२—व्याप्त—फैला हुआ। क्षुब्ध—कुपित। अरण्य—वन। प्रतिध्वनि—गूँज।

पृष्ठ १६३—शर्वरीनाथ—चन्द्रमा। वक्र—टेढ़ी। महत्तम—बहुत बड़ा।

१९—भगवान श्रीकृष्ण

पृष्ठ १६७—चिरस्मरणीय—बहुत दिनों तक याद रखने के योग्य। दग्ध—जला हुआ। निपीड़ित—दुखी। कष्टकारागार—दुख का जेल। कल्पित—बनावटी। आरूढ़—चढ़ा हुआ। गर्त—गड्ढा। रज्जु—डोरी।

पृष्ठ १६८—विद्यमान—मौजूद। खिन्न—दुखी। निर्माता—रचयिता। अमूलक—जिसकी कोई जड़ न हो।

पृष्ठ १६९—सर्व गुणान्वित—सर्व प्रकार के गुणों से युक्त। प्रलोभन—लालच। अवश्यम्भावी—जो अवश्य हो, टले नहीं।

पृष्ठ १७०—वर्णन—बयान। आपद्‌जनक—विपत्ति उत्पन्न करने वाला। कर्त्तव्यानुरोध—कर्त्तव्य की प्रेरणा। दुरभि-सन्धि—बुरे अभिप्राय से गुट बाँध कर की हुई सलाह।

पृष्ठ १७१—दुर्भिक्ष—अकाल। प्रत्याख्यान—खण्डन। परांगमुख—उदासीन।

२०—सभ्यता का विकास

पृष्ठ १७५—अन्वेषण—खोज। घनिष्ट—घना। अगणित—वह, जिसकी गिनती न की जा सके। प्रणाली—नियम। क्रूरातिक्रूर—अत्यन्त दुष्ट।

पृष्ठ १७६—सामान्य—साधारण। अभिव्यक्ति—प्रकाशन। संकुलता—घनापन।

पृष्ठ १७७—बीजारोपण—बीज बोना। अधिपति—मालिक। परिवर्तन—उलट फेर। सामाजिक—समाज सम्बन्धी। अन्योन्याश्रय—परस्पर का सहारा।

२१—तुलसीदास

पृष्ठ १८१—प्रवाह—धारा। सम्यक्—भली भाँति। नैराश्य-काल—निराशा का समय। प्रभूत—निकला हुआ।

पृष्ठ १८२—दमन—नाश। लोक रंजक—संसार को प्रसन्न करने वाला। नैराश्य जनित—निराशा से उत्पन्न। आश्रय—सहारा। प्रौढ़ता—मज़बूती। अभिव्यंजना—प्रकट करना। समृद्धि—बहुत अधिक बढ़ती।

पृष्ठ १८३—उत्पादक—उत्पन्न करने वाला। अभिव्यक्त—प्रकट किया हुआ। मंजु—सुन्दर। आविर्भाव—प्रकट। प्रतिविम्ब—परछाईं।

पृष्ठ १८४—अन्यत्र—दूसरी जगह।

२२—अजातशत्रु

पृष्ठ १८८—अनुचर—सेवक। मृगशावक—मृग का बच्चा।

पृष्ठ १८९—निदर्शन—उदाहरण। अविचार—अज्ञान।

पृष्ठ १९०—तिरस्कार—अपमान। हिंसामूलक—हिंसा की जड़।

पृष्ठ १९१—प्रलोभन—लालच। अपदस्थ—अपमानित। मुदित—प्रसन्न। प्रणत—नम्र। स्पृहणीय—जिसके लिए इच्छा की जा सके। पर्याप्त—काफी। अकर्मण्य—आलसी।

पृष्ठ १९३—परिस्थिति—दशा। अवहेलना—निन्दा। धमनी—नाड़ी। नीरव—मौन। अभियोग—मुक़दमा।

पृष्ठ १९३—राज्याभिषेक—राज्यतिलक। उत्सव—जलसा।

पृष्ठ १९४—वन्य—जंगली। वाक्—वाणी।

पृष्ठ १६५—दर्पण—आइना। आकांक्षा—इच्छा। अमात्य—मंत्री।

पृष्ठ १६६—यंत्रणा—पीड़ा। अन्यथा—विरुद्ध। निरीह—इच्छा रहित। प्रभंजन—हवा।

पृष्ठ १६७—अपवाद—निन्दा। आवर्त—पानी का भँवर। आतंक—रोब।

पृष्ठ १६८—प्रवंचना—धूर्तता। परिव्राजक—सन्यासी। दोषारोपण—दोष लगाना। प्रतिहारी—ड्योढ़ीदार। इंगित—इशारा। प्रस्तुत—तैयार।

पृष्ठ १६६—अजात—अजातशत्रु।

पृष्ठ २००—परिणीता—विवाहिता। अनिष्ट—बुराई। मार्जनीय—क्षमा के योग्य। निसर्ग—प्रकृति।

पृष्ठ २०१—अंक—गोद। बन्दी गृह—जेल। किसलय—नया निकला हुआ पत्ता। सुरभित—सुगंधित।

पृष्ठ २०२—वंचित—जो ठगा गया हो।

पृष्ठ २०३—उदण्डता—दुष्टता। च्युत—गिरी हुई।

पृष्ठ २०४—उपलक्ष्य—दृष्टि, उद्देश्य। पुरस्कार—इनाम।

पृष्ठ २०५—विलंब—देर।

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad.